मुद्रक—
मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
"जैनविजय" प्रिन्टिंग प्रेस—सूरत।

भगवान् महावीरका चिह्न।

" वीरो वीरनराग्रणीर्गुणनिधि वीरा हि वीरं श्रिता।
वीरे सोह भवेत्सुवीर विभवं वीराय नित्यं नमः॥ "
— श्री सकलकीर्ति।

प्रकाशक—
मूलचन्द किसनदास कापड़िया,
मालिक दिगम्बर जैन पुस्तकालय,
चन्दावाड़ी—सूरत।

निवेदन।

यों तो सारी जैन समाजमें कई महावीरचरित्र अनेक भाषाओंमें प्रगट होचुके हैं, तो भी आजतक जिसके द्वारा अजैन समाजपर जैनधर्मकी प्राचीनता व उत्तमताकी छाप पड़े व जैनधर्मका हिन्द देश तो क्या विदेशमें भी प्रचार हो ऐसा कोई भी महावीरचरित्र उपलब्ध न होनेसे राष्ट्रीय-हिन्दी भाषामें एक ऐसे ग्रन्थकी बड़ी भारी आवश्यकता थी। हर्ष है कि अब इस आवश्यक्ताकी पूर्ति हमारे परम मित्र व 'वीर' के उपसम्पादक बाबू कामताप्रसादजी जैन अलीगंजनिवासीने अतीव परिश्रम करके कर दी है।

बाबू कामताप्रसादजीने इस ग्रन्थकी रचना आधुनिक प्रामाणिक शैलीपर ऐतिहासिक व तुलनात्मक दृष्टिसे अतीव परिश्रम करके की है, जिससे अजैन समाजमें जो यह भ्रम फैला हुआ है कि जैनधर्म तो बौद्धधर्मकी शाखा है व प्राचीन नहीं है उसका एवं महावीरस्वामीके प्रबंधमें प्रचलित विविध शंकाओंका निवारण होकर वास्तवमें जैनधर्म कबसे प्रचलित है व इसके सिद्धांत कितने अनुपम तथा महावीरस्वामीका उससे क्या संबंध है, यह सब सभ्य संसारके समक्ष दृष्टिगत होगा।

इस ग्रन्थके संपादन करनेमें रचयिताने कितना गाढ़ परिश्रम किया है उसका पता तो उन्होंने जो आगे हिन्दी व अंग्रेजी २१ ग्रन्थोंकी सूची (जिसकी सहायतासे यह ग्रन्थराज तैयार हुआ है) दी है उससे लगता है तथा विशेष खूबी यह है कि उन्होंने इस ग्रन्थमें कोई भी अपने नवीन विचार नहीं प्रकट किये हैं परन्तु नवीन शैलीपर प्राचीन आचार्य व विद्वानोंके वाक्य ही भगवान महावीरके पवित्र जीवनपर उद्धृत किये हैं।

इस ग्रन्थकी महत्वता इससे और भी बढ़ जाती है कि इसका संशोधन हमारे माननीय विद्वान् बाबू चम्पतरायजी बेरिष्टर तथा

श्रीमान् जैनधर्मभूषण ब्र० शीतलप्रसादजीने किया है तथा इस ग्रंथकी लेखनशैली व उपयोगिता पर अपना उत्तम मत प्रदर्शित किया है। तथा बेरिस्टर साहबने तो इस ग्रन्थकी भूमिका भी लिख दी है। इससे मालूम होता है कि ऐसे महत्वपूर्ण ग्रन्थका जैन तो क्या अजैन समाजमें भी विशेष आदर होगा।

अन्तमें एक बातका उल्लेख किये विना हम नहीं रह सक्ते कि जब अनेक ग्रन्थोंके लेखक ग्रन्थ तैयार करके उसका मेटर (कोपी) प्रकाशकको मूल्यसे वेच देते हैं तब बाबू कामताप्रसादजीने इस कार्यको अतीव परिश्रमसे परोपकारके लिये कर दिया है अर्थात् आपने ऑनरेरी तौरसे ही इसका संपादन करके हमको प्रकट करनेके लिये दे दिया है जिसके लिये हम व सारी जैन समाज आपकी अतीव आभारी हैं। अगर ऐसे ही पढ़े लिखे जैन नवयुवक हमारी समाजमें जैनधर्मकी प्राचीनता व उत्तमताके विषयमें नवीन शैलीपर तुलनात्मक दृष्टिसे ग्रन्थ लिखेंगे तो जैनधर्मका बड़ा भारी उपकार होगा।

इस ग्रन्थके संपादन व प्रकाशन कार्यमें जो कोई त्रुटि रह गई हो उसकी सूचना पाठकवर्ग हमें लिख भेजेंगे तो दूसरी आवृत्तिके समय उसमें संशोधन कर दिया जायगा। हम चाहते हैं कि इस ग्रन्थका प्रचार हजारोंकी संख्यामें हो इसलिये जैन समाजसे अपील करते हैं कि उसे इसकी अनेक प्रतियें खरीद करके इसको अजैन समाजमें मुफ्त भी बांटना चाहिये। इत्यलम्।

वीर सं० २४५०
ज्येष्ठ सुदी ५
ता० ७-६-२४
सूरत।

समाजसेवक—
मूलचंद किसनदास कापड़िया,
प्रकाशक।

॥ ॐ ॥

श्रीमहावीराय नमः ।

प्रस्तावना ।

"प्रभु स्वरूप अति अगम अथाह, क्यों हमसे यह होय निवाह"

सुरगुरूसे वंदनीक, अविकार गुणसमुद्र, सर्वहितैषी, परम-ब्रह्म, पतितपावन, पुनीत परमात्मा महावीरके कल्याणकारी जीवनका वर्णन परिमित शब्दोंमें करनेका साहस करना दुस्साहस-मात्र धृष्टता है। उस उन्मत्त पुरुषकी क्रिया सदृश है जो उद्धत तरल तरङ्गकर वेष्टित अगाध उदधिकी थाह लेनेके लिए अग्रगामी हुआ हो। भला जब उन विशुद्ध प्रभुके साक्षात् दर्शन करनेवाले, मति, श्रुति, अवधि, मनःपर्यय एवं केवलज्ञानके धारक गणधर भगवान भी उन परमोत्कृष्ट प्रभुके गुणगान करनेको पर्याप्त—समर्थ नहीं हुए, तो इस कालके एक क्षुद्र छद्मस्थ मानवकी क्या शक्ति है कि वह उन प्रभुके दिव्य जीवनका प्रकाश प्रकट कर सके? यही बात मेरे परमप्रिय श्रद्धेय मित्र श्रीमान् वैरिष्टर चम्पतरायजीने अन्यत्र अपनी भूमिकामें प्रकट की है। तो फिर क्या भगवानके जीवनके विषयमें हम कुछ नहीं कह सके? अपने आराध्यदेव, हृदयके तारे, त्रिजग उजियारेके यशगान हम नहीं कर सके? क्या हमारे शुद्ध अन्तःकरणकी पुनीत भक्तांजलि भी उनको समर्पित नहीं की जा सकी? भक्तिकी महौघ शक्तिसे अवश्य ही असम्भव संभव हो जाता है। प्रेमके आवेशमें क्षुद्र मृग निजसुतकी रक्षा निमित्त मृगपतिका सामना करते नहीं डरता है!

अतएव भक्तिकी मनमोहन तरंगमें परमात्मा महावीरके पवित्र जीवनपर फिरसे प्रकाश डाल भले ही मैंने "प्रांशुलभ्ये फले लोभा-

द्वुह्वाहुरिव वामनः" वत् क्रिया की हो; परन्तु मैं जानता हूं कि जहां कविकुल शिरोमणि, नरोत्तम भगवान गुणभद्राचार्य, भट्टारक कुलभूषण श्री सकलकीर्तिजी और कविवर अशगने जिस प्रकार भक्ति-रस-संचित हृदयोद्यानसे परम-सरस-सौरभयुक्त पूर्ण प्रस्फुटित-प्रसून प्रभू वीरके पवित्र पाद-युगलमें समर्पण करनेका सौभाग्य प्राप्त किया था, वहां क्या मैं अपनी अविकसित निर्मल भक्ति-कुसुम-कर्णिकाको स्वात्माकी संतुष्टि मात्रके अर्थ समर्पित कर कृतकृत्यावस्थाको प्राप्त हो सक्ता हूं ? परन्तु भक्तिवश मनुष्य सर्व कुछ कर सक्ता है ! तथास्तु !

यद्यपि भगवान महावीरके जीवनचरित्र लिखनेके लिए मुख्य प्रेरक हृदयकी भक्ति ही है परन्तु, बाह्यनिमित्त भी उसमें विशेष सहायक हैं। और यह मानी हुई बात है कि समय समय मनुष्यकी आवश्यक्ताएं और रुचियां बदलती रहतीं हैं; इसलिए भी भगवानके पवित्र जीवनपर नवीन ढंगसे प्रकाश डालना आवश्यक है। स्वयं भगवान महावीरने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावके अनुसार वर्तन करना उपयुक्त बतलाया था। तिसपर हिन्दी जैन साहित्यमें भगवान महावीरका कोई भी ऐसा जीवनग्रंथ उपलब्ध नहीं है, जो आधुनिक रीतिपर लिखा हुआ हो और अजैन विद्वानोंके हाथोंमें अर्पण किया जा सके ! यही कमी गत महावीर जयन्ती महोत्सवके समय इटावेमें मुझको विशेष रूपसे दुःखित करने लगी। मेरा हृदय इतना मर्माहत हुआ कि मैंने उस कमीको स्वयं ही यथाशक्ति पूर्ण करनेका दृढ़ संकल्प कर लिया, जिसके फलस्वरूप प्रस्तुत 'जीवनचरित्र' मात्र धर्म-प्रभावनाकी पूर्ति निमित्त

सभ्य संसारके समक्ष उपस्थित हो रहा है। संभव है कि जबतक आगामीमें कोई प्रखर विद्वान इस विषयमें अपनी मूल्यवान लेखनीको अविश्रान्त श्रम नहीं दे, तबतक मेरा यह प्रथम बाल-प्रयत्न उक्त आवश्यक्ताकी पूर्ति करनेमें सहायक हो।

सर्वोपरि भगवान महावीरके संबंधमें जो तरह २ की कल्पित-विचार-विभ्रांतियां और थोथी मिथ्या किम्वदंतियां प्रचलित हैं उनका निराकरण करना इसलिए और भी आवश्यक होगया है कि उनके कारण विद्वत्समाज जैनधर्मका अध्ययन करना अथवा उससे मामूली जानकारी ही प्राप्त करना अनावश्यक समझती है। इन भ्रमपूर्ण विचारोंकी उत्पत्तिका मुख्य कारण प्रखर जैन साहित्यको समुचित रीतिमें प्रकट प्रकाशमें नहीं लाना ही कहा जा सक्ता है। अतएव यदि आधुनिक प्रामाणिक ढंगपर जैन सिद्धांत और इतिहास ग्रंथ लिखे जांय तो यह मिथ्या-भ्रम स्वयं ही काफूरवत् उड़ जांय, किंतु भारतके प्राचीन इतिहासके सम्बन्धमें जो कुछ भी प्रकाश आज तक प्रकट हुआ है वह अधिकांशमें योरूपीय विद्वानोंके साधु-श्रमका फल है। प्रथम ही प्रथम योरूपीय विद्वानोंने भारतवर्षके विषयमें ज्ञान प्राप्त करनेके जो कुछ प्रयत्न किए थे वह वहुतायतसे ब्राह्मण और बौद्धग्रन्थोंके आधारसे किए थे। इन विधर्मी ग्रन्थोंमें स्वभावतः जैनधर्मके विषयमें यथार्थ वर्णन नहीं था; क्योंकि मध्यकालसे इन भारतीय धर्मोमें आपसी प्रतिस्पर्धा भी खूब चली आरही है। फलतः ब्राह्मण और बौद्ध श्रोतोंसे प्राप्त अधूरे ज्ञानके कारण इन विदेशी विद्वानोंने यह मत निश्चित कर लिया था कि जैनधर्म बौद्धधर्मका बिगड़ा हुआ रूप है और

भगवान महावीर कोई वास्तविक व्यक्ति नहीं थे ! ! परन्तु, यह भ्रमपूर्ण व्याख्या अधिक दिन टिक नहीं सकी थी। सत्यका प्रकट होना अवश्यम्भावी था। जर्मनीके डॉ० जैकोबी सदृश विद्वानोंने जैन शास्त्रोंको प्राप्त किया। और उनका अध्ययन करके उनको सभ्यसंसारके समक्ष प्रगट भी किया। यह श्वेताम्बराम्नायके अंग ग्रंथ हैं। और डॉ० जैकोबी इन्हींको वास्तविक जैन श्रुत शास्त्र समझते हैं। इस भ्रममय श्रद्धानकेहोते हुए भी डॉ०जैकोबी*के इस उत्तम श्रमके कारण उक्त—भ्रम—मूलक व्याख्या निर्मूल होगई है और प्रमाणित हो गया है कि जैन धर्म एक अतीव प्राचीन धर्म है और भगवान महावीर म० बुद्धसे भिन्न एक वास्तविक व्यक्ति थे।

यद्यपि इन उदार सत्यानुवेषी विद्वान् महोदयोंके मूल्यमय परिश्रमसे भगवान महावीर और जैनधर्मके अस्तित्वकी स्वाधीनता और प्राचीनता प्रकट होगई है; परन्तु अब भी सभ्य संसारके मध्य यही दृढ़ श्रद्धान घर किए हुए हैं कि जैनधर्मको हिंदूधर्मके विपरीत सामाजिक क्रांतिरूपमें भगवान महावीरने ही म० बुद्धके साथ २ चलाया था और दुःखकी बात तो यह है कि इसी व्याख्याकी पुष्टि अधिकांशमें हमारे स्कूलों और कॉलिजोंके पठनक्रमके इतिहास ग्रन्थोंसे भी होती है। अतएव इस प्रकार लोगोंको

---

*"Not only Jacobi but other scholars also believed that Jainism far from being an offshoot of Buddhism, might have been the earliest of home religions of India. The simplicity of devotion and the homely prayer of the Jain without the intervenltion of a Brahmin would certain add to the strength of the theory so rightly upheld by Jacobi."

(*See the Studies in South Indian Jainism Pt. I. p. 9*).

विश्वास हो जाता है कि वास्तवमें महात्मा बुद्धके अनुसार ही भगवान महावीरने भी एक धर्म प्रकट किया था और वह जैनधर्म है। यही कारण है कि म० बुद्धके समान ही भगवान महावीरके प्रति उनकी दृष्टि गौरवपूर्ण नहीं रहती है। वह समझते हैं कि ईसासे पूर्वकी ९ वीं शताब्दिसे लेकर ईसाकी पहिली दूसरी शताब्दितक बराबर म० बुद्धका प्रभाव भारतवर्षमें सर्वत्र रहा, और भगवान महावीरका धर्म उनके ही निकट संबंधीजनोंके राज्योंमें सीमित रहा। कठिनतासे एकाध दफे वह भारतवर्षमें सर्वत्र प्रचलित हुआ। यहांतक कि विद्वानोंके निकट यह काल "बौद्ध काल" के नामसे विख्यात है। परन्तु वास्तवमें यथार्थ खोजके निकट यह भ्रम दूर हो जाता है और हमको ज्ञात होता है कि इस कालके अन्तर्गत समयानुसार जैन धर्म और बौद्ध धर्मकी समान प्रधानता रही है और साथमें हिंदूधर्म भी अपनी शक्तिको एकत्रित करता जा रहा था। अतएव पूर्वी–भाषा–भाषी विद्वानोंके शुभ प्रयत्नोंके उपरांत भी सभ्यसंसारके मध्य उपर्युक्त प्रकारके मिथ्या भ्रम घर कर रहे हैं जिनके कारण वह जैनधर्मके मनन करनेसे कुछ नवीन संदेश पानेकी आशा नहीं रखते हैं। उनके इन भ्रमोंका औचित्य दिखलानेके लिए भी इस पवित्र 'जीवनी' के लिखनेका साहस किया गया है। इसके पाठ करनेसे साधारण रूपमें सत्य खोजी मस्तिष्कको ज्ञात हो जायगा कि वास्तवमें जैन धर्म क्या है? वह कबसे है? और उसका भगवान महावीरके साथ क्या सम्पर्क है? भगवान महावीरका दिव्य प्रभाव उनके समयमें कितना दिगन्तव्यापी था कि स्वयं म० बुद्धने उनके जीव-

नसे दृढ़ श्रद्धानको प्राप्त किया था, यह इसके पाठसे ज्ञात हो जायगा। और इस तरह भगवान महावीरकी यथार्थ जीवन घटनाओंका शुभ्र ज्ञान भी विज्ञपाठकोंको हो जायगा! तथैव उनके दिव्य जीवनसे और उनके सर्व कल्याणकारी अबाधित संदेशसे उनके हृदयोंमें सौम्य वीरत्व और सुन्दर सार्वप्रेमका उद्रेक बह निकलेगा! इसी लिए यह पवित्र 'पुस्तक' ऐतिहासिक प्रमाणिकताकी दृष्टिसे लिखी गई है। संभव है कि इस नूतन प्रणालीको हमारे कुछ साधर्मी सज्जन पसन्द न करें; परन्तु उनको जान लेना चाहिए कि धर्मकी वास्तविक प्रभावनाके निमित्त ही यह इस ढंग पर लिखी गई है, क्योंकि आधुनिक विद्वत्समाज अपनी भ्रम बुद्धिके अनौचित्यको तब ही स्वीकार करेगी जब वह अपनी व्याख्याके विपरीत सप्रमाण वर्णन देखेगी। धर्मके प्रति प्रचलित कुत्सित विचारोंका दूर होना ही वास्तविक प्रभावना कही जासकती है।

इसके साथ ही विज्ञ पाठकोंको इसके पाठसे इस बातका भी पता चल जायगा कि जैन शास्त्रोंके कथा-विवरणोंमें कितना ऐतिहासिक सत्य विद्यमान है और इस लिए भारतके इतिहास निर्माणमें उनका महत्व कितना बड़ा चढ़ा है। मुख्य बात तो जैन शास्त्रोंमें दृष्टव्य यह है कि जहां उन्होंने अन्य धर्मोंका वर्णन किया है वहां वह यथार्थ रूपमें है। पारस्परिक विरोधके कारण जैन ऋषियोंने अन्य धर्मी मान्य लेखकोंमें अधिकांशकी भांति किसी भी धर्मके सिद्धान्तों वा घटनाओंका चित्रचित्रण नहीं किया है। प्रत्युत उनकी समलोचना यदि की है तो समुचित रीत्या की है। इसी लिए तो आजकल भी गण्यमाण्य विद्वानोंको मानना पड़ा है कि:-

"Characteristic of Indian narrative art are the narratives of the Jains. They describe the life and manners of the Indian population in all its different classes and in full accordance with reality. Hence Jain narrative literature is amongst the most precious source, not only of folklore in the most comprehensive sense of the word but also of the history of Indian Civilisation."
— Dr. Hoernle.

वस्तुतः डॉ० हर्नलके उक्त शब्दोंसे जैन ग्रन्थोंकी प्रमाणिकता प्रगट है। अतएव कहना होगा कि हृदयकी पवित्र भक्तिके साथ२ उक्त बाह्य कारणोंसे प्रेरित हो इस प्रथम प्रयत्नका प्रयास किया गया है। मैं नहीं जानता कि मैं उसमें कहांतक सफलमनोरथ हुआ हूं। मुझे तो आशङ्का है कि इस अनधिकार प्रयत्नमें मुझसे यथार्थ चरित्रके चित्रन करनेमें भी शायद त्रुटियां होगई हैं, क्योंकि वह मनुष्यके लिए स्वाभाविक है। उनकी निर्वृत्तिके लिए केवल एक मार्ग यही है कि विनयरूपमें विद्वत्समाजके निकट यह निवेदन किया जाय कि ऐसी त्रुटियोंसे वह मुझे सूचित करदे जिससे आगामी उनका सुधारकर दिया जावे।

यद्यपि मैंने ऊपर कहा है कि इस जीवनीको लिखना मेरा प्रथम-प्रयास है, परन्तु एक तरहसे मेरा इसमें कुछ भी नहीं है। जो कुछ भी पूर्वागामी महत् पुण्यवान महान विद्वज्जनोंने प्रकट किया था, उसको ही मैंने नवीन रूप दिया है और उतना ही श्रम मात्र मेरा है। इसपर भी बहुत कुछ श्रेय मेरे मान्य मित्र श्रीमान् चम्पतरायजी जैन, बैरिष्टर-एट-लॉ, हरदोई पर निर्भर

है, जिन्होंने मुझे न केवल आवश्यक ग्रन्थोंको ही देकर उत्साहित किया, बल्कि समग्र लिखित-कॉपीको पढ़कर अपनी अमूल्य सम्मतियोंद्वारा मुझे पूर्ण साहाय्य और इस पुस्तककी भूमिका लिखकर वास्तविक उत्साह प्रदान किया है। इसके लिए मैं उनके निकट विशेष रूपसे कृतज्ञता पाशमें वेष्टित हूं। साथमें ही मैं श्रीमान् जैनधर्मभूषण ब्र० शीतलप्रसादजी संपादक "जैन-मित्र" का भी आभारी हूं, जिन्होंने भी प्रस्तुत पुस्तकके प्रथमके कुछ परिच्छेदोंका अवलोकनकर मुझे अनुग्रहीत किया था। तथैव श्रीयुत बाबू हीरालालजी एम० ए० एल० एल० बी० संस्कृत रिसर्च स्कॉलर, प्रयाग विश्वविद्यालयके निकट भी मैं आभारी हूं, जिन्होंने भगवान महावीरकी सर्वज्ञताका प्रमाणीक परिशिष्ट लिखकर इस पुस्तकका महत्व बढ़ा दिया है। अथच मैं इस सम्बन्धमें उन सर्व आचार्यों और ग्रन्थकर्ताओंका भी भी आभार माने विना नहीं रह सक्ता, जिनके ग्रन्थोंसे मैंने सहायता ग्रहण की है। इन ग्रन्थोंकी नामावली पृथक् दी हुई है।

अस्तु, अन्तमें मुझे यह प्रकट करते हुए अत्यन्त हर्ष है कि मेरे प्रियमित्र सेठ मूलचंद किसनदासजी कापड़ियाका ही सब कुछ श्रेय है कि उनके अनुग्रहसे ही यह ग्रन्थ आज सभ्यसंसारके निकट प्रकाशमें आ रहा है। प्रभू वीरकी पवित्र संस्तुतिसे उनके इस साधु-श्रेयका वास्तविक फल प्राप्त हो, यही भावना है। एवम् भवतु।

विनीत—

हैदराबाद सिंध,
वीर निर्वाण दिवस,
सं० २४५०

कामताप्रसाद जैन,
अलीगंज (एटा)

स्वर्गीय कुमार देवेन्द्रप्रसादजी जैन–आरा।

(अनन्य जैन–साहित्यप्रेमी व प्रचारक)

"जैनविजय" प्रेस–सूरत।

॥ समर्पण ॥

प्रिय स्वर्गासीन् सखे !

मैं जानता हूँ कि स्वर्गलोकमें आपको यहांसे वहुत कुछ अधिक सुख प्राप्त होंगे; किन्तु जिस पुनीत कार्यकी आपके पवित्र हृदयमें उत्कट लालसा थी, उसीके अनुरूपमें यह एक तुच्छ कृत्य अवश्य ही आपकी आत्माको सुखभाजन होगा। अतएव प्यारे देवसखा 'देवेन्द्र'! यह पुनीति 'वाल-कृति' आपकी ही पवित्र स्मृतिके निमित्त आपको ही सादर सप्रेम समर्पित है। यदि इससे किञ्चित् भी 'धर्मप्रभावना' हुई तो उससे 'मेरी और आपकी' दोनों आत्माओंकी संतुष्टि होगी। तथास्तु।

प्रेम—वियोगी—

कामताप्रसाद जैन।

श्री पूज्य परमात्मा भगवान वर्द्धमान महावीरका जीवनचरित्र इतना अद्भुत और अनुपम है कि जिन्होंने उन्हें उनके जीवन-कालमें देखा था वे भी उनका जीवनचरित्र वर्णन करनेमें असमर्थ रहे, तो फिर वर्तमानकालके लेखकोंकी क्या शक्ति है जो उसको पूर्ण रीत्या वर्णन कर सकें। आज श्री भगवानके निर्वाणको २४४९ वर्ष हुवे हैं। इतने समयके पश्चात् भगवानकी शुभ जीवनी लिखना और उससे यह आशा करना कि वह सर्वांश ही भगवानकी दिव्य मूर्ति या उनके पूज्य गुणोंको दर्शा सकेगी, एक झूठा विचार है, तथापि मेरे परम मित्र बाबू कामताप्रसादजीने बड़े परिश्रम व कष्टसे बहुत कुछ सामिग्री उक्त पूज्य तीर्थङ्करके जीवन-कालकी एकत्रित करके उसको बहुत सुन्दर रीतिसे लेखबद्ध किया है इसके लिये मैं उनको हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

कुछ काल पूर्व स्वयं मेरे हृदयमें एक वार यह उमंग पैदा हुई थी कि मैं पूज्य अन्तिम तीर्थङ्करका जीवन-चरित्र लिखूं परंतु तीव्र अन्तरायकर्मके कारण मैं इस शुभ कार्यसे वञ्चित रहा। अब जब कि मेरे मित्र बाबू कामताप्रसादजीने अपनी इच्छा प्रगट की कि मैं उनकी पुस्तककी भूमिका लिखूं तो मुझको अत्यन्त हर्ष प्राप्त हुआ, मानों एक प्रकार मेरी अभिलाषाकी पूर्ति ही हो गई।

मैंने ऊपर कहा है कि भगवान महावीरका जीवन अनुपम है। तीर्थङ्करका जीवन सदैव ही अनुपम होता है, क्योंकि वह जीवित परमात्मा होता है जिसकी उपमा दूसरे जीवित परमात्मासे ही दी जा सक्ती है, अन्यथा नहीं। भगवानका जन्माभिषेक स्वर्ग लोकके देवताओंने आकर मनाया था। भगवान चरम शरीरी थे। मल, मूत्र पसीना आदि बालपन हीसे भगवानके नहीं होते थे। जन्मसे ही भगवान तीन प्रकारके (मति, श्रुति और अवधि) ज्ञानसे भूषित थे। तप कल्याणके समय चौथा अर्थात् मनःपर्य्यय ज्ञान भगवानको प्राप्त हुआ था और 'सर्वज्ञता' घातिया कर्मोंके नाश होनेपर मिल गई थी। केवलज्ञानको प्राप्त हुये पश्चात् भगवान साक्षात् परमात्मा थे, जिनके दर्शन मात्रसे भव्य जीवोंको यही प्रतीत होता था कि मानों मोक्ष निधि ही मिल गई है। भगवानके समवशरणमें विराजनेके समयकी महिमाका तो कहना ही क्या है। स्वयं बुद्ध ग्रन्थोंमें भगवानके सर्वज्ञ होनेकी साक्षी मिलती है। देखो मज्झिम निकाय व इन्साइक्लोपीडिया ओफ रिलीजन एण्ड ईथिक्स भाग २ पृष्ट ७०)।

बुद्धदेवके हृदयपर भगवानके केवलज्ञानका ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह बिल्कुल मुग्ध होगये और स्वयं यह विचार करने लगे कि सर्वज्ञता किस प्रकार प्राप्त करें। इसके लिये उन्होंने भगवान महावीरके सदृश बहुत काल कठिन तपस्या की और तप करते २ अपने शरीरको अत्यन्त दुर्बल और शक्तिहीन कर दिया। कालांतर पश्चात् एकबार जब कि तपकी कठिनताके कारण

उनकी शारीरिक शक्ति बहुत ही क्षीण होगई और बेहोशीकी नौबत पहुंची तो उन्होंने विचारा कि:—

"न इन कठिनाइयोंके अनिष्ट मार्ग द्वारा मैं उस पृथक् और सर्वोत्कृष्ट सम्पूर्ण आर्योंके ज्ञानके प्रकाशको जो मनुष्यकी बुद्धिसे परे है, प्राप्त कर पाऊँगा। क्या यह संभव नहीं है कि उससे प्राप्त करनेका कोई अन्य मार्ग हो ?"
(इन्साइक्लोपीडिया ओफ रिलीजन ऐंड ईथिक्स भाग २ पृष्ठ ७०)।

विश्वास इसीका नाम है। इतनी कठिन तपस्याके निष्फल होने पर भी हृदयसे सर्वज्ञताका ध्यान न गया। केवल यही विचार उत्पन्न हुआ कि अथवा उसकी प्राप्तिका कोई दूसरा मार्ग तो नहीं है। हां! यह श्रद्धा, यह विश्वास इसी कारण था कि महात्मा बुद्धदेवने स्वयं अपनी आंखोंसे परमात्मा महावीरमें उस सर्वज्ञताका चमत्कार देखा था। क्या सुनी सुनाई सर्वज्ञतामें इतनी गाढ़ श्रद्धा होसक्ती थी कि बर्षोंकी कठिनसे कठिन तपस्याके पश्चात् भी उसका ध्यान हृदयमें जमा रहे? बुद्धदेवने जिन सुन्दर और गम्भीर शब्दोंमें सर्वज्ञताकी प्रशंसा की है वह ध्यान देने योग्य है:—

"वह पृथक् व सर्वोत्कृष्ट सम्पूर्ण आर्य्योंके ज्ञानका प्रकाश जो मनुष्यकी बुद्धिसे परे है।"

यही सर्वज्ञता है जिसके कारण तीर्थङ्कर भगवान परमगुरु और परमपूज्य माने जाते हैं और यही सर्वज्ञता प्रत्येक भव्य-जीव को मोक्ष प्राप्तिके पहिले घातिया कर्मोंके सर्वथा नाश होजानेपर मिलती है। जैनधर्म सर्वज्ञता और मोक्ष प्राप्तिका मार्ग है, जिसको

इस कालमें अन्तिम बार परमात्मा महावीरने फिर स्थापित किया था तथैव परमात्मा महावीरको नमस्कार है । इसी कारण वह हमारे जीवनके लिए पूज्य आदर्श हैं कि हम उनके चरणचिन्होंपर चलकर उस सर्वोत्कृष्ट पदको प्राप्त करें जिसको उन्होंने स्वयं प्राप्त किया है ।

इन थोड़े शब्दों सहित मैं सहर्ष एवं सानुरोध प्रगट करता हूं कि धर्मप्रेमियोंके लिये बाबू कामताप्रसादजी कृत "भगवान महावीर" की पवित्र जीवनी अधिक उपयोगी होगी और आशा करता हूं कि भव्य जन इसके पाठसे लाभ उठावेंगे। इति शुभम् ।

हरदोई । }
अक्टूबर १९२३ }

चम्पतराय जैन,
बैरिष्टर-एट-लॉ

ग्रन्थ-सूची।

निम्न ग्रन्थोंसे इस पुस्तकको संकलन करनेमें साभार सहायता ली गई है:—

१. श्री अशग कविकृत "श्री महावीरचरित्र" (सूरत)।
२. श्री जिनसेनाचार्यकृत "श्री हरिवंशपुराण" (कलकत्ता)।
३. श्री रविषेणाचार्यकृत "श्री पद्मपुराण" (,,)
४. श्री गुणभद्राचार्यकृत "श्री उत्तरपुराण" की कविवर खुशालचंदजीकृत हिन्दी छन्दोबद्ध वचनिका (ह०लि०)।
५. श्री शुभचंद्राचार्यकृत "श्री श्रेणिकचरित्र" (सूरत)।
६. श्री वादीभसिंहकृत "क्षत्रचूड़ामणि काव्य" (बम्बई)।
७. श्री बुद्धुलाल श्रावककृत "मोक्षमार्गकी सच्ची कहानियां" सूरत।
8. "Life of Mahavira" by Mr. Manekchand. (Allahabad)
9. "Kalpa Sutra & Nava Tattwa" by Rev: J. Stevenson. D. D.
10. "The Heart of Jainism" by Mrs. Stevenson. (Religious Quest of India Series).
11. "The Kshatriya Clans in Buddhist India" by Mr. Bimalcharan Law M. A. B. L. etc.
12. "The Ajivakas" by Dr. Barua M. A. D. Litt.
13. "Gotama Buddha" by Mr. K. J. Saunders (The Heritage of India Series)

14. "The Coins of India" by Pro: C. J. Brown M. A.
(The Heritag of India Series)
15. "The Oxford History of India"
by Mr. Vin: Smith.
16. "The Studies in the South Indian Jainism.
by Messrs S. K. Aiyangar & B. Seshagiri Rau.
17. "The Practical Path" by Mr. C. R. Jain.
१८. "असहमतसंगम" मि० चंपतराय जैनके The Confluence of Opposites का अनुवाद।
१९. "भगवान बुद्धदेव" By काशीनाथ (कानपुर)
२०. मि० नगेन्द्रनाथ वसु एम० ए० आदि द्वारा सम्पादित "विश्वकोष"
21. Historical Gleanings
by Mr. B. C. Law. M. A. B. L.
२२. बुद्ध अने महावीर By K. G. Mashruwalla
२३. अंग्रेजी जैनगजट, जैनमित्र, जैनहितैषी, जैनसंसार, दिगम्बर जैन आदि सामयिक पत्र।

विषयसूची ।

(१)

वीर दर्शन ।

"स्वध्यानमें लवलीन हो जब घातिया चारो हने ।
सर्वज्ञ-बोध विरागिताको पा लिया तब आपने ॥
उपदेश दे हितकर अनेकों भव्य निजसम कर लिए ।
रविकिरण ज्ञान प्रकाश डालो 'वीर' मेरे भी हिए ॥"

— पंचाध्यायी

" सौन्दर्यपूर्ण समय है । सरिता अपने मीठे कलरवनादसे मानों वीना बजा रही है, वेलें-लताऐं वृक्षोंसे लिपटकर मानों प्रणयका पाठ ही पढ़ा रही हैं । मनोहर मन्द मन्द पवन चल रही है, चंद्रके शुभ्र और स्वच्छ प्रकाशसे पृथ्वी और सरिता दूधके समान स्वच्छ और प्रकाशित बन रही है । रात्रिरूपी तरुणी चन्द्रप्रकाश रूपी दुग्धसे स्नानकर तारारूपी बुंदकियोंसे सुसज्जित वस्त्र पहिन-कर चन्द्ररूप हीराके मुकुटको शिरपर धारणकर मानो पतिहीसे

मिलनेको जा रही है । इस प्रकार संपूर्ण सृष्टिसौंदर्य मौजूद है तो भी एक मनुष्य वृक्षके नीचे ध्यानस्थ खड़ा हुआ है–वह किसी भी ओर नहीं देखता । एक दंपति सृष्टिसौंदर्यका निरीक्षण करते खेलते हंसते उस शांति मूर्त्तिको–ध्यानस्थ मूर्त्तिको देखकर चौंक पड़े । स्त्री पूछती है "प्रियतम, 'यह कौन है ? हा ! सुन्दर सौम्य युवा होनेपर भी इसने किस दुःखसे यह वनवास स्वीकार किया है ?" पतिने कहा " प्यारी ! यह क्यों पूछती हो ? सारी सम्पत्तिको छोड़कर–राज्य–लक्ष्मीको त्यागकर जगतके उद्धारार्थ योग धारणकर यह महात्मा दुःख–समूहोंका नाश कररहे हैं । एकान्तमें एकाकी रहकर सूक्ष्म विचार रूपी डोरीको आकाशकी ओर फेंककर संसारकी अशान्त–जलती बलती आत्माओंके उद्धारके लिए–तारनेके लिए मानो पुल ही बना रहे हैं । " " अहा ! प्रियतम, समझी समझी, यह तो महाप्रभू–जग–उद्धारक महात्मा " वीर जिनेश्वर " हैं । हम इस प्रेमसागरके समान कब बनेंगे ! " दंपति वीरप्रभू–भगवान महावीरके चरणोंपर नतमस्तक होते हैं । बारबार चरणों पर नमन करते हैं, बारबार प्रभूके प्रफुल्लित कमल बदन देखकर दम्पति मनमें उल्लासित होरहे हैं । "

— जैनहितेच्छुकी कवितासे

* * * *

पाठकों, यह दिव्य दृश्य आजसे करीब २५०० वर्ष पहिलेका है । और इसी भव्य भारत महीका है । भगवान महावीर अपने श्रेष्ठ कल्याणकारी तीर्थकालमें प्रवर्त रहे थे । स्वध्यान अवस्थामें लवलीन हो उन्होंने दिव्य केवलज्ञान प्राप्त किया था और संसारतापसे तप्त जीवोंको परमानन्द पूर्ण मोक्षका मार्ग बतलाया

था । उन्होंने कहा था जैसा कि विदित है कि:—" इस जगतमें किसी एक आत्माको यह ज्ञान नहीं होता है कि (मैं कौनसी दिशासे यहांपर आया हूँ ; अर्थात्) जैसे कि पूर्व दिशासे आया हूं या दक्षिण दिशामेंसे आया हूं ; पश्चिम दिशामेंसे आया हूं ; या उत्तर दिशामेंसे आया हूं ; उर्द्ध्व दिशामेंसे आया हूं ; या अधोदिशामेंसे आया हूं (वैसे ही) अन्य किसी दिशा या विदिशामेंसे आया हूं । (इसी तरह) किसी एकको यह भी नहीं ज्ञात होता कि मेरा आत्मा पुनर्जन्मवाला है अथवा नहीं है ? मैं कौन हूं ? यहाँसे मरकर मैं परजन्ममें कौन होऊंगा ? "

" जो पुनः (कोई एक जीवात्मा) अपनी सन्मतिसे या दूसरेके कथनसे, अथवा किसी अन्य तीसरेके पाससे यह जान लेता है कि मैं अमुक दिशामेंसे आया हूं, अर्थात् जैसे कि मैं पूर्व दिशामेंसे आया हूं । यावत् अन्य दिशा विदिशामेंसे आया हूं । (वैसे ही यह भी जान ले कि—) मेरा आत्मा पुनर्जन्मवाला है । जो इन दिशा विदिशाओंमेंसे आता जाता है । (अर्थात् ऊपर बतलाई हुई) सर्व दिशा—विदिशाओंमेंसे आता जाता है वही मैं हूं । (भगवान कहते हैं ऐसा जो ज्ञाता है) वह आत्मवादी (आत्माको समझनेवाला), लोकवादी (जगतको जाननेवाला) कर्मवादी (कर्मके रहस्यको माननेवाला) और क्रियावादी (कर्तव्यको करनेवाला) कहलाता है । "

जैनसाहित्य संशोधक १—१

ज्ञात पुत्र निर्ग्रन्थ भगवान महावीरका अपूर्व उपदेश व्यावहारिक और पारमार्थिक दोनों दृष्टियोंकी अपेक्षा वस्तुस्वरूपमय

होता था। उपर्युल्लिखित वाक्यसे प्रकट है कि व्यवहार दृष्टिके ज्ञानसे शून्य आत्मा यह नहीं जान सक्ता मैं कौन हूं, कहांसे आया हूं, कहां जाऊंगा इत्यादि। उसी प्रकार विचारविहीन आत्माका कोई अभ्युदय नहीं हो सक्ता, वह अपने जीवनको प्रगतिमान नहीं बना सक्ता। वह मनुष्य होते हुए भी पशुतुल्य है। क्योंकि वह अनात्मज्ञ, लोकके स्वरूपसे अनिभिज्ञ और कर्तव्यविचारसे हीन है। वैसे ही परमार्थ भावसे, जो आत्मा अध्यात्मभाव पराङ्मुख और ऐहिक विषय आसक्त है वह भी वास्तवमें 'संज्ञा' यानी सम्यक्ज्ञान हीन है। वह फिर चाहे व्यवहारसे कितना ही बुद्धिमान, प्रयत्नशील, प्रपञ्चपटु और सतत उद्योगी हो। वह नहीं विचार सक्ता मैं यथार्थमें कौन हूं, मेरा आत्मा क्या है। इत्यादि। जो आत्मा अध्यात्मिक स्वरूपका जिज्ञासु है उसे सत्यमार्ग मिलता है और वह इच्छित स्थान पर पहुंच जाता है। और वही ' आत्मवादी ' है। जो अपने स्वरूपको जाननेवाला 'आत्मवादी' है वही 'लोकवादी' है। वह लोकके स्वरूपको भी जान सक्ता है। और यही लोकवादी कर्मकी विचित्र शक्तियोंका जगतके कार्यकारण भावका ज्ञाता (कर्मवादी) होसक्ता है। और उसी तरह कर्मवादी बननेपर फिर वह ' क्रियावादी अर्थात् सम्यक् और असम्यक् प्रवृत्ति (कर्तव्याकर्तव्य) का स्वरूप और रहस्य समझनेवाला बन सक्ता है। इसी लिए श्री मोक्षशास्त्र (जैन बाइबिल) में मोक्षमार्गको 'सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः' बतलाया है।

जिस प्रकार उपर्युक्त वाक्य परमार्थका उद्बोधक है वैसे ही व्यवहारका भी उद्योतक है। अर्थात् व्यवहारमें जो कोई मनुष्य

समाज और राष्ट्र 'संज्ञा' (चेतना) हीन होकर अपने गतागत यानी भूत भविष्यत्का विचार नहीं करता, वह यह नहीं जान सक्ता कि मेरा भूतकाल कैसा था, वर्तमानमें क्या हालत है, भविष्यमें क्या दशा होगी। इस प्रकारके 'संज्ञा' शून्य मनुष्य, समाज और राष्ट्रसे अज्ञान होकर—अपनी हालतसे अनभिज्ञ होकर जगत (लोक) की स्थितिको नहीं जान सक्के और अपने कर्तव्याकर्तव्य (कर्म) का भी ध्यान नहीं ला सक्के, फलतः उद्यमहीन हो अवनति दशाको प्राप्त-कर नष्ट हो जाते हैं। इसलिए अपने उद्धारके लिए हमें परमार्थ और व्यवहार दोनोंके ज्ञानका उपार्जन करना आवश्यक है। भगवान महावीरका भव्य जीवन इस ज्ञानके उपार्जन करनेमें हमारी सहायता कर सक्ता है। अस्तु, वस्तु स्वरूपका ध्यान रखते हुए क्रमशः चलिए उनके २५०० वर्ष प्राचीन जीवन कालमें प्रवेश कर उनके जीवन चरितसे अपनी आत्माका कल्याण करें। और संसारकी परिस्थिति और कालचक्रका नियातन आदि देखते चलें।

(२)

संसार-परिस्थिति ।

"गीयते यत्र सानन्दं पूर्वाह्ने ललितं गृहे ।
तस्मिन्नेवहि मध्यान्हे, सुदुःखमिह रुद्यते ।"—ज्ञानार्णव ।

जिस घरमें प्रभातके समय आनन्दोत्साहके साथ सुन्दर सुन्दर मंगलीक गीत गाए जाते हैं, मध्यान्हके समय उसी घरमें दुःखके साथ रोना सुना जाता है। संसारकी कुटिल लीला एक अनोखी आश्चर्यमय पुनरपि घटनास्थली है। जिसका आज विकाश है कल उसका अन्त है। दूर क्यों जाइए प्रति दिवस आखोंके सामने दिनकर महाराजका अरुणोदय होता है और पराकाष्टाके उत्कर्षको पहुंचकर अन्तमें अन्तकाल होजाता है। और फिर फिर वही उदय उत्कर्ष और अन्त होता है। चन्द्रकी शुभ्र–श्वेत–वसना–ज्योत्स्ना अपने आलोकसे लोकके हृदयको रञ्जित करती है पर वही क्रमशः लुप्त होती है किन्तु अपना क्रम जारी रखती है। तभी तो कवि कहता है—

"चिन्ता नहीं जो व्योमविस्तृत चन्द्रिकाका ह्रास हो।
चिन्ता तभी है जब न उसका फिर नवीन विकास हो।

सुललित सुवासित रम्य वाटिकामें जो पुष्प थोड़ी देर पहिले पावस पवनके झोंकोंके साथ इठलाती रंगरलियां कर रहा था वही थोड़ी देर पश्चात् आपको अपने क्षणभंगुर जीवनपर पछताते नजर आयगा। बेशक आपको उसकी मनमोहक सूरत और प्यारी मीठी सुगन्धकी याद भले ही रह रहकर आए परन्तु वह पुष्प अब कहां? उसकी जीवनलीलाका अन्त होगया।

इसलिए प्रकृतिके नियमानुसार अथवा वस्तु–स्वरूपके अनु-रूपमें सांसारिक वस्तुऐं उत्पाद–ध्रौव्य–व्यय–युक्त वीरवाणीमें वतलाई गई हैं । प्रत्येक द्रव्यकी यह तीन अवस्थाऐं संसारमें होती रहती हैं । यद्यपि यथार्थमें द्रव्यका अभाव नहीं होता । सोनेकी अंगूठी वनी, (उत्पाद) वनवानेवालेने उसे कुछ दिनों पहिना (ध्रौव्य) अन्तमें तुडवा डाली (व्यय) परन्तु सोना अव भी मौजूद रहा । वही प्रभूवीरकी वतलाई हुई द्रव्यार्थिक और पर्य्या-यार्थिक दृष्टियां यहां भी काम कररहीं हैं । वीर वाणीमें यही उत्कृष्टता है ।

इसी नियमके अनुसार श्री महावीर भगवानने अपने पूर्व गामी तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथजीके शासनका प्रकाश जो अन्य विधर्मी पन्थोंकी वाहुल्यतासे मन्द पड़ गया था उसको पुनः प्रदीप्तकर अपने वीर शासनकी उत्पत्ति की थी । और धीरे धीरे भारतवर्षके समग्र देशोंमें पवित्र वीरशासनका प्रचार किया था । जैसा कि जैन ग्रन्थोंके अतिरिक्त वौद्धशास्त्रों और शिलालेखादिसे प्रकट होता है । वल्कि क्रमानुगत वह पावन शासन विदेशोंमें भी प्रचलित हो गया था; जैसा कि प्रो० एम. एस. रामास्वामी ऐंगार एम० ए० अपने व्याख्यानके मध्य कहते हैं कि “ वौद्ध, श्रमण और जैन साधु अपने धर्मका प्रचार करनेके लिए यूनान, रोम और नारवे जैसे सुदूर देशोंको गए थे । ” (See. The Hindu of 25th July 1919.) पर प्रकृति नियमने पल्टा खाया, जहां प्रायः सव स्थानोंपर धर्मकी प्रभावना होने लगी थी । जैन शासनने सारे संसारपर एक ही साथ दया–शांति–क्षमा आदिकी पुण्यभावनाऐं

फैलाई थीं। वहां अब न कोई प्रभू महावीरका नाम जानता है और न उनके शासनको ! उसी पवित्र शासनकी यह शोचनीय दशा है। वह गरिमा जाने कहां पलायमान होगई। न जाने यह सब कहां गया ! परन्तु यह सब वस्तुस्वभावत् है। वीर शासनके जैन ग्रन्थोंमें इसी लिए संसारमें एक कालचक्रका नियम बताया है जो निम्न लिखे अनुसार है। इसी कारण महावीर भगवानके चरित्रके पठनपाठनकी आवश्यक्ता है। उससे वस्तु स्वभावका हमको ज्ञान होगा। वैसे तो महान् आत्माओंके जीवन पढ़े ही जाते हैं क्योंकि "महाजनाः येन गताः सः पन्थः" और उनका अनुकरण करना सबको अभीष्ट है।

(३)

कालचक्र।

**"सा रम्या नगरी महान्स नृपतिः सामन्तचक्रं च तत्।
पार्श्वे तस्य च सा विदग्धपरिषत् ताश्चन्द्रबिम्बाननाः॥
उन्मत्तः स च राजपुत्रनिवहस्ते वन्दिनस्ता कथाः।
सर्वं यस्य वशादगात्स्मृतिपथं कालाय तस्मै नमः"**

जो कालचक्र अपने प्रभावसे तीर्थंकर जैसी महान् आत्माओंके तीर्थ मार्गको वंचित नहीं रख सका उसका वर्णन करनेके पहिले उपर्युक्त श्लोकके अनुसार उसका अभिवादन करलें क्योंकि यह इसीकी महिमा है जो धर्मके ह्रास होनेपर श्री तीर्थंकर भगवान उसको पुनः प्रकट करते हैं। अस्तु "वह रम्य नगरी, वे महान् नरपति, वे योद्धा, वह चक्र और वह उनकी पार्श्ववर्ती

पण्डित सभा, वे चंद्रमुखी रानियां, वह उन्मत्त राजपुत्रोंका समूह, वे वन्दीजन और वे कथाएं ये सव विषय जिसके प्रभावसे स्मृति-पथको प्राप्त होगए, उस कालचक्रको नमस्कार है। "

वीर वाणीमें कहा है काल अनन्त है। परन्तु इसके अन्तर्गत कितनेक विभाग हैं। प्रत्येक विभाग (काल) के दो युग हैं। (१) अविसर्प्पिणी अर्थात् वह युग जिसमें धर्मका ह्रास होता जाता है और अन्तमें जिसमें संसारके भीतर अधर्म और भ्रमका साम्राज्य जम जाता है। इस युगमें प्रत्येक शुभ वस्तुकी अवनति होती है और सत्य (Truth) का लोप होजाता है। और (२) उत्स-र्प्पिणी अर्धकल्प अर्थात् वह युग जिसमें धर्मकी उन्नति होती है, सत्यका प्रकाश होता है। यह दोनों युग प्रत्येक छे कालों (Ages) में विभक्त हैं जिनका समय विभाग एक दूसरेसे विभिन्न है और वह सदैवके लिए उसी प्रकार है—किञ्चित भी घट वढ़ नहीं सक्ता और न उनके क्रममें किसी प्रकारका अन्तर आसक्ता है। इस प्रकार वर्तमान युग—अर्धकल्प अविसर्पिणीके छह काल हैं। (१) सुखमा—सुखमा अर्थात् वह काल जिसमें खूब सुख होता है। (२) सुखमा, वह काल जिसमें सुख होता है (३) सुखमा—दुखमा वह काल जिसमें सुख होता है और साथमें कुछ दुःख भी होता है। (४) दुःखमा—सुखमा; वह काल जिसमें दुःख होता है, पर साथमें किञ्चित् सुख भी होता है। (५) दुःखमा; वह काल जो दुःख पूर्ण होता है। यही वर्तमानमें चालू काल है। इसको आए अनुमान '२४०० वर्ष गुजर चुके हैं। (६) दुःखमा दुःखमा, वह काल जिसमें महान् दुःख होगा। दूसरे युग उत्सर्प्पिणीके

छह कालोंके भी यही नाम हैं। परन्तु उनका अनुक्रम अविसर्प्पिणीके विपरीत है। अर्थात् उसका प्रथम काल दुःखमा दुःखमा होगा और इसी क्रमसे अवशेप अन्य काल होंगे। इस प्रकार अविसर्प्पिणीके प्रथम तीन काल और उत्सर्प्पिणीके अन्तिम तीन काल भोगभूमिके नामसे विख्यात हैं। इनमें सांसारिक सुखोंका आनन्द है; इनमें मनुष्य जन्म लेता है, जीवन व्यतीत करता है, मृत्युको प्राप्त होता है; परन्तु किसी अवस्थामें भी दुःख-का अनुभव नहीं करता है। प्रत्येक अपनी इच्छाकी पूर्ति कल्प-वृक्षोंसे करता है। अवशेष तीन काल कर्मभूमि कहलाते हैं। अर्थात् क्रिया—कर्तव्यका समय। इनमें मनुष्यको अपने जीवन-निर्वाहके लिए कार्य करना पड़ता है, अपने जीवनके आरामके लिए श्रम उठाना पड़ता है, और भविष्य जीवनकी उत्तमताके लिए प्रयत्न करने पड़ते हैं। इन अंतिम तीन कालोंके प्रथम कालमें अर्थात् वर्तमान युग (अविसर्पिणी) के चतुर्थकालमें नियमसे २४ तीर्थंकर अवतीर्ण होते हैं। और अन्य महापुरुष भी जन्म धारण करते हैं। इस प्रकार प्राकृतिक रीत्यानुसार कालचक्र है।

(४)

तीर्थंकर कौन हैं ?

" For if the dead rise not, then is Christ not risen." —St. Paul (I Cor. XV. 16).

बाइबिलमें पोलस रसूलके वाक्यसे विदित है कि " यदि मुर्दे जी नहीं उठते तो ईसा भी नहीं जी उठा है।" आत्माएँ सदैव आत्मिक (रूहानी) मृतावस्थासे जी उठती रही हैं।" (अर्थात् अज्ञानावस्थासे निकलकर अपने आत्मज्ञानको प्राप्त करती रही हैं।) और निर्वाण प्राप्त करती रही हैं। परन्तु तीर्थंकर प्रत्येक कालमें केवल २४ होते हैं। वह समस्त जीवित प्राणियोंमें सर्वोत्कृष्ट होते हैं और अपने पिछले जन्म या जन्मोंमें विविध शुभ गुणोंमें अपनेको पूर्ण करनेके कारण सबसे उत्तम और उत्कृष्ट पद पाते हैं।

तीर्थंकर वह मनुष्य हैं जो अपने विषयमें किताब मुकाशफाके शब्दोंमें यह कह सक्ते हैं:—

" मैं वह हूं जो मर गया था और देख मैं अनन्तकाल तक जीवित रहूंगा। और नर्क व मृत्युकी कुञ्जियां मेरे आधीन हैं।"

(अ० १ आ० १८ ।)

तीर्थंकरका पद केवलज्ञान प्राप्त होनेपर जो आत्मा परसे ज्ञानके रोकनेवाले परदे (ज्ञानावरण) के हटनेका फल है, प्राप्त होता है। तीर्थंकर भूख, प्यास, राग, द्वेष, जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक, भय, आश्चर्य, निन्दा, थकावट, पसीना, घमण्ड, मोह, अरति, और चिन्तासे रहित होते हैं। स्वर्गलोकके देव और मनुष्य

उसकी पूजा करते हैं। उसकी आवाज मिस्ल बहुतसी धाराओंके होती है (मुकाशफा अ० १ आ० १५) जो बहुत दूर तक सुनाई देती है। और जिनवाणी (ईश्वरीय वाणी) वा श्रुति कहलाती है। "उसका मुख ऐसा चमकता है मानो हजार सूरज एक स्थानपर एकत्रित होगए हों। उसके पांव भट्टीमें तपाए गए पीतलकी तरह चमकदार होते हैं। उसके नेत्र अग्नि सदृश प्रदीप्त होते हैं।" (मुकाशफ अ० १ आ० १४–१५ ईसाई बायबलके शब्दोंमें वर्णित)। दयाकी सच्ची मूरत वह धर्म प्रेमियोंको सच्चे धर्मका उपदेश निर्वाण प्राप्त करने तक देता है जबकि उनकी आत्मा पुद्गलसे अलग हो जानेके कारण परमात्माके शुद्धरूप कर्म मरण दुःख और मूढतासे मुक्त और सर्वज्ञता अक्षयसुख अमर जीवन और कभी कम न होनेवाली शक्तिको प्राप्त होजाती है। ऐसी अवस्थामें पुद्गलके न होनेके कारण, जो आवाजके लिए आवश्यक है, फिर श्रुति अवस्थित नहीं रहती है। तीर्थंकरों और अन्य पवित्र परमात्माओंकी, जिन्होंने निर्वाण प्राप्त किया है, किसी प्रकारकी इच्छा मनुष्योंसे अपनी पूजा करानेकी नहीं होती है। और न वह वलि व अर्चनके उपलक्षमें किसी प्रकारकी वस्तुओं नियामतोंको देनेका संकल्प करते हैं। वह इच्छा और वाञ्छासे रहित हैं। उनके गुण अवर्णनीय हैं। उनकी पूजा मूर्तिपूजा नहीं है बल्कि आदर्श पूजा है।" (असहमतसंगम, व्या० ७ वां)

हिन्दी विश्वकोष भाग १ खं० ३१–३२ पृ० २१८ परसे इस विषयमें जाना जासक्ता है कि "जैनमतसे, जीवके इस संसारमें दुःख देनेवाले ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय, अन्तराय, वेदनीय,

आयु, नाम, गोत्र ये आठ कर्म हैं। इनमेंसे पहिले चार कर्मोंको घातिया (आत्माके अनन्तज्ञान, सर्वज्ञत्व, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख अनन्तवीर्यको आवृत करनेवाले) और शेष चारको अघातिया कर्म कहते हैं। तपके प्रभावसे जिस समय यह आत्मा घातिया कर्मोंको नष्ट कर देता, उस समय उसके पूर्वोक्त चारों गुणोंका आर्विभाव होता है। उससे वर्तमान, भूत, भविष्यत् कालके संपूर्ण पदार्थोंको आत्मा युगपत जानता और रागद्वेष विहीन (वीतराग) होजाता है। ऐसे आत्माको अर्हन्त (अर्हन्त) केवली, सर्वज्ञ, वीतराग आदि नामोंसे पुकारते हैं। अर्हन्त् (केवली) दो प्रकारके होते हैं। एक सामान्य, दूसरे तीर्थंकर। तीर्थंकर केवलियोंके केवलज्ञान होनेसे पहिले गर्भ, जन्म और तपके समय देवता स्वर्गसे आकर उत्सव किया करते हैं। फिर सामान्य केवलियोंके केवलज्ञान होते समय ही देवता उत्सव करते हैं। जिस समय केवलज्ञान होता है, उस समय कुबेर इन्द्रकी आज्ञासे समवशरण (धर्मसभा) की रचना बनाते हैं। उसमेंसे एकमें मुनि, एकमें आर्यिका, एकमें श्राविका, एकमें श्रावक, एकमें पशुपक्षी, ४ में चारों तरहके (भवनवासी, व्यन्तर, ज्योतिषी, वैमानिक) देव, और चारमें चारों प्रकारकी देवाङ्गनाऐं बैठकर भगवानका पवित्र उपदेश सुनते हैं। भगवानके विराजनेका एक खास स्थान होता, जिसे गन्धकुटी कहते हैं। कुबेर रत्नमय सिंहासन पर सुवर्णके कमल रचता है, भगवान उस पर भी चार अङ्गुल अन्तरिक्ष विराजते हैं। देव उनपर चंवर ढोरते हैं, कल्पवृक्षोंके फूलोंकी वर्षा होती है। देवोंद्वारा बजाए गए दुन्दुभि वाजोंके शब्दोंसे आकाश पूर्ण होजाता है। उस समय

भगवानके शरीरका तेज एक साथ उगे हुए सूर्योंके तेजसे भी अधिक होजाता है* । उनके वैसे समयकी विभूति दर्शनीय और अति विचित्र है । भगवानके प्रभावसे चारों तरफ सौ सौ योजन (चारसौ कोस) तक दुर्भिक्ष नहीं पड़ता, परस्पर विरोधी जीव किसीको किसी प्रकार कष्ट नहीं पहुँचाते, भगवान पर किसी तरहका उपसर्ग नहीं उठता । उनको क्षुधा तृषा नहीं लगती, उनके शरीरकी परछांई नहीं पड़ती, आंखोंके पलक नहीं झपकते, केश और नख नहीं बढ़ते। उनका शरीर स्फटिकसा निर्मल रहता है। घातिया कर्मोंके नाश होनेसे भगवानके ये अतिशय प्रकट होते हैं। भगवानका उपदेश अर्धमागधी भाषामें होता है, जिसे सब अपनी २ भाषामें समझ लेते हैं। समवशरणमें कुत्ता, बिल्ली, सिंह, गाय, सांप, नेवला आदि परस्पर विरोधी जीव भी रहते हैं; परन्तु उन सबमें वहां प्रेम होता है, कोई किसीको कष्ट नहीं देता। भगवान जहां जहां विहार करते, वहां वहां सब ऋतुओंके फलफूल लग जाते हैं। कांचके समान पृथिवी निर्मल दिखती है। वायुकुमार देव—यह एक योजन (चार कोस) जमीनको साफ करते हैं। मेघकुमार देव शीतल, मन्द, सुगन्धित जल बरसाते हैं। स्वर्गके देव भगवानके चरणोंके

*इन वाक्योंको इस अध्यायके प्रारंभिक वाक्यके उन शब्दोंसे जो ईसाई शास्त्र मुकाशफा अ० १ आ० १४–१५ के हैं मिलान कीजिए। ईसाई धर्ममें जैनधर्मके वर्णनका सादृश्य इस प्रकार होना एक गोचरणीय बात है। मि० चम्पतराय जैन बैरिष्टरने अपनी असहमतसंगम नामक पुस्तकमें ईसाई धर्ममें भावार्थमें जैनधर्मके सिद्धान्तोंका वर्णन प्रकट कर दिया है।

नीचे सुवर्णके कमलोंको रचते जाते हैं, सब दिशाएं स्वच्छ होजाती हैं। देवता लोग भगवानका जय जयकार बोलते हैं। धर्मचक्र भगवानके आगे चलता है। सब चौदह देवकृत अतिशय भगवानको केवलज्ञान उत्पन्न होनेसे होते हैं। भगवान १८ दोषोंसे रहित, क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिकचरित्र, केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तदान, अनन्तलाभ, अनन्तभोग, अनन्त उपभोग और अनन्त वीर्यसे शोभायमान होते हैं।" इन्हींके उपदेशको जैनधर्म कहते हैं।

इस प्रकार तीर्थंकर भगवानका स्वरूप है। उनके संबंधमें जैन शास्त्रानुसार वर्णन की हुई वहुतसी वातोंपर आधुनिक सभ्य समाजको सहसा विश्वास न होगा। वह ऐसी वातोंको असंभवताके गर्तमें पटकते नहीं हिचकिचाएंगे परंतु विचार करनेसे इनका सत्यांश बुद्धिको स्वीकार करना पड़ता है। आधुनिक पुद्गलवादके जमानेमें जो आश्चर्यजनक उन्नति इस पौद्गलिक शक्तिकी सभ्य समाजने की है वैसी ही परमोच्च उन्नति उस जमानेके आत्मवादी मनुष्योंने आत्मवादमें की थी। इसलिए इन वातोंपर विश्वास किया जासक्ता है। जैसे कि अब पुराण वर्णित विमान और अग्निरथ आदिका विश्वास लोगोंको होगया है। जैनधर्मके वर्णनानुसार वनस्पतिमें भी अब जीवनशक्तिका होना प्रमाणित कर दिया गया है। अस्तु आत्माकी अनन्त शक्ति है। उसके प्रभावसे कोई भी कार्य सहसा असंभव नहीं कहा जासक्ता। और उनका वर्णन अतिशयोक्ति नहीं है।

श्रीयुक्त सुशील अपने मणिभद्र उपन्यासकी भूमिकामें श्री महावीर प्रभूके अद्भुत प्रभावके संबंधमें लिखते हैं कि "इस बुद्धि-वादके युगमें Spiritual Force अध्यात्मिक वलकी जैसी चाहिए

वैसी मान्यता न रहनेके कारण ऐसी घटनाओंमें लोगोंको शंका होती है; परन्तु उन्हें जानना चाहिए कि आध्यात्मिक बल एक ऐसा बल है कि उसके सामने सब बल निःसत्व होजाते हैं। इस प्रभावका स्वरूप वे ही लोग देख सक्ते हैं जो ईश्वरतत्वके स्वरूपको समझ चुके हैं। ऐसे अनुभवमें न आने वाले विषयकी बुद्धि द्वारा शब्दोंमें व्याख्या करना व्यर्थ है। स्पिनोजा (Spinoza) नामके एक तत्ववेत्ताने बहुत ठीक कहा है:—To difine God is to deny him. अर्थात् ईश्वरकी व्याख्या करना मानो उसे अस्वीकार करना है। "....यह युग शरीरबल और कुछ थोड़े विज्ञानबल या बुद्धिबलको समझने लगा है; परन्तु आध्यात्मिक बलके समझनेके लिए इसे अब भी बहुत कुछ प्रगतिकी आवश्यक्ता है।"

अस्तु, प्रत्येक अविसर्पिणीके चतुर्थकालमें ऐसे ही २४ तीर्थंकर जन्म धारण करते हैं। और वैज्ञानिक रीत्या अथवा वस्तु स्वरूपके अनुसार सत्य धर्मका स्वरूप भवाताप भयभीत जगतको समझते हैं और उसको सच्चे सुखका रास्ता बतलाते हैं। यह २४ तीर्थंकर क्रमवार धर्मका उद्योत करते हैं। इस प्रगतिशील युगमें श्री ऋषभदेवको आदिले महावीर भगवान तक २४ तीर्थंकर हुए थे। इन्होंने अपने २ समयमें धर्मका प्रचार किया था। इनका पूर्ण वर्णन जैन पुराणोंमें मिलता है। हम यहांपर अगाड़ी चलकर इनके जीवन पर साधारणरीत्या प्रकाश डालेंगे; जिससे कि भगवान् महावीरके जीवनको समझनेमें हमको सहायता मिले।

(५)
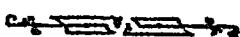
श्री ऋषभदेव ।

" सयम्भुवा भूतहितेन भूतले
समञ्जसज्ञानविभूतिचक्षुषा ।
विराजितं येन विधुन्वता तमः
क्षपाकरेणेव गुणोत्करैः करैः ॥ "

— बृहत्स्वयंभूस्तोत्र ।

विक्रमकी दूसरी शताब्दिमें होनेवाले श्रीमद्भगवद्वादिगजकेसरी स्वामी समन्तभद्राचार्य प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेवके विषयमें कहते हैं कि "दूसरेके उपदेश विना ही अपने आप मोक्षमार्गको जानकर अनन्त चतुष्टयरूप होनेवाले तथा परम दयालु होनेसे प्राणियोंको मोक्षसुखके प्रथम प्रदर्शक अतएव हितकारक, और यथावत् (ठीक २) सम्पूर्ण पदार्थोंको साक्षात् करनेवाली ज्ञान-लक्ष्मीरूप नेत्रवाले, और सम्यक्दर्शनादि गुणोंके समूहरूप किरणोंसे ज्ञानावरणादि कर्मान्धकारको अथवा ज्योंके त्यों स्थित पदार्थोंके प्रकाशक गुण समुदायरूप किरणोंके द्वारा प्राणियोंके अज्ञानान्धकारको हरनेवाले चन्द्रमाके समान श्री आदिनाथ (ऋषभदेव) भगवान इस पृथ्वीपर सुशोभित हुए । "

इस भरतक्षेत्रमें अविसर्पिणीके प्रारंभमें जब भोगभूमिका लोप होगया तब कर्तव्यवाद (कर्मभूमि)का समय आया। उस समय लोग अपने मानवीय जीवनकी प्रारंभिक बातोंसे अनिभिज्ञ थे। ऐसे समय जगतके आदि गुरु, उपर्युक्त गुणोंवाले मति, श्रुति, अवधिज्ञानके धारक श्री ऋषभदेव तीर्थंकर भगवान अवतीर्ण हुए थे। इन्हींके

कुलकरोंद्वारा आर्यसभ्यता पल्लवित हुई थी। उन्होंने मनुष्योंको उनके दैनिक कृत्य असि, मसि, कृषि आदि जीवनोपयोगी कला-चातुर्य्य और शिल्प आदि लौकिक कृत्य बतलाए थे और पारलौकिक हितके लिए वस्तु तत्वमय यथार्थ आत्मधर्मका स्वरूप समझाया था, यथार्थ स्थायी परमसुखका मार्ग बतलाया था और स्वयं उसपर चलकर संसारके संसर्गसे मुक्त होगए थे। मोक्ष होनेके पहिले आपने सर्व तीर्थंकरोंकी भांति सदुपदेश दिया था। उसी प्रकार इस कालमें आप हीने सर्व प्रथम जैनधर्मका प्रकाश किया था। चौदह कुलकरों (मनुओं) मेंसे आप अन्तिम मनु श्री नाभिरायके पुत्र थे और माता मरुदेवी थीं। आप इक्ष्वाकुवंशके आदि जन थे। आपके दो विदुषी सहधर्मणीं यशस्वती और सुनन्दा थीं। यशस्वतीसे भरत और पुत्री ब्राह्मी व अन्य पुत्रोंका जन्म हुआ था। और सुनन्दासे बाहुबली व सुन्दरी नामक कन्याका जन्म हुआ था। ये दोनों कन्यायें ही वह भारतीय ललनाऐं हैं जिन्होंने सर्व प्रथम साधुवृत्ति धारण की थी। उन्होंने अपने पिता ऋषभदेवके निकट आर्यिकाके व्रत ग्रहणकर देशविदेश भ्रमणकर दुःखित आत्माओंका कल्याण किया था। वृषभदेवके पौत्र मरीचने भी संसार त्याग दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण की थी; पर वह तपश्चरणकी कठिनताको सहन न कर सके, और अपने एक अन्य मार्ग–मतका अवलम्बन करने लगे थे। भगवानके पुत्र भरत चक्रवर्ती और बाहुबलिमें युद्ध हुआ था। बाहुबलिने भरतको परास्त किया था, परंतु तत्क्षण बाहुबलिको इस घटनासे वैराग्य उत्पन्न होगया था। और उन्होंने मुनिधर्मकी शरण लेकर मुक्ति लाभ किया था।

आपकी इस पुण्यमई स्मृतिमें दक्षिण भारतमें श्रवणबेलगोल आदि स्थानोंपर आपके दीर्घकायक (६० फीट ऊंचाईके) प्रतिविम्ब आज भी देशविदेशके यात्रियोंको संसारकी नश्वरता और संयमकी उत्तमताका उपदेश देरहे हैं। भगवान ऋषभदेवको प्रथम भोजन हस्तिनागपुरके राजा श्रेयांसने इक्षुरसका कराया था। अन्तमें जैनधर्म और सभ्य भारतीय सभ्यताका उद्योतकर आपने श्री कैलाशपर्वतसे विजयलक्ष्मी प्राप्तकर परमानन्दमय अनन्तसुख प्राप्त किया था।

"हिन्दूशास्त्रोंमें भी आपका वर्णन है। आश्चर्यका विषय है कि जैनियोंके आदि गुरुको हिन्दुओंने अपना आठवां अथवा नवमां अवतार माना है। श्री ऋषभदेवने ही पहिले पहिल अक्षरलिपिकी उत्पत्ति की थी जैसा कि हिन्दी विश्वकोष भाग प्रथम पृष्ट ६४ में भी अनुमान किया गया है कि "ऋषभदेवने ही संभवतः लिपि-विद्याके लिए लिपिकौशलका उद्भावन किया था।........ऋषभदेवने ही संभवतः ब्रह्मविद्या शिक्षाकी उपयोगी ब्राह्मी लिपिका प्रचार किया; हो न हो, इसीलिए वह अष्टम अवतार वताए जाकर परिचित हुए।"

इस कोषके तृतीय भाग पृष्ट ४४४ पर ऋषभदेवके विषयमें लिखा है कि "भागवतोक्त २२ अवतारोंमें ऋषभ अष्टम हैं। इन्होंने भारतवर्षाधिपति नाभिराजाके औरस और मरुदेवीके गर्भसे जन्मग्रहण किया था। भागवतमें लिखा है कि जन्म लेते ही ऋषभदेवके अंगमें सब भगवत लक्षण झलकते थे। सर्वत्र समता, उपशम, वैराग्य, ऐश्वर्य और महैश्वर्यके साथ उनका प्रभाव दिन दिन बढ़ने लगा। वह स्वयं तेज, प्रभाव, शक्ति, उत्साह, कान्ति और यशः प्रभृति गुणसे सर्व प्रधान बन गए....ऋषभदेवने

अपने ज्येष्टपुत्र भरतको राज्य सौंप परमहंस धर्म सीखनेके लिए संसार त्याग किया था। उसी समय उन्होंने उन्मत्तके न्याय दिगंबर वेशमें आलुलायित केश हो ब्रह्मावर्त्तसे पैर बढ़ाया।....

"भागवतमें ऋषभदेवका धर्ममत इस प्रकार कहा है:—

'मानव देह पा मनुष्यको समुचित आचरण करना चाहिए। जो सकलका सुहृद, प्रशान्त, क्रोधहीन एवं सदाचार रहता और सबपर समान दृष्टि रखता, वही महत् ठहरता है। जो धनपर स्पृहा तथा पुत्र कलत्रादिपर प्रीति नहीं रखता और ईश्वरपर निर्भर कर चलता, वही मनुष्योंमें बड़ा निकलता है। इन्द्रियकी तृप्ति ही पाप है। कर्म स्वभाव मन ही शरीरके बन्धका कारण बन जाता है। स्त्रीपुरुष मिलनेसे परस्परके प्रति एक प्रकार प्रेमाकर्षण होता है। उसी आकर्षणसे महामोहका जन्म है। किन्तु उस आकर्षणके टलने और मनके निवृत्तिपथपर चलनेसे संसारका अहङ्कार जाता तथा मानव परमपद पाता है।

"भागवतमें लिखते, कि ऋषभदेव स्वयं भगवान् और कैवल्यपति ठहरते हैं। योगचर्या उनका आचरण और आनन्द उनका स्वरूप है। (भागवत ५।४,५,६ अ०)

जैनियोंके प्रथम तीर्थंकर ही यह ऋषभदेव हैं। उनके जीवनकी मुख्य २ बातोंको जैसे माता-पिताका नाम, जन्मसे भगवत-गुण तीन ज्ञानसे परिपूर्ण होना, दिगम्बर दीक्षा धारण करना इत्यादिको हिन्दूशास्त्रमें भी जैन शास्त्रानुसार ही वर्णित किया है, किन्तु उनके धर्मके विषयमें अवश्य ही ब्राह्मण और जैनोंकी आपसी प्रतिस्पर्धाके कारण छिन्नभिन्न किया गया है। आपके

धर्म जैनधर्मका यथार्थस्वरूप अगाड़ी अवलोकन करेंगे। हिन्दुओंके वराहपुराणमें भी ऋषभदेवका उल्लेख है:—

तस्य भरतस्य पिता ऋषभः हेमाद्रेर्दक्षिणं वर्षं महद्भारतं नाम शशास॥

तथैव अग्निपुराणमें कहा है:—

"ऋषभो मरुदेव्यांज ऋषभाद्भरतोऽभवत्।
भरताद्भारतं वर्षं भरतात्सुमतिस्त्वभूत्॥

योरोपीय पूर्वी भाषाभाषी विद्वानोंमें मि० जे० स्टीवेन्सन इस विषयको स्वीकार करते हैं कि ऋषभदेवके विवरण हिन्दू और जैनशास्त्रोंमें समान रीतिपर हैं। वह क्षत्रिय थे और उनके ज्येष्ठ पुत्र भरतके नामसे ही भारतवर्ष नाम इस देशका पड़ा है।

डॉ० फुहररने मथुराके स्तूपका अध्ययन करके निश्चय किया है कि एक अति प्राचीन समयमें श्री ऋषभदेवको अर्चन आदि अर्पित किए गए थे।

इन सब बातोंसे यह जाना जा सक्ता है कि भारतीय आर्य सभ्यताके प्रथम संस्थापक श्री ऋषभ भगवान हैं। और इन्हींने जैनधर्मकी उत्पत्ति इस युगमें की थी। यह केवल भ्रम है कि श्री महावीरस्वामीने जैनधर्मको स्थापित किया था। अथवा २२ वें तीर्थंकर नेमिनाथ वा २३ वें तीर्थङ्कर भगवान पार्श्वनाथ जैनधर्मके प्रणेता थे।

जैनधर्मके संस्थापनका श्रेय जब २२ वें व २३ वें तीर्थंकरोंको भी श्री महावीर भगवानके समान ही दिया जाता है, तो आइए उनके विषयमें भी हम खास तौरपर श्री महावीर भगवानके साथ २ कुछ ज्ञान प्राप्त कर लें।

(६)

श्री नेमिनाथजी ।

" हरिवंशकेतुरनवद्यविनयदमतीर्थनायकः ।
शीलजलधिरभवो विभवस्त्वमरिष्टनेमिजिन-
कुञ्जरोऽजरः ॥ "

—बृहत्स्वयंभूस्तोत्र ।

अर्थात् हरिवंश (विष्णुवंश) का केतु, निर्दोष ज्ञान, दर्शन, तप, चारित्र उपचाररूप पंच विनय या पञ्चेन्द्रिय विजय करनेवाले शास्त्रके स्वामी, (प्रणेता) शीलधर्म पालनेमें समुद्र स्वरूप, संसार रहित, अजर, जिनोंमें हाथीके सदृश प्रधान आदि विशेषणों सहित अरिष्ट नेमि तीर्थङ्कर हुए ।" गुजरातके प्रख्यात यादववंश हरिवंशमें ही आपका जन्म हुआ था। आप अपने अनुगामी तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथसे ८४००० वर्ष पहिले हुए थे। राजा समुद्रविजयके पुत्र थे। जिस समय आपका पाणिग्रहण राजा उग्रसेनकी पुत्री राजमतीसे होने जा रहा था उस समय मार्गमें श्वसुर राजप्रसादके निकट आपको बंधनमें पड़े हुए पशुओंके आर्त्त-पूर्ण शब्द सुन पड़े। पूछने पर ज्ञात हुआ कि यह पशु भोजनके निमित्त पकड़े गए थे। अस्तु मूक पशुओंकी इस विलविलाहटने परम दयालु नेमनाथके पवित्र युवक हृदयमें दयाका उद्रेक वह निकाला। प्रभूने उन निरापराध पशुओंको बन्धनमुक्त किया और आप अपने राज्याभूषण उतार संसारसे विरक्त हो सांसारिक विषयभोगोंके लिए राजकुमारी राजमतीसे पाणिग्रहण न कर मोक्षलक्ष्मीरूपी परमानन्द प्रदायिनी परमसुंदरीको प्राप्त करनेके लिए कठिन तपश्च-

रणका आराधन दिगम्बरीय दीक्षा ले करने लगे। इनकी भावी सहचरी राजमती भी अपने भाविके निकट आर्यिका होगई थीं। अन्तमें नेमनाथजीने गिरनार पर्वतसे मोक्षरूपी कन्याको वराथा और राजमती भी वहींसे स्वर्गको सिधारीं थी। इनके स्मृति चिह्नमें गिरनार पर्वतपर चरण चिह्न और गुफा जिसमें राजमती रहीं थीं, मौजूद हैं।

कहा जाता है कि अर्जुनके परम हितैषी मित्र भगवद्गीताके कृष्ण नेमनाथके भतीजे थे। हिन्दूशास्त्र विशारद जैनियों यदि चाहें तो इन २२वें तीर्थंङ्करके विषयमें हिन्दूशास्त्रोंका अनुशीलन करनेसे बहुत कुछ प्रकाश पासक्ते हैं। और इतिहासपर रोशनी डाल सकते हैं।

यजुर्वेद अध्याय ९ मंत्र २९ में इनके विषयमें इस प्रकार एक श्लोक अवश्य दिया है जैसा कि मासिक पत्र "दिगम्बर जैन" के वीर सं० २४४३ के खास अङ्कके पृष्ट ४८ Aसे विदित हैः—

वाजस्यनु प्रसव आवभूवेमा च विश्वभुवनानि सर्वतः।
स नेमिराजा परियाति विद्वान् प्रजां पुष्टिं वर्धयमानो॥
अस्मै स्वाहा।

अर्थात् (स्वाहा) यह अर्चन उन (अस्मै) प्रभू नेमिनाथ (२२वें तीर्थङ्कर) को (समर्पित है, जो) (राजा) केवलज्ञान आदिके प्रभू (च) और (विद्वान) सर्वज्ञ (हैं) (स) जिन्होंने वर्णित किया है (आवभूव) उसका यथार्थ रूपमें (सर्वतः) और ज्ञानके प्रत्येक योग्य साधनमस्यके साथ (वाजस्य) जो (ज्ञान) एक व्यक्तिके आत्माका है (विश्वभुवनानि) इस लोकके प्रत्येक जीवधारीको और (उनके हितैषी उपदेशसे) (पुष्टि) आत्मज्ञानकी शक्ति (नु) तत्क्षण (वर्धयमानो) बढ़ती है (प्रजा) जीवोंमें।

इससे प्रकट है कि वेदोंके रचियता कृष्णके समकालीन तीर्थ-कर भगवान नेमिनाथको भूले नहीं थे और यज्ञाहुतिके समय उन्होंने उनका भी स्मरण किया था। इस प्रकार यदि यह विषय आधुनिक इतिहासवेत्ताओंको स्वीकृत हो, जिसके स्वीकृत न होनेमें कोई विशेष कारण प्रगट नहीं होते तो जैनधर्मकी ऐतिहासिक प्राचीनता श्री पार्श्वनाथसे भी अगाडी बढ़ जाती है। और इसी प्रकार यदि अन्य मध्यवर्ती जैन तीर्थंकरोंके विषयमें अध्ययन किया जाय तो उनके विषयमें भी बहुत कुछ स्वाधीन रूपमें प्रकट होना संभव है। वैसे तो उनका वर्णन जैन शास्त्रोंमें वर्णित है। और सामान्यमें अगाड़ी दिया जायगा।

हम इस प्रकार देखते हैं कि हिन्दुओंके श्री कृष्णके साथ जैनियोंके २२वें तीर्थंकर भगवान नेमिनाथका सम्पर्क होनेके कारण और उनका जन्म द्वारिकामें होने व तप व निर्वाण आदि कृष्णके राजगृह द्वारिका धामके अति समीप होनेके कारण कहीं कहीं जन-साधारणमें यह भ्रम फैल जाना उपयुक्त है कि जैनी बाबा नेमि-नाथके उपासक हैं। और जैनधर्मके प्रणेता वही थे। यद्यपि वास्त-वमें जैनधर्मकी वर्तमान युगकालीन उत्पत्तिका मुकट हम पहिले ही यथार्थरीत्या श्री ऋषभदेवजीके बांध चुके हैं। अस्तु, अब आइए २३ वें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथजीके सम्बन्धमें भी महावीर भगवान तक पहुंचनेके लिए कुछ विचार करलें।

(७)

श्री पार्श्वनाथजी।
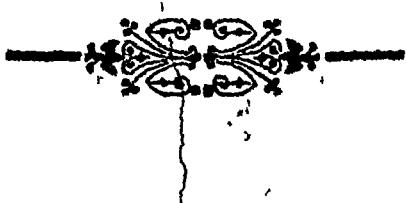
'बृहत्फणामण्डलमण्डपेन यं स्फुरत्तडित्पिङ्गरुचो
पसर्गिणाम्।
जुगूह नागो धरणो धराधरं विरागसन्ध्यातडिद-
म्बुदो यथा १३२॥

— बृहत्स्वयंभू स्तोत्र।

"उपसर्ग युक्त जो पार्श्वनाथ हैं उसके धरणेन्द्र नामके सर्प-राजने अपनी पीली विजलीकी भांति चमकते हुए कांतिवान फण समूहसे वेष्टित किया है (अर्थात् उपसर्ग दूर किया है।) जिस प्रकारसे मानो संध्याकी लालिमा नष्ट हो जाने पर उसमें जो पीत विद्युतसे मिला हुआ पीत मेघ पर्वतको आच्छादित करता है।"

श्री महावीर भगवानसे २५० वर्ष पहिले २३ वें तीर्थङ्कर काशीके अधिपति अश्वसेनके पुत्र श्री पार्श्वनाथ स्वामी हुए थे। उन्हींका उल्लेख उपर्युक्त श्लोकमें है कि जब आप बरेली जिलेमें अवस्थित आंवलाके निकट आधुनिक अहिच्छेत्र (रामनगर) स्थानपर शुक्लध्यानमें ध्यानारूढ़ थे; तब कमठके जीव देवने अहङ्कार वश क्रोधित हो आपपर उपसर्ग किया था। कारण एक दफेका पूर्व वैर था, कमठ तापसके शरीरमें लक्कड़ सुलगाए पंचाग्नितप रहा था। उस लक्कड़के भीतर खोखालमें एक सर्पयुगल अवस्थित था। तापसको उनका भान नहीं था। प्रभूपार्श्वनाथ जो तीन ज्ञानके धारी थे उधरसे विहार करते निकले और तापसकी इस अज्ञानता और सर्पयुगलकी अकाल मृत्युका चिंतवनकर उसको यह भ्रम बतलाते

हुए । क्रोधित हो तापसने लक्कड चीड़े तो उसमें मरणासन्न सर्प-युगल निकले । भगवानने सर्पोंको उपदेश दिया जिससे समताभावसे प्राण त्यागकर वे स्वर्गमें देवता हुए । तापस मरकर व्यंतर हुआ । और कई भवोंके वैरके कारणवश जब भगवान ध्यानमें लवलीन थे तब उन पर नाना प्रकारके कष्टोंका प्रहार करने लगा । भगवान धीरवीर ध्यानसे अविचल थे । उसने जब अग्न्यादिकी वर्षा करना आरंभ की तब वहांपर वही सर्पके जीव धरणेन्द्रने आकर सर्प वेष धारणकर भगवानके ऊपर अपना फण फैलाकर उपसर्ग निवारण किया था—अपने उपकारीका इस प्रकार कष्ट हटाया था । तो समन्त-भद्रस्वामीने इस ही घटनाका उल्लेख उपर्युक्त श्लोकमें किया है और अगाडी चलकर कहा है कि इस उपसर्गका फल यह हुआ कि भगवान पार्श्वनाथको केवलज्ञान उत्पन्न हुआ और वे अर्हन्त पदको प्राप्त हुए थे । जिसके प्रभावसे अन्य मिथ्या मार्गोमें प्रवर्तित तापस आदि भी भगवानकी शरणमें आए थे । इस मुख्य घटनाके उपलक्षमें ही जितनी भी दिगम्बर मूर्तियां श्री पार्श्वनाथ भगवानकी मिलती हैं वे सब इसी उपसर्गावस्थाको व्यक्त करती हैं और उनपर सर्पका फण होता है । इस कारण इस घटनाकी प्रबलता हृदयपर अङ्कित होजाती है । और ऐसा विशेष कारण उपलब्ध नहीं होता जिससे जैनशास्त्रोंके वर्णन पर विश्वास न किया जाय ।

वैसे भी डॉ० जैकोबी यह मानते हैं कि जैनियोंके पवित्र ग्रन्थ अवश्य ही (Classical) संस्कृत साहित्यसे प्राचीन हैं । और उनको एक विश्वसनीय इतिहासका स्रोत न माननेका केवल यही एक कारण प्रो० जैकोबीके अनुसार था कि जैनधर्म और बौद्धधर्ममें

वस्तुतः अथवा अन्यथा एक सादृश्य पाया जाता है। परन्तु जब स्वयं जैकोवीने तथा अन्य प्राची विद्या महार्णवोंने जैनधर्मकी प्राचीनता बौद्धधर्मसे अगाडीकी स्वीकार कर ली है; तब ऐसा कौनसा कारण रह जाता है कि जैनशास्त्रों पर बिल्कुल ही विश्वास न किया जावे। और इसीलिए अन्तमें प्रो० जैकोवी जैनशास्त्रको विश्वास योग्य बतला गए हैं। और भगवान पार्श्वनाथकी ऐतिहासिकता स्वीकार कर गए हैं।

तिसपर जैनशास्त्रोंका वर्णन बहुतायतसे ऐतिहासिक सिद्ध होता जारहा है। इन्हीं पार्श्वनाथस्वामीको कुछ काल पहिले ऐतासिक व्यक्ति स्वीकार नहीं किया जाता था पर वही अब ऐतिहासिक व्यक्ति माने जाने लगे हैं। जैसा कि डॉ० लड्डू अपने व्याख्यानमें कहते हैं कि "यह तो अवश्य यथार्थ है कि जैनधर्म बौद्धसे प्राचीन हैं और इसके संस्थापक चाहे पार्श्वनाथ हों—अथवा उनके पहिलेके कोई तीर्थंकर जो महावीर स्वामीसे पहिले विद्यमान रहे हों।" (देखो Practical Path p. 175) और योरूपीय विद्वानोंमें इन्साक्लोपेडिया आफ रिलीजन एण्ड ईथिकस भाग सप्तम पृ० ४६५ पर भी जैनधर्मकी प्राचीनता सिद्ध करते हुए कहा है कि २३ वें तीर्थंकर पार्श्व बहुतायतसे जैनधर्मके संस्थापक कहे जासक्ते हैं और " Harmosworth History of the World " Vol. II. p. 1198 में भी कहा है कि "जैन नातपुत (श्री महावीर वर्द्धमान) से भी पहिले कितने तीर्थंकरोंका होना मानते हैं, जिनमें सबसे अँतिम पार्श्व अथवा पार्श्वनाथकी विशेष विनय करते हैं। सो उनका ऐसा मानना ठीक ही है क्योंकि

अंतिम व्यक्ति (पार्श्वनाथ) पौराणिक न होकर कुछ अधिक हैं।"
अर्थात् ऐतिहासिक हैं। अस्तु

उधर जैन शास्त्रोंमें वर्णित मौर्य्य सम्राट्को भी अब आधुनिक इतिहासवेत्ता जैन स्वीकार करने लगे हैं। इसीसे तो श्रीमहामहोपाध्याय स्व० डॉ० सतीशचन्द्र विद्याभूषण, एम० ए० पी० एच० डी० इत्यादिने अपने २७ दिसम्बर सन् १९१३ को काशीजीके व्याख्यानमें कहा था कि ऐतिहासिक संसारमें तो जैन साहित्य शायद जगतके लिए सबसे अधिक कामकी वस्तु है।

अस्तु, तात्पर्यरूपमें कहा जासक्ता है कि जैन शास्त्रोंके वर्णनका आधारभूत वहुतायतसे सत्यपर निर्भर है। और उनपर विश्वास किया जासक्ता है।

इसलिए ऐतिहासिक व्यक्ति श्री पार्श्वनाथ भगवानके उपर्युक्त वर्णनपर विचार करनेसे विदित होता है कि जनसमुदायका जैनियोंको पारसनाथका ही भक्त मानना यथार्थ है। और उनकी मान्यता भी स्वयं जैनियोंमें विशेष रूपसे है। पार्श्वनाथ भगवान १०० वर्ष तक जीवित रहे थे और मोक्षमार्गका उपदेश लोगोंको देकर ईसासे ७७६ वर्ष पूर्व निर्वाणको सम्मेदशिखर (Parasnath Hill)से प्राप्त हुए थे। आपके ही नामके कारण वर्तमानमें सम्मेदशिखर पारसनाथ हिलके नामसे विख्यात है। आपके १० गणधर थे।

इस प्रकार पार्श्वनाथ भगवान जैनधर्मको फिरसे उत्तेजित करनेवाले ऐतिहासिक व्यक्ति ईसाके पूर्वकी ९ वीं शताब्दिके थें। अब अवशेषमें चलिए अन्य २० तीर्थंकरोंके जीवनका दिग्दर्शन करके महावीर भगवानके जीवनका परिचय प्राप्त करें।

(८)

अवशेष तीर्थंकर।

" ॐ त्रैलोक्यप्रतिष्ठितान् चतुर्विंशति तीर्थंकरान् ऋषभाद्या वर्धमानान्तान् सिद्धान् शरणं प्रपद्ये। "

–दि० जैन खास अंक २४४३ पृ० ४८

उपर्युक्त पत्रमें कहा गया है कि उक्त श्लोक ऋग्वेदका है। यदि वास्तवमें यह ऐसे ही है तो २४ तीर्थंकरोंके अस्तित्वको स्वीकार करनेमें यह प्रबल प्रमाण है। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद अष्टक २ अ० ७ वर्ग १७ में भगवान अर्हनको स्मर्ण किया है, जिससे प्रकट है कि श्री महावीर व पार्श्वनाथ स्वामीके पहिले अन्य तीर्थंकर अवश्य थे। स्वयं श्री मुनसुवृतनाथ भगवानके समकालीन श्री रामचंद्रने "श्री जिन जैसी शांतिकी वाञ्क्षा की थी।" (देखो वृहद्योगवशिष्टस् सर्ग १५ वर्ग ८) उधर आधुनिक विद्वानोंने जैनियोंके २४ तीर्थंकरोंके अस्तित्वको स्वीकार किया है। जैसे कि मेजर–जनरल जे० जी० आर० फरलामा, एफ० आर० एस० ई, इत्यादि जो अपने १७ वर्षके अध्ययनके पश्चात् प्रकट करते हैं (See short studies in the science of comparative Religions. pp. 243-4):-

" आर्य्य लोग गंगा वल्कि सरस्वती तक पहुंचे भी न थे कि उसके वहुत पहिले जैनी अपने मुख्य २२ बौद्धों वा सन्तों अथवा तीर्थंकरों द्वारा सिखाए पढाए जाए चुके थे। ईसाके पूर्वकी ८–९ वीं शताब्दिके २३ वें बौद्ध पार्श्वके पहिले ही; जो अपने पूर्वगामी कालान्तरसे अवस्थित पवित्र ऋषियोंको जानते थे। "

और अन्यत्र जैसे पहिले कह चुके हैं कि हार्मस्वर्थ हिस्टरी ऑफ दी वर्ल्डके भाग २ पृत्र ११९८ में कहा गया है कि जैन नात-पुत (श्री महावीर वर्द्धमान) से पहिले कितनें ही तीर्थङ्करोंका होना मानते हैं । अस्तु, इन वास्तविक २४ तीर्थङ्करोंनेंसे तीनका वर्णन पहिले वर्णित किया जाचुका हैं । और अन्तिम तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवानका इस पुस्तकमें अगाड़ी पूर्णरूपेण आयगा । अवशेषमें २० तीर्थङ्करोंका वर्णन इस प्रकार हैं जो क्रमवार दिया जाता है:—

(१) **श्री अजितनाथजी**—दूसरे तीर्थङ्कर थे । आपका जन्म इक्ष्वाक वंशमें श्री ऋषभदेवके कुलमें अयोध्या नगरीमें प्रथम तीर्थङ्करके निर्वाण प्राप्तिके एक दीर्घकाल पश्चात् हुआ था । पहिले राजा धरणीधर अयोध्याके नृपति थे । उनके पुत्र त्रिदसंजयदेव हुए । इनकी रानीका नाम इन्दुरेखा था । इन्दुरेखाके गर्भसे राजा जितशत्रुका जन्म हुआ था । राजा जितशत्रुका विवाह पोदनपुरके राजा व्यानंदकी पुत्री विजयासे हुआ था । इन्हीं राजदम्पति जित-शत्रु और विजयाके अजितनाथजीका जन्म हुआ था । गर्भमें आते ही माताको षोड़स शुभ स्वप्न हुए थे जैसे कि हर तीर्थङ्करकी माताको होते हैं । और गर्भ-जन्म-तप-ज्ञान-मोक्ष कल्याणकों (शुभा वसरों) पर देवोंने आकर उत्सव मनाए थे जैसे कि वे प्रत्येक तीर्थङ्करके उक्त अवसरों पर करते हैं । जिस समय अजितप्रभूने जन्म लिया था उस समय राजा जितशत्रु समस्त राजाओंको परास्त करनेमें समर्थ हुए थे । इस उपलक्षमें इन्होंने अपने पुत्रका नाम अजित रक्खा था । युवावस्थामें इन्होंने भी दो राजकन्याओंसे पाणि

ग्रहण किया था। पिताके मुनि होजानेपर एक काल पर्यन्त विशाल राज्य किया था। अकस्मात् वनक्रीड़ा करते एक फूलको खिलते और नष्ट होते देख आपको वैराग्य होगया था। तत्क्षण आपने दिगम्बरीय दीक्षा ग्रहण कर ली थी। तपश्चरणके पश्चात् प्रथम आहार आपने राजा ब्रह्मदत्तके यहां लिया था। तपश्चरणके १२ वर्ष उपरान्त आपको केवलज्ञान प्राप्त होगया था। आपने तब विहारकर धर्मका उद्योतन किया था। आपके संघमें ९० गणधर और एक लाख मुनि थे व तीन लाख आर्यिकाऐं थीं। उस समय अजितप्रभूके काका विजयसागरके पुत्र सगर चक्रवर्ति भारतवर्षाधिपति थे। इनके पुत्र भागीरथ इनके उत्तराधिकारी हुए थे। सगरके मोक्षलाभ करनेपर इन्होंने भी सन्यास ग्रहण किया था। भागीरथने कैलाश पर्वतपर गंगाकिनारे तप धारण किया था जहांसे उनको केवलज्ञान होकर मोक्षलाभ हुआ। इस अवसर पर देवोंने इनका अभिषेक किया सो वह पानी गंगाजीकी धारमें मिला; जिसके कारण आजतक गंगाजल पवित्र माना जाता है। अजितप्रभू सम्मेदशिखरसे मोक्षको प्राप्त हुए थे। चिन्ह हाथीका है इनका उल्लेख यर्जुवदमें है।

(२) श्रीसंभवनाथ—तृतीय तीर्थंकर थे। ये अजित प्रभूके मोक्ष प्राप्त करनेके एक अति दीर्घकाल पश्चात् हुए। अयोध्याके इक्ष्वाकु वंशीय, काश्यप गोत्री राजा दृढ़रथराय वा जितारि रानी सुषेणाके सुपुत्र थे। आपका विवाह हुआ था। राज्य भोगकर दीक्षा ग्रहण कर मुक्त हुए थे। चारुषेणादि १०५ गणधर थे। सम्मेदशिखरपर आपके स्मृति चरणचिन्ह मौजूद हैं। चिन्ह घोड़ेका था।

(३) श्री अभिनंदननाथ—चौथे तीर्थङ्कर अयोध्याके इक्ष्वाकु वंशीय नृपति संवर रानी सिद्धार्थाके पुत्र थे। राज्य लक्ष्मी और गृहलक्ष्मीका उपभोगकर आप दीक्षित हो सर्व तीर्थंकरोंकी भांति उपदेश दे सम्मेदशिखरसे मुक्त हुए थे। वज्रनाभि आपके मुख्य गणधर थे। आपका चिन्ह बन्दरका है।

(४) श्री सुमतिनाथजी—पांचवे तीर्थंकरके पिताका नाम राजा मेघरथ और माताका सुमंगल देवी था। जन्म स्थान अयोध्या था। वंश व गोत्र पूर्व तीर्थंकरकी भांति था। विवाह और राज-भोग किया था। दीक्षा लेकर पद्मभूपके सौमनसपुरमें प्रथम आहार लिया था। चामर आदि ११६ गणधर थे। शिखरजीसे मुक्त हुए। आपका चिन्ह क्रौंचका था।

(५) श्री पद्मप्रभु—छट्टे तीर्थङ्कर कौशांबीपुरके नरेश मुकुटवर रानी सुसीमाके पुत्र थे। वंश व गोत्र इनके पहिले तीर्थङ्करके थे। राजा सोमदत्तके आहार लिया। वज्रचामर मुख्य गणधर था। समस्त आर्यखंडमें विहारकर अन्य तीर्थङ्करोंकी भांति शिखरजीसे निर्वाणको गए थे। चिन्ह कमलका था।

(६) श्री सुपार्श्व—सातवें तीर्थङ्कर काशीमें हुए थे। वहांके अधिपति आपके पिता सुप्रतिष्ट नामक थे और माता सुसीना थीं। सोमखेटके राजा महेन्द्रदत्तके आहार लिया। बल आदि ७२ गण-धर थे। सम्मेदशिखर मोक्षस्थान है। चिन्ह स्वस्तिका है। यजु-र्वेद २५-१९ में आपका उल्लेख है।

(७) चन्द्रप्रभ स्वामी—अष्टम तीर्थङ्कर चन्द्रपुरीके महाराज महासेन, रानी लक्ष्मणाके सुपुत्र थे। बनारसके निकट चन्द्रपुरी

नामक छोटीसी वस्ती है। दर्पणमें मुंह देखते वैराग्य उत्पन्न होनेसे अपने पुत्र वरचंद्रको राज्य दे तपश्चरणको गए थे। दतमुनि आदि ९३ गणधर थे। और बहुतसे मुनि आर्यिकाएँ आदि सब तीर्थङ्करोंकी भांत इनके संघमें भी थे। चिन्ह अर्धचंद्राकार था। चंद्रप्रभकाव्यमें उत्कृष्ट भाषाशैलीसे आपका चरित्र वर्णित है।

(८) भगवान पुष्पदंत—नौवें तीर्थंकर कौकंदीपुरमें हुए थे। आपके पिता महाराज सुग्रीव थे। और माता जयरामा थी। पुत्र सुमतिको राज्यभार सौंप मुनि होकर केवली हुए और शिखरजीसे मोक्षको गए। सपलपुरमें पुष्पमित्रके यहां आहार हुआ था। मकरका चिन्ह है।

(९) भगवान शीतलनाथ—दसवें तीर्थङ्कर हुए थे। हजारीबाग जिलेमें भद्दलपुर कुल्हापहाड़के पास आपका जन्म स्थान है। और राजा दृढ़रथ वहांके राजा इनके पिता थे। रानी सुनंदा थीं। आपका विवाह हुवा था। अरिष्टनगरके राजा पुनर्वसुके यहां आहार लिया था। चिन्ह श्री वत्सवृक्ष है।

(१०) ग्यारहवें तीर्थंकर श्रेयांसनाथ वर्तमानमें बनारसके निकट अवस्थित सिंहपुरके महाराज विष्णु और रानी नंदाके यहां उत्पन्न हुए थे। गोत्र इनका इक्ष्वाक काश्यप था। पुत्र श्रेयंकरको राज्य दिया था। कुंथु आदि ७७ गणधर थे। चिन्ह गेंड़ाका है। प्रथम नारायण तृपृष्ट और बलदेव विजय अब ही हुए थे।

(११) बारहवें तीर्थंकर वसुपूज्य थे। चंपापुरीके ईक्ष्वाक-वंशीय काश्यप गोत्री राजा वसुपुज्य पिता और रानी जयावति

माता थीं । आप बालब्रह्मचारी थे । दूसरे प्रतिनारायण भोगवर्द्धन-पुरके राजा श्रीधरके पुत्र तारक आपके समयमें हुआ था । यद्यपि प्रतापी पर अन्यायी राजा था । दूसरे नारायण द्विपृष्ट और बलदेव अचल भी अभी हुए थे । भगवानका चिन्ह भैंसा है ।

(१२) विमलनाथ स्वामी तेरहवें तीर्थंकर कम्पिला नगरीमें हुए थे । आपके पिता सुकृतवर्मा उस समय यहां राज्य करते थे । रानी संयमा थीं । कम्पिलमें ही राजा द्रोपद हुए थे । यह ग्राम कायमगंज रेल्वे स्टेशन (R. M. R.)से ५ मील दूर है । भगवानके गर्भ, जन्म, तप और ज्ञान कल्याणक यहीं हुए थे । परन्तु मोक्षलाभ सम्मेदशिखरसे हुआ था । चिन्ह सुअरका है ।

(१३) अनन्तनाथ भगवान १४ वें तीर्थंकर थे । अजुध्या नगरीके राजा सिंघसेन रानी सर्वयशाके यहां इन्होंने जन्म लिया था । वंश इक्ष्वाक और गोत्र काश्यप था । सम्मेदशिखरसे मोक्षलाभ किया था । चिन्ह रींछका है ।

(१४) धर्मनाथजी १५ वें तीर्थंकर रत्नपुरीके राजा भानु-रानी सुव्रताके महान् पुत्र थे । आपके मोक्ष प्राप्त करनेके बाद तीसरे चक्रवर्ती श्रावस्तीके राजा सुमित्र हुए थे । आपके पट्टरानी भद्रवती थी । भगवानने धर्मका उद्योतकर सम्मेदशिखरसे मोक्षलाभ किया था । चिन्ह वज्रदण्ड है ।

(१५) श्री शांतिनाथजी १६ वें तीर्थंकर हुए थे । हस्तिनापुरके राजा विश्वसेन आपके पिता और उनकी पत्नी रानी ऐरा आपकी माता थीं । आप पंचम चक्रवर्त्ति थे । सार्वभौमिक राज्य करके आपने धर्मका भी साम्राज्य फैलाया था । और अन्तमें मोक्ष-

पद पाया था। चिन्ह हिरनका है। चौथे सनत्कुमार चक्रवर्ति आपके पहिले हो चुके थे।

(१६) सत्रहवें तीर्थंकर कुन्थुनाथका जन्म स्थान भी हस्तिनागपुर था। पिताका नाम सूर्य्या और माताका श्रीदेवी था। आप क्रमसे छटे चक्रवर्ति भी थे। महान प्रतापी धर्मरत्न थे। चिन्ह बकरेका है।

(१७) अरहनाथजी अठारवें तीर्थंकर भी चक्रवर्ति थे। आपके पिता हस्तिनागपुरके राजा सुदर्शन थे। और माताका नाम मित्रा था। सम्मेदशिखरसे मोक्ष गए थे। चिन्ह मछलीका है।

(१८) १९ वें तीर्थंकर मल्लिनाथजी थे। आपके पिता मिथुलापुरी (मथुरा) के राजा कुम्भ थे। और माता रानी रक्षता थीं। सम्मेदशिखरसे मोक्ष गए थे। चिन्ह नन्द्यावर्त कलशका है। इनके मध्य समयमें ८ वें चक्रवर्ति सुभूमि हुए। आपके पिता कीर्तिवीर्य और माता तारा थीं। इनने परशुराम क्षत्री शत्रुको मारा था।

(१९) वीसवें तीर्थंकर मुनि सुव्रतनाथजी थे। कुसाग्र व राजगृह नगरके अधिपति सुमित्र राजाके पुत्र थे। माताका नाम पद्मावती था। आपके पहिले ९वें चक्रवर्ति राजा महापद्म हो चुके थे। यह हस्तिनापुरके राजा पद्मरथ रानी मयूरीके पुत्र थे। इनकी आठों पुत्री आर्यिका होगई थीं। श्री मुनिसुव्रतनाथजी शिखरजीसे मुक्त हुए थे। चिन्ह कछवेका है।

(२०) २१ वें तीर्थंकर नमिनाथ भगवान थे। आपका जन्म मिथुलापुरीके राजा विजय और रानी विप्राके गृहमें हुआ था। १० वें चक्रवर्ति राजा हरिषेण कंपिलामें आपके पहिले हो चुके

थे। यह हरिकेतुके पुत्र थे। हरिकेतुने बहुतसे जैन चैत्यालय बनवाए थे। और मुनि हो मुक्तको गए थे। नमिप्रभू शिखरजीसे मोक्ष गए। उनका चिन्ह नीलपद्मका था।

इनके पश्चात् ११ वें चक्रवर्ति राजा जयसेन हुए थे। यह राजा वैजय रानी यशोवतीके पुत्र थे। यह मुनि होगए थे। अंतिम १२ वें चक्रवर्ति राजा पद्मगुल्म भगवान नेमनाथ और पार्श्वनाथके मध्यमें हुए थे। इस प्रकार २३ वें तीर्थंकर पार्श्वप्रभूसे पहिले सार्वभौमिक अखंड राज्यके कर्त्ता १२ चक्रवर्ति होचुके थे। प्रथम तीर्थंकर आदिनाथके वृषभ (बैल) का चिन्ह था। और नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर स्वामीके क्रमसे शंख, सर्प और सिंहके चिह्न थे। इन चिह्नोंसे साधारणतया तीर्थंकरोंकी प्रतिमाओंको जाननेका भाव है। परन्तु प्राचीन भारतमें संकेत विद्याका होना प्रमाणित है जो Pictographic वा Hieratic कहलाती थी और मिश्र चीन आदि देशोंमें भी प्रचिलित थी। (देखो हिन्दी विश्वकोष भाग प्रथम पृष्ठ ६०-६९) और संभवता एक गुप्त भाषा वा लिपि भी प्रचिलित थी जिसको मि० चम्पतराय जैन, बेरिष्टरने अपनी 'असहमत-संगम' नामक पुस्तकमें 'पिक्टोव्हत' व्यक्त किया है। और सर्वमतोंके प्राचीन ग्रन्थोंको जैसे वेद, बाईबिल आदिको उसी भाषामें लिखे प्रमाणित किया है। अस्तु प्रथम तीर्थंकर ऋषभनाथके बैल चिन्हसे भाव निकल सक्ता है कि उन्होंने सर्व प्रथम धर्मका रूप समझाया था। और बैलका संकेतात्मकरूप मि० ऐय्यरने अपनी पुस्तक "दी परमेनेन्ट हिस्टरी ऑफ भारतवर्ष" पृष्ठ २१२ पर प्रगट किया है कि बैलसे भाव धर्मको प्रकट करनेका है। ऐसे

ही स्वस्तिकाका भाव प्रकट है कि दो रेखाओंका आपसमें धन राशिके चिन्हरूपमें एक दूसरेके विमुख निकलना प्रकट करता है कि शुद्ध आत्मद्रव्य पुद्गल द्रव्यसे मिली हुई है; जिसके कारण वह चार गतियोंमें (देव, नर्क, मनुष्य, पशु) भ्रमण कर रही है। चार गतियोंको व्यक्त करनेके लिए इस धनराशि चिन्ह (+) के अंतिम शिखाओंसे चार रेखाऐं निकालीं जातीं हैं (卐) इसके बाद ऊपर जो तीन विन्दुकाएं जैन स्वस्तिकामें (卐) रक्खी जाती हैं, उनसे यह उपदेश है कि इस भ्रमणसे निकलनेके लिए त्रयरत्नमय मार्ग अर्थात् सम्यक्‌दर्शन, ज्ञान और चारित्र मोक्षका मार्ग है। और फिर स्वस्तिकाके शिखाभागमें अर्धचंद्राकारके मध्य विन्दुका होना प्रकट करता है कि रत्नत्रय मार्गसे संसारी (भ्रमता) जीव मोक्षस्थानमें पहुँचकर शुद्धस्वरूप आत्मद्रव्य (विंदु) हो जाता है और परम सुख अनुभव करता है। जैन शास्त्रोंमें मोक्ष स्थान अर्धचन्द्राकार माना है। इस प्रकार जैन स्वस्तिकाका भाव है। अस्तु, २३ तीर्थंकरोंके जीवनका ज्ञान प्राप्त करके चलिए इन तीर्थङ्करोंके धर्मके सम्बन्धमें कुछ ज्ञान और प्राप्त करलें।

(९)

जैनधर्म और हिन्दूधर्म ।

"Yes ! his (Jain's) religion is only tru —
upon earth, the primitive faith of all mankind."

—Rev. J. A. Dubois.

"Discription of the character, manner and custom of the people of India and their institutions, religious and civil" नामक पुस्तकके लेखक, मैसोर प्रान्तमें रहे हुए पादरी डुबोई साहब निष्पक्ष सत्य ही कहते हैं कि "हाँ ! अवश्य ही जैनियोंका धर्म ही दुनियांमें सत्य है और वही मनुष्य समाजका प्रारंभिक मत है।"

डुबोई साहबने जो इस प्रकार जैनधर्मका महत्व प्रकट किया, उसको यथार्थ प्रगट करनेके लिए आइए प्राचीनतम मानेजानेवाले धर्म हिन्दूधर्मसे इसकी तुलना करें।

पहिले तो स्वयं एक तरहसे हिन्दू धर्मके ग्रन्थ जैन धर्मके संस्थापक श्री ऋषभदेवको नवमा (या आठवां) अवतार मानकर उसकी प्राचीनता वेदोंसे भी पहिलेकी सिद्ध कर देते हैं, क्योंकि वेदोंमें १४ वें वामन अवतारका भी उल्लेख है। इसलिए वामन अवतारके बाद वेद बने साबित होते हैं। और जैनधर्म नवमें अवतार मानेजानेवाले श्री ऋषभदेव द्वारा प्रतिपादित हुआ था। तिसपर भागवतमें साफ लिखा है कि "वह (ऋषभदेव) लोक, वेद, ब्राह्मण और गौ सबके परमगुरु थे और

उन्होंने सकल धर्म्मके मूल गुह्य ब्राह्मणधर्म्मका ब्राह्मणदर्शित मार्गके अनुसार उपदेश दिया था।" (९-६-अ०) यह ब्राह्मणधर्म्म वेदोंमें वर्णित है। अस्तु, अब हमें देखना चाहिए कि इन वेदोंमें है क्या? और यह कब बने? इनमें निरूपित धर्मका स्वरूप क्या है? इन प्रश्नोंका सप्रमाण पूर्ण विवरण तो मि० चम्पतरायजी बैरिस्टरकी Key of Knowledge Practical Path और असहमतसंगम नामक पुस्तकोंमें है, पर साधारणतया इनका उत्तर इस प्रकार होगा।

सम्प्रतिमें वेद दुनियामें सबसे प्राचीन ग्रन्थ कहे जाते हैं। प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेव उनसे बहुत पहिले होचुके थे, यह हम ऊपर सिद्ध कर चुके हैं। यही ऋषभदेव जैनधर्मके संस्थापक थे। इस प्रकार जैनधर्मके बहुत पीछे वेद बने थे। आधुनिक योरूपीयन विद्वान उनके विषयमें कहते हैं कि वे उस समय बने थे, जब कि आर्य्यसभ्यताके नवपल्लव भी विकसित नहीं हुए थे। और लोग प्राकृतिक शक्तियों—अग्नि, सूर्य्य, चन्द्र आदिसे अत्यन्त भयभीत थे। और उनकी पूजा किया करते थे। इसके अगाड़ी वे मानते हैं कि इन्हीं शक्तियोंकी पूजा वन्दनाके मंत्रोंके समुदायरूप यह वेद हैं। पर उस समयके आर्य्योंकी सभ्यताका जब हम ध्यान करते हैं जैसी कि मि० विलसन आदि यूरोपीय विद्वानोंने सिद्ध की है कि वे आधुनिक हिंदू समाजके तरह ही करीब२ सभ्य थे, (देखो Practical Path p. 188) तब हम इस बातपर कभी भी विश्वास नहीं कर सक्ते कि उस समयके हिंदू ऋषि इतने असभ्य और अज्ञानी थे जो प्राकृतिक शक्तियोंसे डर

जाते और उनकी उपासना करते ! तो फिर इन वेदमंत्रोंका भाव क्या है जो अग्नि आदिको समर्पित हैं ? यह प्रश्न अगाड़ी आता है। परन्तु इसका उत्तर जैसा कि मि० चम्पतरायने अपने उक्त ग्रन्थोंमें दिया है, उससे इन मंत्रोंका भाव साफ प्रकट होजाता है। वास्तवमें यह शक्तियां प्राकृतिक नहीं हैं बल्कि आत्मशक्तियोंके रूपान्तर हैं। वैदिक ऋषियोंने काव्यकी अलंकृत भाषामें आत्मशक्तियोंके रूपक बांधकर उनका गुणगान किया है जिससे कि उनकी आत्मामें जागृति पैदा हो जाय। और इस प्रकार उसका महत्व सदैव हृदयपट पर अंकित बना रहे। अब जिस आत्माकी शक्तियोंको वे इन्द्र, सूर्य्य आदिके रूपकमें पूजते थे तब यह आवश्यक है कि वे उसके तत्वसे भिज्ञ रहे हों। वेदमें इन्द्र, सूर्य और अग्नि यह तीन मुख्य देवता माने गए हैं। इंद्र आत्माको पुद्गलसे मिलकर सांसारिक भोगोंमें लिप्त रहनेकी अवस्थाका द्योतक है। तब सूर्य आत्माको शुद्धात्मस्वरूप केवलज्ञानावस्थामें प्रकट करता है। और अग्नि वह तपकी अग्नि है जिसके द्वारा कर्मबन्धनोंकी निर्जरा होकर नवीन कर्म्मोंका बन्ध होना रुक जाता है जिससे आत्मा कर्मोंसे—संसार परिभ्रमणसे छुटकारा पा लेता है। जिन ऋषियोंने आत्माके भिन्न स्वरूपोंको इस तरह पहिचाना उन्हें जरूर आत्मा सम्बन्धी गूढ़ ज्ञान था। और जहांसे उन्हें यह गूढ़ज्ञान प्राप्त हुआ। उन लोगोंका आत्मज्ञान गूढ़ ही नहीं बल्कि वैज्ञानिक रहा होगा। अब देखना चाहिए कि यह वैज्ञानिक ज्ञान उस समय किस धर्ममें पाया जासक्ता था। वेदोंमें तो था ही नहीं क्योंकि उनमें तो सिवा गीतोंके और कुछ महत्वपूर्ण वस्तु देखनेमें नहीं आती तब यही मानना पड़ेगा कि यह

ज्ञान जैनधर्मसे उन्हें प्राप्त हुआ होगा जो भारतीय धर्म्मोंमें, आधुनिक खोजद्वारा, प्राचीनतामें दूसरे नम्बरका माना गया है और जिसमें धर्म सिद्धांत सम्बंधी शब्दोंको शब्दार्थमें व्यवहृत किया है जैसे इन्साइक्लोपेडिया ऑफ रिलीजन एण्ड इथिक्स भाग ७ पृष्ट ४७२में प्रमाणित किया गया है:—

" जैनी लोग इन शब्दों (आश्रव-बन्ध-संवर-निर्जरा आदि) को उनके शब्दार्थमें काममें लाते हैं और मुक्तिके मार्गको समझानेमें व्यवहृत करते हैं (आश्रवोंका संवर और निर्जरा मोक्षके कारण हैं) अब यह शब्द इतने ही पुराने हैं जितना जैनधर्म; क्योंकि बौद्ध लोगोंने जैनधर्मसे आस्रवका अति भावपूर्ण टर्म (Term=शब्द) ले लिया है। और वह उसको करीब करीब उसी भावमें व्यवहृत करते हैं जिसमें जैनी लोग; किन्तु उसके शब्दार्थमें नहीं, क्योंकि वह कर्मको सूक्ष्म पुद्गल नहीं मानते हैं और आत्माकी सत्ताको भी नहीं मानते हैं जिसमें कि कर्मोंका आश्रव होसके। संवरके बजाय वह 'असवक्खय' जिसके माने आश्रवका क्षय होता है, व्यवहारमें लाते हैं और उसको मार्ग निर्दिष्ट करते हैं। यह प्रकट है कि बौद्धोंके यहां आश्रवका शब्दार्थ जाता रहा है। और इस कारण यह आवश्यक है कि उन्होंने इसको किसी ऐसे सम्प्रदायसे लिया हो कि जो इसको इसके यथार्थ भावमें व्यवहृत करता हो; अर्थात् दूसरे शब्दोंमें जैनियोंसे। बुद्ध लोग शब्द 'संवर' को भी व्यवहृत करते हैं जैसे शीलसंवर और क्रियारूपमें 'सम्वत', जो ऐसे शब्द हैं जिनको ब्राह्मण धर्मके संस्थापकोंने इस भावमें नहीं व्यवहृत किए हैं। इससे प्रकट है कि वह जैनधर्मसे लिए गए हैं; जहां वह अपने

शब्दार्थमें अपने व्यवहृत भावको ठीक ठीक प्रकट करते हैं।"

इसलिए प्रमाणित होता है कि जैनधर्मका कर्म्मसिद्धान्त जैनदर्शनका आदि और यथार्थ अंश है। और वह बौद्ध एवं हिन्दू दर्शनोंसे प्राचीन है। और हिन्दूधर्मके अन्दर किसी समयमें सर्वांग पूर्ण आत्मिक ज्ञानका प्रतिपादन नहीं किया गया। उसमें जो समयानुसार सामयिक बातें जोड़ी गई व जोड़ी जातीं हैं और जो स्वयं पूर्वापर विरोधित हैं उससे वह ईश्वरीय धर्म कहा नहीं जा सक्ता। ईश्वरके मुखसे निकला हुआ धर्म कभी अपूर्ण नहीं हो सक्ता। और न ऐसा ही हो सक्ता है कि उसके अनेक अर्थ लग सकें। इसलिए वेदोंको ईश्वरकृत मानना बिलकुल मिथ्या है। वे ऋषि महर्षियोंके आत्मज्ञानके फल हैं। और वह आत्मज्ञान उनको जैनधर्मसे प्राप्त हुआ था, जैसा ऊपर प्रगट किया गया है। उस समय भी लोग असभ्य नहीं थे।

जैनधर्मके सिद्धान्त वैज्ञानिक हैं। दूसरे शब्दोंमें साक्षात् 'सत्य' (TRUTH) हैं। और सत्य अमर है। इस हेतुसे जैनधर्म अनादिनिधन और सर्वज्ञ कथित है और उसके ज्ञानके आधार पर वेद बने हैं। इसलिए इस दृष्टिसे वेदोंको ईस्वरकृत मानना किन्हीं अंशोंमें उपयुक्त है। वेदोंमें यज्ञादिमें पशुओंके बलिदान सम्बन्धी विधान पीछेसे किसी दुर्समयमें बढ़ा दिए गए होंगे, क्योंकि स्वयं वेदोंमें हिंसाको बुरा कहा है। जो राक्षसों और मांसभक्षकोंको श्राप सम्बन्धी वाक्योंसे प्रकट है।

अस्तु, प्रकट है कि हिन्दूधर्मके प्रारम्भिक सिद्धान्त जैनधर्मसे लिए गए थे। कालान्तरमें वैदिकधर्मावलम्बी उसके श्रोतको

द्वेषपूर्ण दृष्टिसे देखने लगे। और अपने धर्मको पूर्ण बनानेके लिए उपनिषिध, षट्दर्शन आदि रचते हुए। इसीलिए मि० चम्पतरायजी वैरिष्टर अपनी "की आफ नोलेज" नामक पुस्तकमें सब धर्मोंका अध्ययन करके कहते हैं:—

"खोज करने पर हरएक धर्मके द्वारसे निराशा होती है। और जब हम जैनधर्मकी तरफ देखते हैं कि क्या इससे धर्मके सिद्धान्तमें संतोष मिलता है, जिसके विचारने हरएकको घबड़ा दिया है, तब यह जैनधर्म तुरत हमको छः मूलद्रव्योंकी तरफ ले जाता है, जिनकी मददके विना सिवाय गड़बड़ाहटके और कुछ नहीं होसक्ता।........जब हम सत्यकी खोज करते हुए धर्मकी तरफ पहुँचते हैं; और मान व मायाके विचारसे नहीं तब यह देखते हैं कि जैनधर्म उन सर्वमतोंमें अनुपम है जो सत्य बतानेका दावा करते हैं।"

इस प्रकार डुबोईसाहबके उपर्युक्त उद्गार बिल्कुल ठीक बैठते हैं। और जैनधर्म और हिन्दूधर्मकी यथार्थता प्रकट होजाती है।

(१०)

जैनधर्मका महत्व और उसकी स्वाधीनता ।

"There is very great ethical value in Jainism for men's improvement. Jainism is a very original, independent and systamatical doctrine. It is more simple, more rich and varied than Brahmanical Systems and not negative like Budhism." —*Dr. A. Guirneot*

भगवान महावीरने जिस धर्मका पुनः उपदेश दिया था उसका हिन्दूधर्मसे सम्बन्ध हम पहिले देख चुके हैं। अब उनके जीवन कालका वर्णन करनेके पहिले उनके धर्मके महत्व और स्वाधीनताका दिग्दर्शन कर लें। डॉ० ए० गिरनाट साहब फ्रान्सके बड़े विद्वान् हैं। आप इस विषयमें कहते हैं कि:—

"मनुष्योंकी उन्नतिके लिए जैनधर्ममें चारित्र सम्बन्धी मूल्य बहुत बड़ा है। जैनधर्म एक बहुत असली, स्वतंत्र और नियमरूप धर्म है। यह ब्राह्मण मतोंकी अपेक्षा बहुत सादा, बहुत मूल्यवान तथा विचित्र है। और बौद्धके समान नास्तिक नहीं है।" इसके अतिरिक्त स्वयं जैनधर्मका अव्ययन अन्य विविध दर्शनोंसे तुलना करके करनेसे उसकी महत्ता और स्वतंत्रता प्रगट करता है। जैनधर्म स्वयं एक पूर्ण मत है। प्राचीनसे प्राचीन जमानेसे ही यह थोथे कोरे क्रियाकाण्ड (Ritualism) के खिलाफ रहा है। जैनधर्मने सांख्यदर्शन जैसे अन्य भारतीय दर्शनोंके समान ही वैदिक यज्ञ-

काण्डका निषेध किया है। परन्तु उसने बौद्धोंके समान ही चार्वाकोंका घृणित दुराचार नीच दृष्टिसे देखा है। जैनधर्मका कहना है कि हमारे इन सुख व दुःखमय दशाओंके कारणभूत हमारे ही कर्म हैं। उसी तरह वह अहिंसा और त्यागके सिद्धान्तोंको मानव चारित्रके उत्तम अंग बतलाता है। जैनधर्मके अनुसार तपश्चरणका उद्देश्य बौद्धोंके उद्देश्यसे निहायत विपरीत है। एक जैनीके निकट उस तपसे भाव आत्माकी पूर्णता और शुद्धता प्राप्त करनेका होगा। जबकि बौद्धके निकट इसके विपरीत आत्माके अभावमें! जैनी आत्माको नित्य और अकृत्रिम मानते हैं। जीवद्रव्य एक नित्य और अकृत्रिम सत्तात्मक पदार्थ है। भले ही वह जन्म मरण धारण करता है और दुःख व सुख अनुभव करता है पर उसके यथार्थ गुण अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान और अनन्तसुख हैं। इस प्रकार जैनधर्म और वेदान्त दोनों ही बौद्धोंके सैद्धान्तिक क्रियाकाण्डका निषेध करते हैं। और आत्माकी नित्यात्मक सत्ताको स्वीकार करते हैं। परन्तु अब दोनों धर्म एक दूसरेसे विपरीत होजाते हैं। वेदान्ती केवल आत्माकी सत्ता स्वीकार करके ही संतोष धारण नहीं कर लेता, बल्कि अगाड़ी बढ़कर उसे संसारभरकी आत्मा व्यक्त करता है। वेदान्तदर्शनके अनुसार समस्त चेतन अचेतन पदार्थोंसे पूर्ण जगत एक और समान सत्ताका ही विकाश है। "मैं वह हूं। सांसारिक शक्ति जो मुझसे बाहर है और जो मेरा सामना करती है, मेरेसे भिन्न और स्वतंत्र सत्ता नहीं है। केवल एक ही यथार्थ सत्ता है। और आप, मैं व अन्य चेतन पदार्थ एवं समस्त अचेतन पदार्थ इसी एक सत्तात्मक सत्ताके रूप हैं।" यह सिद्धान्त यद्यपि उच्च है किन्तु

जैन विचारकके वैज्ञानिक मस्तिष्कमें इसकी महत्ता नहीं है। उसके निकट तो जीवित पदार्थ जीव, मृत पदार्थ पुद्गलसे नितान्त विभिन्न और विच्छिन्न है। दोनों पदार्थ एक दूसरेमें इतनी विभिन्नता रखते हैं कि चाहे जैसा ही सैद्धांतिक गोरखधन्धेका पेच क्यों न हो वह दोनोंका एकमें समावेश नहीं कर सक्ता। जीव और अजीव दोनों ही दो विभिन्न, अकृत्रिम, नित्य सत्तात्मक पदार्थ हैं। फिर भी जैनधर्मके अनुसार केवल एक ही आत्मा नहीं है बल्कि अनन्त आत्माएं हैं। एक मजिस्ट्रेटकी आत्मा उस कैदीकी आत्मासे बिलकुल दूसरी है, जिसको वह सजा दे रहा है। किन्तु सर्व जीवोंका असली स्वभाव एक समान है। जब योग और सॉंख्य दर्शनोंकी तुलना जैनधर्मसे करते हैं तो दोनों ही जैनधर्मसे इतने सहमत हैं कि आत्माकी सत्ता और अनन्तराशिको स्वीकार करते हैं और एक विभिन्न अचेतन शक्तिके अस्तित्वको मानते हैं। परन्तु सांख्य दर्शनमें कोई ऐसा उद्देश्य नहीं माना गया है जिसके प्रति मनुष्य प्रगतिशील हो। तब जैनी अर्हत् पदको अपना उद्देश्य मानते हैं और पातञ्जलि परमात्मपदको। जैनधर्म वैशेषिक मतके समान ही अणु, काल और आकाशको अकृत्रिम और नित्य मानता है। और जैसे न्याय दर्शनमें विविध नैयायिक सिद्धान्त माने गए हैं वैसे ही जैनधर्ममें भी विविध न्याय सिद्धान्त धार्मिक सिद्धांतोंको व्यक्त करनेको व्यवहृत किए जाते हैं। परन्तु जैन न्यायमें अपने मुख्य विशेषण भी हैं। और उसे अपने स्याद्वाद सिद्धांतपर वस्तुतः गर्व करना चाहिए जिससे कि जैनधर्मकी महत्ता न्यायवादमें भी बढ़ जाती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जैनदर्शनमें बहुतसी

बातें अन्य भारतीय दर्शनोंसे सादृस्यता रखती हैं, परन्तु साथ ही उसमें इन दर्शनोंसे इतनी खूबियां भी हैं जो उसे एक स्वतंत्र और स्वाधीन दर्शन प्रगट करती हैं। (See Jain Gazette Vol: XIX No. 3 P. 71) अस्तु चलिये अब उस समयका भी कुछ ज्ञान प्राप्त कर लें, जब भगवान महावीरजीने जन्म लेकर धर्मको फिरसे अपने पूर्व तीर्थङ्करोंकी भांति बतलाया था।

(११)

तत्कालीन-परिस्थिति।

" अतिशय देख धर्मका हानी।
परम सभीत धरा अकुलानी॥ "

संसारकी परिस्थिति और कालचक्रकी महिमाका अवलोकन हम पहिले कर चुके हैं। देख चुके हैं कि समय हमेशा एकसा नहीं रहता है। परिस्थिति सदैव पल्टा खाती रहती है। नई नई घटनाऐं सदैव घटित होती रहती हैं। आज जो बात ठीक थी, वही कल विपरीत भासने लगती है। भगवान महावीरने धर्मोपदेशमें यह जतला दिया था कि संसारमें ऐसी भी प्रकृतिकी आत्माऐं मौजूद हैं, जिन्हें अपने सच्चे आत्मस्वरूपका ज्ञान कभी भी नहीं होगा। वे सदैव संसारके संतप्तसागरमें गोते लगाती रहेंगीं। कभी ऊपर सतह पर आ जांयगी, तो कभी गहरे गढेमें चली जांयगीं। उनके ज्ञानको आवरण करनेवाली प्राकृतिक शक्तियाँ इतनी जटिल हैं कि वह कभी भी उस विचारी आत्माको सन्मार्ग

पर आकर मुक्तधाममें नहीं पधराने देगी। भले ही वे अपने कृत्योंसे सांसारिक भोगोंमें उत्कृष्टता प्राप्त करलें। और सर्व सांसारिक आत्माओंको आत्मज्ञानका भान होना भी सहल नहीं है। पूर्वके शुभकृत्योंके प्रभावसे यदि सुयोग्य अवसर (काललब्धि) उन्हें प्राप्त होजाय तो भले ही वे सच्चे मोक्षमार्गपर आकर अपनी आत्माओंका कल्याण कर सकें। सो सर्वसे ऐसे हो जानेकी संभावना अति दुष्कर है। इसी लिए कभी समय शुभ उन्नतिकी ओर पग बढ़ाता है तो कभी अवनतिके गर्तकी ओर लुडकने लगता है। यह तत्कालीन मनुष्योंके कृत्योंके आधीन है। यदि उनके कृत्य शुभ होंगे तो उनकी दशा उत्तम होगी। और यदि कृत्य दुष्परिणामनय दुष्ट होंगे तो दशा भी अधम होगी। अस्तु, इसी क्रमके अनुसार समाजकी आवश्यकताएँ घटती बढती रहतीं हैं। नये नये विचार उत्पन्न होते रहते हैं। और मनुष्य अपने मनोनुकूल सिद्धांत आदि गढ लेते हैं। पर जितना ही उनमें सत्यांश होता है, उतना ही उनका आदर और टिकाव होता है। इस युगके आरम्भमें श्री ऋषभदेवने यथार्थ मार्गका रूप जनताको दर्शाया था, पर उसी समय ही स्वयं उनके पौत्र (मारीच) ने अन्य मार्ग अपनी रुचिके अनुसार बनाया था। बस कभी ऐसी समस्या आजाती है कि उसका उत्तर नहीं मिलता, अशांति और असंतोष फैल जाता है, धर्ममें अविश्वास और अंध श्रद्धा होजाती है। इनको हल करनेके लिए उस समयकी अवस्थानुसार महान आत्मा जन्म धारण करतीं हैं, और गंभीर स्थितिको सुलझाकर समाजको पुनः सन्मार्गपर ले आते हैं।

ईसाके पूर्वकी पांचवीं और छठवीं शताब्दियां मानव जातिके इतिहासमें अपूर्व शताब्दियाँ गिने जाने लायक हैं। उनका प्रभाव चिरस्मरणीय है। इन शताब्दियोंमें चारों ओर संसारभरमें हलचल मच गई थी। भारतमें उस समय भगवान महावीर और म० बुद्ध प्रभृति महात्माओंने जन्म धारणकर मानवोंका उपकार किया था।

भारतकी दशा उस समय बड़ी मार्मिक थी। उस समयकी आर्थिक, राज्यनैतिक, सामाजिक और धार्मिक परिस्थिति बडी विचित्र होरही थी, नए २ मन्तव्य, नए २ सिद्धान्त लोगोंको बतलाए जारहे थे और लोग खुशी २ उनको अपनालेते थे।

उस समयकी आर्थिक दशा अवश्य अबसे लाख दर्जे अच्छी थी। हमें बौद्धग्रन्थोंके साथ २ जैनग्रन्थोंके वर्णनोंसे उस समयकी आर्थिक दशाके समृद्धिशाली होनेका पता चल जाता है। आजकलकीसी दरिद्रता उस समय भारतमें नामको भी नहीं दिखाई पड़ती थी। मनुष्योंको खानेपीनेकी कमी नहीं थी। दास और दासीके सिवाय और कोई मजदूरी नहीं करता था। कृषि ही मुख्य व्यवसाय था, पर शिल्पका भी अभाव नहीं था। विविध२ प्रकारकी कलाओंका प्रचार ग्राम २ में था। लोग चैनसे रहते थे। रोजगार दूर दूर देशोंसे होता था। चीन, फारस, लंका आदि देशोंके व्यापारीगण यहां व्यापार करने आते थे, ऐसे व्यापारियोंके सफर करनेका विवरण भी हमको मिलता है। उस समयके जो सिक्के मिले हैं, उनसे प्रमाणित होता है कि उस समय लेनदेनमें आजकलकी तरह नकदका व्यवहार था और साथमें कागजी

घोड़ों (हुण्डियोंके भुगतान) का खूब प्रचार था। (See The Coins of India P. 15) उस समयके लोग बहुतायतसे गांवोंमें रहते थे, और नगरोंकी संख्या इनीगिनी थी। पर नगरोंमें उस समय जनताके आरामके लिए विशेष प्रकारकी तड़ाग वापी स्नानागार आदि सुखद सामिग्री प्राप्त थीं और गृह आदि उत्तम कारगरीके परिचायक दो दो तीन तीन मंजिलके बनते थे। हाँ! उस समय जुल्म और अत्याचार भी नहीं होते थे। चोरीका तो नामनिशान तक नहीं था। विद्याका भी खूब प्रचार था। तक्षशिला विख्यात विश्वविद्यालय था। इतनी सुसमृद्धिशाली दशा होनेपर भी लोग विलासिताप्रिय नहीं थे; बल्कि मिहनती और सरल स्वभावी थे। ग्रामीण सीधा सादा जीवन व्यतीत करते थे। (See The Kshatriya Clans in Buddhist India P. 67)

तबकी राज्यनैतिक स्थिति भी एक अनोखा ही दृश्य दिखलाती थी, लोगोंके स्वतंत्र भावोंको दर्शा रही थी। एक ओर तो प्रजातंत्र अपनी स्वाधीनताका प्रभाव दिखारहे थे। और गंगाकी दूसरी ओर राजा लोग अपनी शानकी आन जतला रहे थे और नीति पूर्वक अपनी प्रजापर शासन कर रहे थे। प्राचीन यूनान जैसी हालत होरही थी। जैन, बौद्ध और ब्राह्मण ग्रन्थोंसे पता चलता है कि उस समय सोलह राजा अपने राज्यमें शासनाधिकारी थे, इनमें मुख्य वह थे, जिनसे श्री महावीरस्वामीका विशेष सम्बंध था। कौशल राज्यकी राजधानी श्रावस्ती या अयोध्या थी, यही राज्य आजकलका अवध प्रांत है। दूसरा मुख्य राज्य मगध था जो कि आजकलका दक्षिण विहार कहा जासक्ता है।

इसकी राजधानी राजगृह थी। जैनधर्मके परमश्रद्धालु राजा श्रेणिक यहां राज्य करते थे। और वर्तमानके उत्तरीय विहारमें विदेह राज्य था; जिसकी राजधानी मिथिला थी। यह राज्य एक दूसरेसे प्राकृतिकरीत्या विभिन्न थे। गंगा नदी विदेहको मगधसे पृथक् करती थी और उसे सदानीर नदी कौशलसे अलग कर देती थी। इन राज्योंके राजा एक दूसरेके निकटसम्बंधी थे। इस कारण सानन्द राज्य करते थे।

दूसरे प्रकारके प्रजातंत्र राज्य 'गण—राज्य' से विख्यात थे। इनमें मुख्य वैशाली नगरीके चहुंओर रहनेवाले लिच्छावी क्षत्रिय राजा थे। संभवतः इन्हींके गणराज्यमें भगवान महावीरने जन्म धारण किया था। इनका वर्णन हम अगाड़ी देंगे। अन्तमें यह गणराज्य अजातशत्रु मगधाधिपतिके आधीन होगया था। इसी राज्यके वर्णनसे उस समयकी उत्कृष्ट प्रजातंत्र प्रणालीका भी दिग्दर्शन हो जायगा। इसके अतिरिक्त मल्ल और शाक्य गणराज्य विशेष उल्लेखनीय थे। इनमें इतनी स्वाधीनता और ऐक्यता थी कि सहसा इन राज्योंपर कोई अधिकार नहीं जमा सक्ता था।

उस समयकी सामाजिक स्थिति भी वर्तमान जैसी जटिल नहीं थी। जाति भेद अवश्य विद्यमान थे। और मुख्य चार वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र ही थे। परन्तु इतनी संकीर्णता नहीं थी कि अन्यान्य वर्णोंसे परहेज रक्खा जाय। पाणिग्रहण करनेकी अबकी अपेक्षा तब बडी स्वतंत्रता थी। चार वर्णोंमें क्षत्रिय लोगोंका सबसे अधिक मान था। उनकी मर्यादा समाजमें खूब बढ़ी चढ़ी थी। उनके बाद ब्राह्मण, और ब्राह्मणोंके बाद वैश्यों

और उनके बाद शूद्रोंका मान था। क्षत्रिय लोग नीतिनिपुण, सदाचारी थे और ब्राह्मण केवल यज्ञकाण्डमें व्यस्त थे। इसीके कारण उनकी मान्यता कम होगई थी, और क्षत्री लोग उन्हें द्वेषभरी दृष्टिसे देखने लगे थे। वे इस समय धार्मिक क्रियाओंमें ब्राह्मणोंसे बढ़ चढ़ गए थे। और कोरे क्रियाकाण्डमें नहीं फंसे थे। स्वयं श्री सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवानने उन्हींमें जन्म लिया था। यह खींचातानी इतनी वढ गई थी कि वडे २ राजा लोग इन ब्राह्मणोंको तिरस्कारकी दृष्टिसे देखने लगे थे, और उसी मतके संरक्षक वन जाते थे जो इनके खिलाफ खडा होता था (See Mr,. K. J. Saunder's Gotama Buddha P. 17.) इस प्रकार उस समयके सामाजिक वन्धनोंका चित्र है जो कि वर्तमानके वन्धनोंसे कहीं उदार थे। यह जाति वन्धन आजकलकी तरह कठोर और कड़े कदापि न थे। जैन शास्त्रोंमें ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनसे इस व्याख्याकी पुष्टि होती है। अस्तु, केवल धार्मिक स्थितिको देखना अवशेष है कि उस समय वह कैसी थी कि जिससे ब्राह्मणों और क्षत्रियोंमें इतना मनोमालिन्य वढ रहा था।

उस समयकी अवस्थाका ध्यान करनेसे विदित होता है कि उस समय धर्मकी वडी वुरी दशा थी, जब कि महावीरस्वामीने जन्म लिया था। धार्मिक अराजकताका झण्डा चारों ओर उड़ रहा था। लोग अंधकारमें पड़े हुए ज्ञान ज्योतिके प्रकाशके लिए लालायित होरहे थे। उस समय अनुमानतः तीनसौ तिरेसठ विविध धर्म पन्थ प्रचलित थे ('अंग-पण्णत्ति' की ७३ वीं गाथा।) और क्षत्रिय लोग इन विचरते हुए साधुओंमें विशेष दिलचस्पी लेते थे। वल्कि उनके

लिए आश्रम आदि बनवा देते थे। इनमें मुख्य परिव्राजक, आजीचक, अचेलक, बौद्ध आदि थे। मि० वेङ्कटेश नारायण त्रिपाठी एम० ए० इस धार्मिक हलचल और बेचैनीको उत्पन्न करनेवाली तीन प्रवृत्तियोंको गिनते हैं। अर्थात् (१) यज्ञकी हत्या (२) कर्म्मकाण्डका प्रचार और (३) हठयोगकी धारा। भगवान महावीरके जन्म समय पशु यज्ञ पराकाष्टाको पहुंचा हुआ था। निर्दोष, दीन, असहाय जानवरोंके खूनसे यज्ञकी वेदी लाल होजाती थी। यह बलि विविध देवताओंको प्रसन्न करके यजमानकी मनोकामना पूर्ण कराती समझी जाती थी। पुरोहित लोग यज्ञके करानेमें सदैव तत्पर रहते थे, क्योंकि यही उनकी जीविका थी। इस प्रवृत्तिने उस समय सबके दिलोंको दहला दिया था। और अन्तमें भगवान महावीरने इन मूक, निरापराध पशुओंके दुःखपाशको काट जीवनदान दिया था। इस विषयमें प्रख्यात विद्वान लोकमान्य स्व० बालगंगाधर तिलकने अपने व्याख्यानके मध्य एक दफे कहा था कि "अहिंसा परमो धर्मः इस उदार सिद्धान्तने ब्राह्मण धर्मपर चिरस्मरणीय छाप मारी है। पूर्वकालमें यज्ञके लिए असंख्य पशु हिंसा होती थीं, इसके प्रमाण मेघदूतकाव्य आदि अनेक ग्रन्थोंसे मिलते हैं।....परन्तु इस घोर हिंसाका ब्राह्मण धर्मसे विदाई ले जानेका श्रेय जैनधर्म ही के हिस्सेमें है।" इसके साथ २ कर्म्मकाण्डका प्रचार भी खूब बढ़ रहा था। ढोंग और अधर्म छाया हुआ था। मि० त्रिपाठी इस विषयमें इस प्रकार वर्णन करते हैं कि "अनात्मवाद और कर्म्मकाण्ड ही का पूर्णरूपसे सार्वभौमिक राज्य था। समाज बाह्याडम्बरमें फंसा हुआ था। परन्तु समाजकी आत्मा घोर अन्ध-

कारमें पड़ी हुई प्रकाशके लिए चिल्ला रही थी। इस यज्ञप्रथाका प्रभाव समाजपर बड़ा ही बुरा पड़ता था। एक तो यज्ञोंमें जो पशु-हत्या होती थी, उसके कारण मनुष्योंके हृदय निर्दय और कठोर होते जाते थे, और उनके हृदयसे जीवनके महत्व और प्रतिष्ठाका भाव उठता जाता था। मनुष्य अध्यात्मिक जीवनके गौरवको भूलने लगे थे। इन यज्ञोंका दूसरा प्रभाव यह था कि मनुष्योंमें जड़ पदार्थकी महिमा बहुत अधिक फैल गई थी। इतना ही नहीं कि वे आभ्यन्तिरिक बातोंकी अपेक्षा बाह्य बातोंका अधिक सम्मान करने लगे थे, किन्तु बाह्य बातों ही को अपने जीवनमें सबसे श्रेष्ठ स्थान देते थे। लोगोंका विश्वास था कि यज्ञ करनेसे बुरे कर्मोंका फल नष्ट होजाता है। भला सद्-जीवन और पवित्र आचरणका गुरुत्व ऐसे समाजमें कब रहसक्ता है, क्योंकि लोग जानते हैं कि पापसे कलुषित आत्माकी कालिमाको नष्ट करनेके लिए पश्चात्ताप और संतापकी प्रचण्ड अग्नि उद्दीपित करनेकी कोई आवश्यक्ता नहीं, केवल यज्ञके मांस-दुर्गन्धाभिसिक्त धूमसे ही आत्मा उज्जवल होजायगी। फल इससे बिल्कुल विपरीत होता था। आत्माकी कालिमा और अधिक गहरी होती जाती थी। यज्ञ करनेमें बहुत रुपया खर्च होता था....अतएव हरएकके भाग्यमें यज्ञ करके यश प्राप्त करना न था। धनवान् पुरुष ही यश करनेका साहस कर सक्ता था। इसलिए विचारप्रवाह कर्मकाण्डके विरुद्ध बहने लगा और लोग आत्मशांति प्राप्त करनेके लिए नए नए उपाय सोचने लगे।" इस ही अवसर पर भगवान महावीरने जन्म ले उनके मनस्तापको शांत किया था।

ऐसी अवस्थाको उत्पन्न करनेमें कारणभूत हठ—योगकी धारा भी थी। जैन शास्त्रोंसे हमें पता चलता है कि भगवान पार्श्वनाथके जमानेसे ही इसकी प्रधानता फैल गई थी। और विविध वानप्रस्थ पन्थ और आम्नाय प्रचलित हो गए थे। मि० त्रिपाठी इनके विषयमें कहते हैं कि "इसके (हठ—योग) प्रवर्तकोंका विश्वास था कि कठिन तपस्या करनेसे उनको ऋद्धि-सिद्धि प्राप्त हो जायगी, उनमें दैवी शक्तियोंका आविर्भाव होगा, और प्रकृतिकी शक्तियाँ उनके वशमें हो जायगीं। उनका यह भी ख्याल था कि आत्मा और शरीरमें विरोध है, अर्थात् आत्मा शरीररूपी कारागारमें कैद कर दी गई है; अतः इस बन्धनसे निवृत्त होते ही आत्मा स्वतंत्र हो जायगी। ज्यों ज्यों शरीर क्षीण होता जायगा, त्यों त्यों आत्माका उत्तरोत्तर विकाश होता जायगा। इस विचारको लेकर ये लोग अपने शरीरको नाना प्रकारके तापोंसे नष्ट करने लगे।........उत्साहपूर्ण पुरुषोंकी आत्माको न तो कर्मकाण्डमें शान्ति मिली और न हठ तपश्चर्यामें ही परमानन्दका लाभ हुआ। ऐसे लोगोंको समाजका बनावटी जीवन कष्ट देने लगा। उनकी आत्माकी ज्वाला और अधिक भभकने लगी! इन सत्यके खोजियोंने अपने घरबारसे और इस असत्य प्रिय संसारसे मुख मोड़कर जंगलकी तरफ प्रस्थान किया।........ये लोग प्रचलित धर्मका प्रतिपादन और समर्थन न करते थे। प्रचलित प्रणालीकी त्रुटियोंसे असंतुष्ट होनेके कारण ये लोग चारो तरफ इन संस्थाओंकी बुराइयोंको प्रकट करते थे, और समाजकी वर्तमान अवस्थाकी समालोचना करते हुए सर्व—साधारणके हृदयोंमें प्रच-

लित धर्ममें असंतोष और अश्रद्धा पैदा कररहे थे। पुराने देवी देवताओंकी ओरसे उनको मोड़कर दूसरी तरफ ले जानेका प्रयत्न करते थे। प्रचलित धर्मकी जड़ डिगने लगी। ऐसा क्षेत्र इन सन्यासियोंने धीरे २ तैयार कर दिया था कि नए विचारोंका बीज बोया जाय। पर अभी बीज बोनेवालेकी कमी थी और लोग उसीकी प्रतीक्षा कर रहे थे।" (देखो भगवान बुद्धदेव पृ० १८-२४) प्रतीक्षा विफल न गई। भगवान महावीरस्वामीने शीघ्र ही जन्म धारण किया। और उन तापसोंको तपश्चरणका यथार्थ रूप और आत्माका महत्व बतलाया, जिससे वे सन्मार्गमें प्रवर्तित हुए थे। इस प्रकार भगवान महावीरके जन्म समयमें भारतवर्षकी अवस्था थी अस्तु अब देखना है कि इन सर्वज्ञ भगवानने किस जातिमें और कहाँ जन्म लिया था।

(१२)

लिच्छावीय क्षत्री और उनका गण-राज्य।

"वे आर्य्य ही थे जो कभी अपने लिए जीते न थे।
वे स्वार्थरत हो मोह की मदिरा कभी पीते न थे।
संसारके उपकार-हित जब जन्म लेते थे सभी;
निश्चेष्ट होकर किस तरह वे बैठ सकते थे कभी?"

उस समयमें अर्थात् ईसाके पूर्वकी छठवीं शताब्दिमें पूर्वीय भारतमें लिच्छावीय क्षत्रियोंकी एक विशाल और वीर जाति थी। ये लोग आर्य्य क्षत्री थे। उनके रीतिरिवाज, शासनप्रणाली, धर्म आदि बड़े अपूर्व और उत्कृष्ट थे जिनके कारण उनके मध्य ऐसी ऐक्यता थी कि मगधाधिपति अजातशत्रु भी इनपर सहसा आक्रमण न कर सका था, जबतक उसने इनके मध्य अनैक्यका बीज नहीं बुवा दिया था। इनमें जैनधर्मका प्रचार खूब रहा था, जैसे कि अगाडी मालूम होगा। लिच्छावी वशिष्ट गोत्रके इक्ष्वाकवंशीय क्षत्री थे। इनकी उत्पत्ति कहांसे कब हुई, यह अन्धकारमें है, किन्तु जिस समय भगवान महावीर इस संसारमें विद्यमान थे और धर्मका प्रचार कर रहे थे उस समय वे एक उच्चवंशीय क्षत्री माने जाते थे। वे अपने उच्चवंशमें जन्म धारण करनेके लिए शिर ऊँचा रखते थे; और पूर्वीय भारतके अन्यान्य उच्चवंशीय क्षत्री उनसे विवाह सम्बन्ध करनेमें अपना बड़ा मान समझते थे। भगवान महावीर शायद इन्हींके गणराज्यके एक राजाके पुत्र थे।

और संभवतः इनके एक सहयोगी नागरिक थे। इसमें संशय नहीं कि वैशालीमें इनके धर्मके अनुयायी एक विशाल संख्यामें थे। और उच्च पदाधिकारी थे; जैसे सेनापति सिंह और प्रख्यात राजा चेटक। इनकी राजधानी वैशाली एक विशाल नगरी थी जिसका वर्णन अगले अध्यायमें करेंगे। यहांपर केवल इनके आचार विचार और राज्य प्रणालीका उल्लेख करना अभीष्ट है।

लिच्छावी वज्जियन राजसंघमें सम्मिलित थे, जिसकी सत्ता समस्त वज्जी वा वृजी देशपर कायम थी। इस संघमें कितनीक जातियाँ सम्मिलित थीं, जो संभवतः आठ थीं। यह जातियां आपसमें बड़े प्रेम और स्नेहसे रहती थी, जिसके कारण उनकी आर्थिक दशा समुन्नत होनेके साथ२ ऐक्यता ऐसी थी कि जिसने उन्हें बड़ा प्रभावशाली राज्य बना दिया था। इन जातियोंके लोग बड़े दयालु और परोपकारी थे। और अति सुन्दर थे। इनको विविध प्रकारके तेज रंगोंसे बड़ा प्रेम था। यह जातियां अलग अलग रंगके कपड़े और सुन्दर बहुमूल्य आभूषण पहनती थीं। उनके घोड़े गाड़ियां सोनेकी थीं। हाथीकी अम्बारी सोनेकी थीं। और पालकी भी सोनेकी थीं। इससे उनके समृद्धिशाली और पूर्ण सुखसम्पन्न होनेका पता चल जाता है। परन्तु वे ऐसी उच्च ऐहिक अवस्थामें होते हुए भी विलासिताप्रिय नहीं थे। उनमें व्यभिचार छूतक भी नहीं गया था। वास्तवमें वे स्वतंत्रताप्रिय थे। और किसी प्रकारकी भी आधीनता स्वीकार करना उनके लिए सहज कार्य न था। उनमें चोरीका नाम निशान नहीं था। वे उत्कृष्ट कारीगरीको खूब अपनाते थे। और तक्षशिलाके विश्व विद्यालयमें

विद्याध्ययन करने जाते थे। उनके महल और देव मंदिर अपूर्व कारीगरीके दो २ तीन २ मञ्जिलके बने हुए थे। उन्होंने अपने पाणिग्रहण सम्बन्धी कुछ नियम भी शायद बना लिये थे; जिनका भाव यह था कि वैशाली राज्यके बाहर उनकी कन्यायें न जांए, जो उनके उच्चवंशज होनेके कारण होना स्वाभाविक था। "श्रेणिक चरित्र"से ज्ञात होता है कि इसी संघके मुख्यराजा वैशालीके शासक चेटकने अपनी पुत्री मगधेश श्रेणिक महाराजको देना कबूल नहीं की थी। और अन्तमें उन्होंने उसे चातुर्यतासे गुप्तरीत्या मंगवा लिया था। वह स्वयं महाराजकी रूपराशिपर मुग्ध हो चली आई थी। इस ही चेटककी इस पुत्री चेलनाने महाराज श्रेणिकको जैनधर्मका श्रद्धानी बनाया था। चेलनाका उल्लेख बौद्ध शास्त्रोंमें भी है। अस्तु, इससे उस समयके विवाह संबंधी नियमोंकी उदारताका पता चलता है। यदि किसी तरह स्त्री अपने दाम्पत्यप्रणका पालन नहीं करती थी, तो बड़े कठोर दण्डकी भागी होती थी। और उसका छुटकारा उस दण्डसे केवल सन्यास धारणमें होता था।

लिच्छावी एक परिश्रमी, वीर धीर, समृद्धिशाली जाति होनेके साथ ही साथ धार्मिक रुचि और भावको रखनेवाली थी। जैनधर्म और बौद्धधर्म दोनोंका ही प्रचार उनमें था। परन्तु जैन धर्मकी प्रधानता मुख्य थी। इसका प्रचार वैशालीमें भगवान महावीरके पहिलेसे विद्यमान था। संभवतः भगवान महावीर वैशालीके नागरिक थे। और उनके पिता जैनधर्मके पालक थे। उनके साथ और अन्य जैनी भी थे। मि० विमलचरण लॉ. एम० ए० आदिने इस बातको अपनी पुस्तक The Kshatriya Clans in Buddhist

India(P.82)में स्वीकार किया है। इसी पुस्तकके आधारपर यह वर्णन लिखा जा रहा है। इस विषयका पूर्ण विवरण लॉ. साहब-की इसी पुस्तकमें मिलेगा। लॉ. साहब इस बातको भी मानते हैं कि श्रमण (जैन मुनि) प्राचीन उपनिषदके जमानेसे धर्मका प्रचार कर रहे थे; और भगवान महावीरके पिता इन्हीं श्रमणोंकी बड़ी भक्तिसे विनय करते थे। भगवान महावीरके पुनः धर्मका उपदेश देनेके पश्चात् लिच्छावियोंमें जैन धर्मके अनुयायी बहुत होगए थे। वैशालीमें जैनी उच्च पदाधिकारी थे जैसा कि बौद्ध ग्रन्थोंसे विदित होता है। म० बुद्धके वहां कई बार अपने धर्मका प्रचार करनेपर भी जैनियोंकी संख्या अधिक थी। यह बात बौद्धोंके 'महावग्ग' नामक ग्रन्थमें सेनापति सिंहके कथानकसे विदित है। (See Vinaya Texts, S. B. E, Vol XVII, P. 116) अस्तु, यह प्रगट है कि लिच्छावी नीतिनिपुण, सदाचारी और सांसारिक सुख सम्पन्न होनेके साथ२ सच्चे धर्मके अनुयायी भी थे।

लिच्छावी राज्यवासियों द्वारा धार्मिक सिद्धाँतोंकी विशेष उन्नति हुई थी। इस बातको मि० लॉ और डॉ० बारुआ भी स्वीकार करते हैं। और ऐसा होना स्वाभाविक ही है; क्योंकि उन्हीं के मध्यसे सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवान महावीरका जन्म हुआ था।

यह हम पहिले ही कह चुके हैं कि लिच्छावियोंका गण-राज्य एक प्रजातंत्र था। और उनकी राज्य प्रणाली बिल्कुल आधुनिक ढंगकी थी। जहांपर यह दरबार करते थे वहां उन्होंने टाउनहाल बना लिए थे जिनको वे सन्थागार कहते थे। इनमेंसे मेम्बर चुनकर गण संघमें जाते थे। वे सब संभवतः राजा कहलाते

थे। उनके दरबारका कार्यक्रम इस प्रकार बौद्धग्रंथोंसे जाना जाता है। पहिले उनमें एक 'आसनपन्नापक' नामक अधिकारी चुना जाता था; वह अवस्थानुसार आगन्तुकोंको आसन बतलाता था। अब एकत्रित दरबारमें एक प्रस्ताव उपस्थित किया जाता था। इस उपस्थित करनेको 'नात्ति' (ज्ञप्ति) कहा जाता था। नात्तिके पश्चात् प्रस्तावकी मंजूरी ली जाती थी, अथवा रक्खा जावे या नहीं, यह प्रश्न एक दफेसे तीन दफे तक पुछा जाता था, और यदि इसपर सब सहमत होते थे, तो वह पास होजाता था। और यदि विरोध खड़ा होता था तो वोट लेकर निर्णय किया जाता था। जो मेम्बर अनुपस्थित होता था, उसका भी वोट गिना जाता था। कोरम पूरे करनेका भी ख्याल सदैव रहता था। इनमें नायक, चीफ मेजिस्ट्रेट भी होते थे, जो लिच्छावियोंकी राज्यसत्तासम्पन्न कुलों द्वारा चुने जाते थे। इन हीके द्वारा संभवतः दरबारमें निश्चित प्रस्तावोंको कार्यरूपमें परिणत किया जाता होगा। इनमें कितनेक मुख्य राजा थे, उपराजा थे, और भण्डारी भी थे, सेनापति भी थे। इनकी संख्या ठीक अन्दाज नहीं की जासक्ती। इन दरबारोंकी कार्रवाई ४-४ राजा अंकित करते जाते थे। वे लेखकों Recordersके रूपमें थे। न्यायालयोंका प्रबन्ध इस प्रकार था। संघके राजाओंके समक्ष अपराधी लायाजाता था। वे उसे 'विनिश्चय-महामात्रस' के सुपुर्द करदेते थे जो उसके अपराधकी जांच पडताल करके निर्णय करते थे। यदि अपराध प्रमाणित नहीं हुआ तो अपराधीको वे छोड देते थे। और यदि प्रमाणित हुआ तो वह उसे 'व्यवहारिक' के सुपुर्द कर देते थे, जो कानून और रस्मसे जानकार होते थे।

यदि उन्होंने भी अपराधीको दोषी पाया तो 'सूत्रधार' के हवाले कर दिया, अन्यथा छोड़ दिया। सूत्रधारके अधिकारमें प्राचीन कानून और रिवाजका कायम—चालू रखना आवश्यक था। वे अपराधकी विशेष छानवीन करते थे। यदि निर्दोष पाया तो छोड़ दिया अन्यथा अपराधीको 'अट्ठकूलक' के समक्ष भेज दिया। यह "अट्ठकूलक' एक प्रकारका न्यायालय (Judicial Institution) था जिसमें आठ न्यायाधीस आठों कुलके होते थे। यदि यह दोषीके अपराधसे सहमत हो गए तो उसे सेनापतिके सुपुर्द कर देते थे। सेनापति उपराजाको, और उपराजा राजाके सुपुर्द कर देता था। राजा यदि अपराधीको निरापराध पाता तो मुक्त कर देता। वरन कानून और नजीरोंकी पुस्तकसे उसके अपराधका दण्ड निर्णय करता था। इस प्रकार उनके राज्यका प्रबन्ध था। प्रत्येक बातका इन्तजाम इस ही प्रजासत्तात्मक दरबारसे होता था, जिसके मेम्बर प्रत्येक वंशसे होते थे, और राजा कहलाते थे। इन राजाओंके अपनी निजी सम्पति और पृथ्वी आदि भी होती थी। और सेनापति व भण्डारी भी होते थे। ऐसा प्रो० भाण्डारकरका मत है। जो संभवतः ठीक जंचता है। लिच्छवियोंका अन्य राज्योंसे भी विशेष सम्पर्क था। मगधेश श्रेणिककी महाराज्ञी चेलना लिच्छावी गणराजके मुख्यराजा चेटककी पुत्री थीं। इससे इनकी आपसमें मित्रता थी। मल्ल राजाओंसे भी समपनेका व्यवहार था। कौशलके राजा प्रसनजीतसे भी मैत्री थी। लिच्छावियोंका अन्त मगधके राजा अजातशत्रुद्वारा अगाड़ी चलकर हुआ था। इसके उपरान्त मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त तक इनका पता चलता है।

इस प्रकार भगवान महावीरके कुलके गण–राज्य संघका वर्णन है। अब हम अगाडी वैशाली नगरीका वर्णन मि० लॉकी उपर्युल्लिखित पुस्तकके आधार पर करेंगे जिसके निकटके कुण्ड ग्राम (कुण्डलपुर) में भगवान महावीरका जन्म हुआ था।

(१३)

वैशाली और कुण्डग्राम।

"Time, which antiquates antiquities, and hath an art to make dust of all things, hath yet spared these minor monuments."

—Sir Thomas Browne.

जैन शास्त्रोंमें वैशाली नगर चेटक राजाकी राजधानी बतलाया गया है। संभव है चेटक महाराज उस नगरके क्षत्रियवंश और अन्य लोगोंके अधिपति राजा थे और इनका सम्पर्क लिच्छावी गण-राज्य संघसे था। जैसा कि प्रो० भाण्डारकार इन राज्यसंघ मेम्बरोंको ऐसा व्यक्त करते हैं। इसी नगरीके पास तीन नगर और भी थे। और भगवान महावीरका जन्म स्थान कुण्ड ग्राम अथवा कुण्डलपुर इन्हींमेंसे एक था। कुण्डलपुरकी व्यवस्थाका भी सम्बन्ध लिच्छावी गण–राज्य संघसे था ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि इस संघकी न्याय व्यवस्थाका जो वर्णन दिया है, उससे विदित होता है कि इन क्षत्रिय वंशोंमेंसे अलग २ प्रतिनिधि आते थे और वे उन कुलोंके व अपने आधीन अन्य वर्णोंके राजा होते थे। और यह भी विचारमें रखनेकी बात है कि जैनशास्त्रोंमें महाराज

चेटकको और महाराज सिद्धार्थको वैशाली और कुंडलपुरका राजा कहा है। और मि० लॉने अपनी उपर्युल्लिखित पुस्तकमें वैशाली अथवा व्रजिदेश (विदेह आदि)में गणराज्यका होना सिद्ध किया है। इसलिए उपर्युक्त प्रकार राजा सिद्धार्थको इस राज्य संघमें सम्मिलित मानना अयुक्त नहीं भासता है। वह उस समय ज्ञात कुलकी ओरसे संभवतः राज संघमें उपस्थित थे। अस्तु, जैसे कि मि० एम० एस० रामास्वामी ऐयंगर० एम० ए० भी अपनी 'साउथ इन्डियन जैनीजम' नामक पुस्तकके पृष्ट १३ पर भगवान महावीरको नातपुत्त क्षत्रिय व्यक्त करते हुए लिखते हैं कि "महावीर वर्द्धमान उच्च प्रजासत्तात्मक राजघराने में से उसी प्रकार थे, जिस प्रकार गौतमबुद्ध। उनके पिता सिद्धार्थ उस क्षत्रिय जातिके नेता थे, और वैसाली, कुण्डग्राम और वनियग्रामके संयुक्त गणराज्यके एक शासनसत्तासम्पन्न राजा थे।" अस्तु, उस समयके अन्य प्रभावशाली राज्य मगधादिसे अपनेको सुरक्षित रखनेके लिए बहुत संभव है कि इन राज्योंने इस प्रकार एक गणराज्य कायम कर लिया हो। किंतु इस विषयमें कोई निश्चयात्मक निर्णय नहीं दिया जा सक्ता है जब तक कि उस जमानेके और हाल मालूम न हो जावें। अतएव महाराज चेटक और नृप सिद्धार्थ किसी न किसी रूपमें क्रमसे वैशाली और कुण्डलपुरके अधिपति थे, जैसा कि जैन शास्त्र प्रगट करते हैं। अब इन नगरोंका दिग्दर्शन इस प्रकार है—

वैशाली वास्तवमें एक अति विशाल नगरी थी। और यही कारण है कि इसका नाम ऐसा पडा था। भारतीय इतिहासमें

यह लिच्छावी राजाओंकी राजधानी और वज्जियन राज्यसंघके मुख्य स्थान होनेके रूपमें विख्यात है। जैन धर्म और बौद्धधर्मका इससे विशेष सम्पर्क रहा था, यह हम पहिले ही देख आए हैं। तिसपर भी वैशालीमें जैन धर्मकी प्रधानता होनेके विषयमें अनेक श्रोतोंसे प्रकाश मिलता है। इसी बातको पुष्ट करते हुए ही सर रमेशचन्द्र दत्तने अपने "प्राचीन भारतवर्षकी सभ्यताके इतिहास"में लिखा है कि "वह (भगवान महावीर) गौतमबुद्धके प्रतिस्पर्धी थे और बौद्ध ग्रंथोंमें उनका नातिपुत्रके नामसे वर्णन किया गया है और वह निर्ग्रन्थों (वस्त्र रहित लोगों)के मुखिया कहे गए हैं जो लोग कि वैशालीमें अधिकतासे थे।" भगवान महावीर भी संभवतः इसी राज्यसंघके एक राजाके राजकुमार थे, यह भी हम देख चुके हैं। यहांके अधिपति चेटक आपके मामा थे। इस नगरकी विशालताका अन्दाजा कालिदासके इस वाक्यसे भले ही बांधा जासक्ता है: "श्रीविशालमविशालम्।" चीन-यात्री यॉनचॉना वैशालीको २० मीलकी लम्बाई-चौड़ाई में बसा बतला गया था। और तीन कोटोंका भी उल्लेख कर गया था। उसके कथनके अनुसार निकटके तीन अन्य ग्रामोंका भी होना सिद्ध होता है जैसा कि बौद्ध शास्त्रोंमें वर्णन है। वही चीन यात्री इस सारे देशको ५००० ली (अनुमानता १६०० मील) की परिधिमें फैला बतलाता है, और वह कहता है कि यह देश बड़ा सरसब्ज था। आम, केले आदि मेवेके वृक्षोंसे भरपूर था। मनुष्य ईमानदार, शुभ कार्योंके प्रेमी, विद्याके पारिखी और विश्वासमें कभी कट्टर व कभी उदार थे। वास्तवमें देश अति उत्तम और

सब तरहसे भरपूर था। सुन्दर गृह थे। मनमोहक देवमन्दिर थे। चित्तहारी सलौने बाग और बगीचे थे। एक तरहसे वह देश साक्षात स्वर्गका भास कराता था। वर्तमानका मुज्जफ्फरपुर जिलेका बसाड़ ही यह वैशाली माना गया है। इसी सर्व सम्पन्न देशके निकट भगवान महावीरकी जन्मनगरी कुण्डलपुर थी, जिसका

जैनशास्त्रोंमें खूब दिया हुआ है। और जब हम वैशालीका जैसा वर्णन देख चुके हैं तब उसके निकटस्थ नगरके निम्न वर्णनमें कुछ अतिशयोक्ति प्रतीत नहीं होती।

श्री गुणभद्राचार्य विरचित उत्तरपुराणकी भाषा छन्दोबद्ध वृत्तिमें भगवानके पितृगृहका वर्णन इन शब्दोंमें किया है जिससे ज्ञात होता है कि उस नगरमें विशाल सुन्दर गृह थे:—

"सप्तखणूं प्रासाद उतङ्ग। स्वेतकणकमयतसु अस्तु अङ्ग॥
ऊपर मंदिर सोभै सार। नाम सुनंदावर्त विचार॥"

(हिन्दी उत्तरपुराण)

श्री असग कविकृत महावीरचरित्रमें इस नगरका विशेष इस प्रकार वर्णन है:—

"उस देशमें जगत्में प्रसिद्ध कुंडपुर नामका एक नगर है जो अपने समान शोभाके धारक आकाशकी तरह मालूम पड़ता है। क्योंकि आकाश समस्त वस्तुओंके अवगाहसे युक्त है। नगर भी सब तरहकी वस्तुओंसे भरा हुआ है। आकाशमें भास्वत्कलाधरबुध (सूर्य चंद्र और बुध नक्षत्र) रहते हैं, नगरमें भी भास्वान् तेजस्वी कलाधर—कलाओंको धारण करनेवाले बुध—विद्वान रहते हैं। आकाश सद्वृष—वृष नक्षत्रसे युक्त है; नगर भी सद्वृष—धर्मसे

या बैलोंसे पूर्ण है। आकाश सतार—तारागणोंसे व्याप्त है, नगर भी सतार—चांदी और मोतियोंसे भरा हुआ अथवा सफाईदार है। जहां परकोटके किनारोंपर लगी हुई अरुणमणियों पन्नाओंकी प्रभाके छायामय पटलोंसे चारोंतरफ व्याप्त जलपूर्ण खाई दिनमें भी बिल्कुल ऐसी मालूम पड़ती है मानों इसने सन्ध्याकालीन श्री शोभाको धारण कर रक्खा है।........इस नगरके नागरिक पुरुष और महल दोनों एक सरीखे मालूम पड़ते थे। क्योंकि दोनों ही अत्यन्त उन्नत चन्द्रमाकी किरण जालके समान अवदात, स्वच्छ-प्रभासे युक्त, मस्तक पर रक्खे हुए (मुकुट आदिकमें लगे हुए; महलोंके पक्षमें छत वगैरहमें जड़े हुए) रत्नोंकी कांतिसे जिन्होंने आकाशको पल्लवित कर दिया है ऐसे थे।........जहांकी कामिनियोंके स्वच्छ कपोलमें रात्रिके समय चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब पड़ने लगता है।...."

इस प्रकारका वर्णन भगवानके जन्मस्थानका है। प्रो० जैकोबीने जो उसे एक छोटासा ग्राम—मार्गमें की सराय बतलाया था; वह उनका भ्रम था, क्योंकि उन्होंने "सन्निवेश" शब्दका अर्थ ऐसा लगा लिया था, यद्यपि उसका यथार्थ भाव एक धार्मिक संस्थासे है। डॉ० होर्नल जैन शास्त्रानुसार कुण्डलपुरको एक विशालनगर इस लिहाजसे मानते हैं कि वह वैशालीका ही निकट अंग था। यद्यपि यह वैशालीके निकटस्थ एक अन्य ग्राम कोल्लागको बहुतायतसे भगवान महावीरका जन्मस्थान बतलाते हैं, क्योंकि वहांपर नाथ वा नाय (ज्ञात्रि?) वंशज क्षत्रिय रहते थे और जिनके ही कारण भगवान महावीर नाथवन्शी वा नायकुलीन कहलाते थे,

परन्तु यदि ऐसा होता तो जैनियोंके दिगम्बर और श्वेताम्बर ग्रन्थोंमेंसे किसीमें इसका उल्लेख अवश्य होना चाहिए था। (See The Life of Mahavira P. 16-17.) और दूसरी ओर स्वयं बौद्धोंके "महावग्ग" नामक ग्रन्थमें उल्लेख है कि एक मरतबा बुद्ध कोटिगाम्ममें ठहरे थे, जहां नाथिक लोग रहते थे। बुद्ध जिस भवनमें ठहरे थे उसका नाम "नाथिक-त्रिक हॉल" था। वहाँसे वह वैशाली गए थे। कोटिगाम्मकी और कुन्डगाम्म-की सादृश्यता और नाथवंशीय क्षत्रियोंका उस ग्रामसे संबंध होना प्रमाणित करता है कि यह दोनों ग्राम एक थे। यही मत सर रमेचन्द्र दत्तका था, जो अपने 'प्राचीन भारतवर्षकी सभ्यताके इतिहास' में प्रगट करते हैं कि "यह कोटिग्राम वही है जो कि जैनियोंका कुण्डग्राम है और बौद्ध ग्रन्थोंमें जिन नातिकोंका वर्णन है वे ही ज्ञात्रिक क्षत्रिय थे।" इसलिए कुन्डल ग्राम ही भगवानका जन्म स्थान था, यद्यपि वर्तमान कुंडलपुर राजग्रहके पास है परन्तु वह ठीक स्थान नहीं है।

(१४)

भगवानका शुभागमन।

" दिशः प्रसेदुर्मरुतो ववुः सुखाः
प्रदक्षिणार्चिर्हविरग्निराददे।
बभूव सर्वं शुभशंसि तत्क्षणं
भवो हि लोकाभ्युदयाय तादृशाम्॥

'दिशाएं निर्मल होगईं। सुन्दर वायु बहने लगा। अग्नि दक्षिणाग्नि होकर हवि (हवनद्रव्य) ग्रहण करने लगी। उस समय सब बातें शुभकी सूचना देने लगीं। बात यह है कि महा पुरुषोंका जन्म संसारके कल्याणके लिए हुवा करता है।' उनकी जीती जागती मूर्ति उनके समयके मनुष्योंका साक्षात् उपकार करती है। पर उनके जीवनके अनुपम चरित्र उनके बाद आनेवाले मनुष्योंका परमोपकार किया करते हैं। वे ही हमारे नेत्रोंके अगाड़ीसे अंधकारका परदा हटा देते हैं। आदर्शजीवनके लिए इन महात्माओंके जीवनके सुनहरे कृत्य ही सच्चे पथप्रदर्शक हैं। आदर्श और उच्च बननेके लिए इसके सिवाय सरल उपाय नहीं है। कैसा भी उपदेश इस साक्षात् आदर्शके अगाड़ी कुछ भी नहीं है। वस्तुतः—

"हमें महत पुरुषोंके जीवन, ये ही बात सिखाते हैं।
जो करते हैं सतत परिश्रम, वे पवित्र बन जाते हैं॥"

अस्तु, स्वयं सर्वज्ञ भगवान अन्तिम तीर्थङ्कर प्रभू महावीरका विशाल चरित्र क्यों न चित्तमें अपूर्व शान्ति और ज्ञानके उद्रेकको प्रकट करनेका कारण बनेगा ?

जब संसार ब्राह्मण लोगोंकी कार्रवाईसे उसी तरह दुःखित हो रहा था, जिस तरह गत शताब्दियोंमें यूरोप रोमके पोपोंकी पोपलीलासे दुःखी बन रहा था, तब क्षत्रिय कुलमें ऐसे अंधकारको मेटनेके लिए सूर्यका प्रकट होना, किसके चित्तको आनन्द देनेवाला न था। 'होनहार विरवानके, होत चीकने पात' इसी लोकोक्तिके अनुसार भगवान महावीरका शुभागमन आषाढ़ शुक्लाषष्ठीके दिन जब कि चन्द्र उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रपर वृद्धियुक्त विराजमान था, पुष्पोत्तर विमानसे उतरकर महाराज सिद्धार्थकी रानी त्रिशलादेवीके गर्भमें हुआ, इसके पहिले हीसे महाराज सिद्धार्थकी राजधानी कुण्डलपुरमें अतुल धन ऋद्धि आदिकी वृद्धि होने लगी थी। चहुंओर सुखसम्पन्नता फैल रही थी, यह हम पहिले देख चुके हैं। जैन शास्त्रोंके अनुसार स्वर्गके देवेन्द्रने कुवेरको पन्द्रह महीने पहिलेसे रत्नोंकी वर्षा करनेके लिए कुण्डलपुरमें भेज दिया था। तात्पर्य यह है कि भगवानके आगमनके साथ ही साथ कुण्डलपुरकी भाग्यशाली जनताके भी दिन फिर गए थे। पहिले तो उन्हें ऐहिक सुखसम्पत्तिकी प्राप्ति हुई और जब प्रभू महावीरने धर्मका उद्योतन किया तब उनकी आभ्यंतरिक आत्मसम्पदाकी वृद्धि हुई थी। इसीसे प्रभू वर्द्धमानके नामसे भी विख्यात हैं।

भगवान अपनी माताके गर्भमें चन्द्रकी भांति दिन प्रतिदिन बढ़ रहे थे। महारानी त्रिशला वैशालीके मुख्य नृपति चेटककी ज्येष्ठा पुत्री थी। इनका दूसरा नाम प्रियकारिणी था। यह महिला समाजकी अद्वितीयरत्न थीं। सुन्दरता भी अपूर्व थी। स्वयं इन्द्रने इनके दर्शनसे अपनेको कृतार्थ माना था। दया, शील प्रभृति

गुणोंकी साक्षात् मूर्ति थीं। नृपति सिद्धार्थ स्वयं ही स्वाभाविक रमणीयताके धारक थे, परन्तु दूसरा कोई जिसकी समानता नहीं कर सक्ता ऐसी कांतिको धारण करनेवाली इस प्रियाको पाकर और भी शोभायमान मालूम होने लगे थे।

भगवान महावीरके पिता राजा सिद्धार्थके विषयमें हम पहिले ही जान चुके हैं कि वे कुण्डलपुरके न्यायनिपुण और धर्मसम्पन्न शासक थे। जिन्होंने आत्ममति और विक्रमके द्वारा अर्थ—प्रयोजनको सिद्ध करलिया था; और पृथ्वीका उद्धार करके उन्नत ज्ञातिवंशको अलंकृत कर दिया था। महाराज सिद्धार्थ विद्यामें भी पारगामी और उसके अनन्य प्रसारक थे। यह महावीरचरित्रके (पत्र २४२) इस कथनसे व्यक्त होता है कि "अपने (विद्याओंके) फलसे समस्त लोकको संयोजित करनेवाले उस निर्मल राजाको पाकर राजविद्याएं प्रकाशित होने लगीं थीं।" फलतः यह प्रकट है कि भगवान महावीर एक बुद्धिमान, धर्मज्ञ, परिश्रमी और प्रभावशाली राजाके पुत्र थे।

जब भगवान रानी त्रिशलाके गर्भमें थे तब उनकी सेवाका विशेष प्रबन्ध था। और प्रसूतिकालमें और भी उत्कृष्टतासे उनकी सेवामें सेविकाएं नियत थीं। जैन शास्त्र कहते हैं कि स्वर्गके इन्द्रकी आज्ञानुसार ५६ दिक्कुमारियाँ माताकी सेवामें तल्लीन थीं। यह इस समयमें माताके चित्तको हरतरह प्रफुल्लित रखतीं थीं। कभी२ काव्य रचना करके उनके मनको हुल्लासित किया करतीं थीं। निगूढ़ अर्थ, क्रियागुप्त, बिन्दुच्युत, मात्राच्युत, अक्षरच्युत आदि श्लोकोंको कह कहकर माताको प्रसन्न करतीं थीं। माता त्रिशला

देवीने जो इन देवियोंके प्रश्नोंका उत्तर दिया था, उससे उनके ज्ञानकी विद्वत्ता टपकती है और गर्भस्थ दिव्य बालकका प्रभाव झलकता है। वे पूछतीं कि संसारमें सत्पुरुष कौन है? तो रानी उत्तरमें कहतीं थीं कि जो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पदार्थोंको सिद्ध कर, मोक्षमें विराजमान होवे वह सत्पुरुष है और कायर वह है, जो मनुष्य जन्म पाकर भी धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पुरुषार्थोंको सिद्ध नहीं करता। और पूछती कि कौनसा मनुष्य सिंहके समान उन्नत है और कौनसा नीच है? माता कहतीं कि जो मनुष्य इन्द्रियोंके साथ २ कामरूपी दुर्धर हाथीको मार भगाते हैं वे सिंह समान हैं। और जो सम्यक् रत्नत्रय धर्मको पाकर उन्हें छोड़ देते हैं वे नीच हैं। एवं विद्वान वह है जो शास्त्रोंको जानकर पाप, मोह और बुरे काम नहीं करते; विषयोंमें आसक्त नहीं होते। और जो शास्त्रोंको जानते हुए भी पाप, मोह, इंद्रियोंकी आसक्ति और कुमार्गको नहीं छोडते हैं वे मूर्ख हैं। तथैव कर्मोंके नाश करनेवाले और संसारको पूर्ण करनेवाले तप, धर्म, व्रत, दान, पूजा, उपकार आदि कार्योंको शीघ्र कर डालना चाहिए। छिपकर हिंसादिक पाप या अनाचारका सेवन करना ही मनुष्योंके हृदयके लिए कठिन शल्य है। रानीकी विद्वत्ता इस वार्तालापसे साफ टपकती है।

त्रिशलादेवीके गर्भमें जिस समय भगवान महावीर स्वामीका जीव आया था, उस समय उनको रात्रिके अर्धभागके पूर्ण होने उपरान्त प्रातःकालके कुछ समय पहिले अन्य तीर्थंकरोंकी माताकी तरह सोलह शुभ संकेतके सूचक स्वप्न दिखाई पडे थे। प्रातः उठकर रानीने महाराज सिद्धार्थके निकट जा विनम्र भावसे यह

व्रतान्त कहा था और उन स्वप्नोंका फल सुना था। महाराजने आपको अर्द्धासनपर बैठाया था। इससे उस समयके पुरुषोंकी महिलाओं प्रति आदरपूर्ण दृष्टिका अवलोकन होता है। वस्तुतः इन स्वप्नोंका जो वर्णन है, वह अवश्य महत्वका है क्योंकि प्राचीन समयके जो सिके, स्तूप अदि निकलते हैं उनमें ऐसे ही चिन्ह रहते हैं। इतिहासवेत्ता यदि जैन चिन्होंको अपने ध्यानमें रक्खें तो ऐतिहासिक निर्णय विशेष उपयुक्त हो।

(१) रानीने पहिले एक उन्नत चार दांतोंवाला हाथी देखा था। इससे यह भाव व्यक्त होता है कि एक तीर्थंकर भगवानका जन्म होनेवाला है। (२) पालतू भाग्यशाली बैल देखा, जिसका वर्ण सफेद कमलदलसे भी स्वच्छ था। इससे एक बडे योग्य धर्मके प्रचारकका होना माना गया है। (३) सुन्दरसिंह आकाशसे रानीके मुखकी ओर उछलते देखा। इससे यह व्यक्त होते समझा गया कि एक ऐसा बालक जन्म लेगा जो प्रभावशाली अतुल वीर्य्यका धारक होगा। (४) श्री अथवा लक्ष्मीदेवीको देखा। इससे प्रकट होता था कि बालक एक जन्मसिद्ध राज्याधिकारी होगा। (५) दो मन्दार पुष्प मालाओंके देखनेसे भाव यह है कि बालक सुगंधमय शरीरका धारक यशस्वी होगा। (६) चन्द्रके देखनेसे मोहतमका भेदनेवाला होगा। (७) सूर्यके देखनेसे भव्यरूप कमलोंके प्रतिबोधका कर्त्ता और अज्ञानान्धकारका मेटनेवाला होगा। (८) मीनयुगल देखनेसे यह अनन्त सुख प्राप्त करेगा। (९) दो घटोंके देखनेसे मंगलमय शरीरका धारक उत्कृष्ट ध्यानी होगा। (१०) सरोवरके देखनेसे जीवोंकी तृष्णाको सदा दूर करेगा। (११) समुद्र देखनेसे यह

पूर्ण ज्ञानका धारक होगा। (१२) सिंहासन देखनेका फल यह होगा कि वह अन्तमें उत्कृष्ट पदको प्राप्त करेगा। (१३) विमान देखनेका फल यह है कि वह स्वर्गसे उतरकर आवेगा। (१४) नागभवन देखनेसे अभिप्राय यह है कि वह यहांपर मुख्य तीर्थको प्रवृत्त करेगा। (१५) रत्नराशिका देखना यह सूचित करता है कि वह अनंतगुणोंका धारक होगा। (१६) निर्धूम अग्निका देखना बताता है कि वह समस्त कर्मोंका क्षय करेगा। इस तरह प्रियतमसे स्वप्नावलीका यह फल सुनकर कि वह फल जिनपतिके अवतारको सूचित करता है प्रियकारिणी—त्रिशलादेवी परम प्रसन्न हुई।

"कुछ दिनोंके पश्चात् उच्च स्थानपर प्राप्त समस्त ग्रहोंके लग्नको योग्यलग्नमें रानीने चैत्र शुक्ला त्रयोदशी सोमवारको रात्रिके अन्त समयमें जब चन्द्रमा उत्तरा फाल्गुनि पर था, जिनेन्द्र भगवान महावीरका प्रसव किया। प्राणियोंके हृदयोंके साथ २. समस्त दिशाएं प्रसन्न होगईं। आकाशने बिना धुले ही निर्मलता धारण करली। उस समय देवोंकी की हुई मत्त भ्रमरोंसे व्याप्त पुष्पोंकी वर्षा हुई। और दुंदुभियोंने आकाशमें गम्भीर शब्द किया।" (देखो महावीरचरित्र पृष्ठ २४८।)।

इस समय चौथे काल दुःखमासुखमामें ७४ वर्ष ४॥ मास और अवशेष रह गये थे। प्रभूका जन्माभिषेक स्वर्गके देवेन्द्रोंने आकर मनाया था। स्वयं नृप सिद्धार्थने अपने महलमें दश दिन तक उत्सव मनाए थे। दीपक जलाए थे। दान पुण्य आदि शुभ कृत्य कराए थे। और बन्दीजनोंके बंधन खुलवाए थे। चहुंओर सुख शांतिसे मनुष्य आनन्दित होरहे थे। ऐसी शुभ दशामें अन्तिम

तीर्थङ्कर भगवान महावीरका जन्म हुआ था। जैन शास्त्रोंमें इन दोनों शुभ अवसरोंको गर्भ और जन्मकल्याणकके नामसे उल्लेख किया है। और देवोंका आगमन और महोत्सव मनाना जतलाया गया है। भगवान महावीरके जन्म विषयमें कहा है कि सौधर्म इन्द्रने प्रभूको रत्नमई पाण्डुकशिला पर लेजाकर क्षीरोदधि समुद्रके निर्मल जलसे अभिषेक किया था। श्री हरिवंशपुराणमें इस विषयमें लिखा है कि "वहां (मेरु पर्वत) पर अतिशय मनोहर एक पांडुक वन है। पांडुकवनमें अतिशय विस्तीर्ण पांडुकशिला है। उस पर एक रत्नमई सिंहासन है। इंद्रने भगवानको लेजाकर उस सिंहासन पर विराजमान किया। देवगण क्षीरसागरसे अनेक सुवर्णमई घड़े भरलाए। इंद्रने समस्त देवोंके साथ उस समय भगवानका जन्माभिषेक किया, अनेक प्रकारके वस्त्र और अलंकार पहनाए, सुगंधित माला पहिनाई।"

श्री महावीरचरित्रमें भी यह वर्णन इसप्रकार है (पृष्ठ २९३) कि "अभिषेक विशाल था........नम्रीभूत सुरेन्द्रने 'वीर' यह नाम रखकर उनके आगे अप्सराओंके साथ अपने और देव असुरोंके नेत्र युगलको सफल करते हुए हावभावके साथ ऐसा नृत्य किया जिसमें साक्षात् समस्त रस प्रकाशित होगए। विविध लक्षणोंसे लक्षित–चिन्हित है अंग जिनका तथा जो निर्मल तीनज्ञानोंसे विराजमान हैं, ऐसे अत्यद्भुत श्री वीरभगवानको बाल्योचित मणिमय भूषणोंसेविभूषित कर देवगण इष्टसिद्धिके लिए भक्तिसे उनकी इसप्रकार स्तुति करने लगे। 'हे वीर! यदि संसारमें आपके रुचिर वचन न हों तो भव्यात्माओंको निश्चयसे तत्त्वबोध किस तरह हो

सक्ता है। पद्मा (कमलश्री ज्ञानश्री) प्रातःकालमें सूर्यके तेजके विना क्या अपने आप ही विकसित होजाती है? स्नेहरहित दशाके धारक आप जगतके अद्वितीय दीपक हैं। कठिनतासे रहित हैं अन्तरात्मा जिसकी ऐसे आप चिन्तामणि हो।'........इस प्रकार स्तुति करके देवगण पुष्पोंसे भूषित हैं समीचीन मेरुवृक्ष जहांपर ऐसे उस मेरुसे भगवानको मकानोंके आगे बंधे हुए कदली ध्वजाओंसे रुके हुए और विमानोंके अवतार समयसे व्याप्त ऐसे नगरमें शीघ्र ही फिर वापिस लौटाकर ले आए। 'पुत्रके हर जानेसे उत्पन्न हुई पीड़ा—खेद आप माता पिताको न हो इसलिए पुत्रकी प्रकृति बनाकर अर्थात् माताके निकट मायामय पुत्रको छोड़कर आपके पुत्रको मेरुपर ले जाकर और वहां उसका अभिषेककर वापिस लाए हैं।' यह कहकर देवोंने पुत्रको मातापिताको सुपुर्द किया।"

इस प्रकार ज्ञात होता है कि भगवानकी प्रसिद्धि चहुँओर जन्मकालसे होगई थी। और उनके दिव्य दर्शनसे मुनिजन भी अपनेको कृतकृत्य समझते थे। चारणलब्धिके धारक विजय व संजय नामके दो यतियोंका संशयार्थ एक दिन भगवानको देखते ही दूर हो गया था और उन्होंने भगवानका नाम 'सन्मति' रक्खा था। प्रभू दिनोंदिन बढ़ने लगे थे और शैशव अवस्थाको प्राप्त होते हुए थे।

(१५)

शुभ-शैशव-काल और युवावस्था।

"Man is heaven born, not the thrall of circumstances and of necessities, but the victorious subduer thereof; behold! how he can become the Announcer of himself and of his Fredom."

— Carlyle.

'मनुष्य दैवी जन्मधारक है। संयोगों और आवश्यकताओंका गुलाम नहीं है। बल्कि उनका विजयी जेता है। देखो! वह अपनी स्वतंत्रताको और अपने (आत्मिक) व्यक्तित्वको कैसी रीतिसे दुनियाँके समक्ष प्रगट कर सक्ता है।'

आधुनिक तत्त्ववेत्ता कारलायलके कितने मार्मिक शब्द हैं। प्रत्येक जैन का यह दृढ़ विश्वास होता है कि वह अनन्तशक्ति और अनन्त सुख शांतिका अधिकारी है। जो कुछ भी परिस्थिति है वह स्वयं उसका निर्माता है। वह अपने ही कृत्योंसे अपनेको सर्वोत्कृष्टतामें पधरा सक्ता है और अपनी ही विषयाशक्त्यादि कृत्योंसे घोर नीचताके गर्त्तमें पहुंचजाता है। यह निश्चय उनको भगवान महावीरके उपदेशसे प्राप्त हुआ है। अस्तु, भगवान महावीर भारतवर्षके महान्पुरुषोंमें सर्वाग्रगण्य गिने जाने योग्य हैं। परन्तु भारतके हतभाग्य कि उनके विषयमें अनेक भ्रम फैले हुए हैं। कई लोग उन्हें जन्मसे ही देव होना प्रगट करते हैं। और कोई उनके अस्तित्वको भी स्वीकार नहीं करते! परन्तु इसमें

विपरीत अब यह पूर्णतया प्रमाणित होगया है कि भगवान महावीर स्वामी कोई देव वा काल्पनिक व्यक्ति नहीं थे, वल्कि एक राजाके पुत्र महान मनुष्य थे। जैसे कि एक विद्वान कहते हैं कि "मैं महावीर भगवानके जीवनसे यही व्यक्त करूंगा कि वे 'मनुष्याव-स्थासे परमात्मपद' को प्राप्त हुए थे, न कि "देवावस्थासे परमात्मा-वस्थाको पहुंचे थे।" यदि यह अन्तिम प्रकार होता तो मैंने महावीरस्वामीके जीवनको छुआ भी न होता; क्योंकि हमलोग देव न होकर मनुष्य हैं। मनुष्यके अध्ययनके लिए मनुष्य ही सबसे गूढ़ विषय है। मानवसमाजके लिए यही ठीक शिक्षा है और इसीलिए वह देवोंको देवोंके लिए ही छोड़ देगी। यह देवोंको देवोंके लिए छोड़नेका भाव हमारेमें पहिलेसे घर किए हुए है। हम इस ओर पूर्णरूपेण प्रयत्नशील हैं कि अपने देवोंको मनुष्योंमें परिणत कर दें। और वह समाज जो अपने देवोंको ऐसा व्यक्त करनेमें अच्छी सफल होगी वही मानवसमाजके लिए विशेष उपयुक्त और स्वीकार करने योग्य होगी। 'अलौकिकता संसारसे दूर हो रही है' यह कारला-यलका कहना है। और यह समयका चिन्ह होनेके कारण हमें अपनी आत्माको उस चिन्ह तक उठाना चाहिए। अन्यथा हम समयके पीछे रह जांयगे।"

जैनियोंके समस्त तीर्थङ्कर संसारमें चलते फिरते मनुष्योंके सदृश ही थे। वह कोई देव वा मनुष्योपरि व्यक्ति नहीं थे। यह बात जैनधर्मके इस सिद्धान्तसे प्रकट है कि जैनियोंके अनुसार मनुष्यगतिके अतिरिक्त किसी भी दूसरी गतिसे मनुष्य मोक्षलाभ नहीं करसक्ता। तीर्थङ्करोंके सम्बन्धमें इतना अवश्य है जैसे कि हम

पहिले देख आए हैं कि वे अपने पूर्वभवोंमें उत्कृष्ट शुभ कृत्य करनेके कारणोंवश जन्मसे ही विशेष गुणोंसे विभूषित होते हैं।

भगवान महावीर एक समुन्नत और परमोदार, प्रेमी और धीर वीर सुन्दर और सौम्य राजकुमार थे। वे जन्मसे ही तीन ज्ञानके धारक परमोच्च विद्वान थे। इसलिए उनको किसी गुरुके निकट विद्याध्ययन करनेकी आवश्यक्ता नहीं थी। उनके विषयमें दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों आम्नाओंसे यह विदित है कि प्रभूने तीस वर्ष पर्य्यन्त एक धार्मिक श्रावकका पवित्र जीवन व्यतीत किया था। और इस समय अपने पिताके राजपी ठाठवाठका उपभोग किया था। आठ वर्षसी छोटी अवस्थासे ही आपने श्रावकके वारह व्रतोंको पालन करनेका व्रत ग्रहण कर लिया था। वे अपने बाल्यकालसे ही वड़े धार्मिक पुरुपे थे और कभी भी शील और संयमके मार्गसे विचिलित नहीं हुए थे। उनके जीवनका उद्देश्य ही यह था कि अपने जीवनसे लोगोंको प्रत्यक्षमें एक आदर्श जीवनका पाठ स्वयं नमूना बनकर सिखावें। आपकी माताकी सेवाके लिए देवियां आई थीं और रोचक द्वीपकी ५६ कुमारियां आपकी सेवा सुश्रूषा किया करती थीं। क्रमशः आप अपनी बचपनकी अवस्थाको त्याग कर बालकपनेको प्राप्त हुए थे। इस अवस्थामें पहुंचकर आपने व्रतोंका दृढ़ अभ्यास रखनेके साथ ही साथ बाल्यकालीन क्रीड़ाएं करना प्रारंभ कर दीं थीं।

वे राजकीय बगीचोंमें अपने सहचरोंके साथ जाया करते थे और वहां विविध प्रकारके कौतूहलपूर्ण शारीरिक खेल खेला करते थे। इनके सहचरोंमें आपके पिताके मंत्रियोंके पुत्र भी थे। उनका शरीर सुन्दर और सुडौल था। मुख चित्ताकर्षक था। उनका बल

और पराक्रम अतुल था। उन्होंने कभी भी हिम्मतको नहीं हारा था, चाहे ऐसे अवसरों पर विशेष शारीरिक शक्ति और मान्सिक धैर्य्यकी आवश्यक्ता क्यों न हो। (See Life of Mahavira P. 23-24) महावीरचरित्रमें आपके अतुल वल, अपरिमित धीरताका उल्लेखक एक कथानक इस प्रकार दिया हुआ है:—

"बाल्यशरीरस्वरूपको मैं फिर नहीं हो पाऊँगा....मानों ऐसा मानकर ही जिन भगवान महान् देवोंके साथ क्रीड़ा करते थे। एक दिन बालकोंके साथ २ महान् वटवृक्षके ऊपर चढ़कर खेलते हुए वर्द्धमान भगवान्को देखकर संगम नामका एक देव उनको त्रास देनेके लिए आ पहुँचा। भयंकर फणवाले नागका रूप रखकर उस देवने शीघ्र ही आसपासके दूसरे छोटे २ वृक्षोंके साथ उस वृक्षके मूलको घेर लिया। बालकोंने ज्यों ही उसको देखा त्यों ही वे गिरने लगे, किन्तु शङ्कारहित वे भगवान लीलाके द्वारा उस नागराजके मस्तकपर दोनों चरणोंको रखकर वृक्षसे उतरे। ठीक ही है—वीर पुरुषको जगतमें भयका कारण कुछ भी नहीं है। भगवानकी निर्भयतासे हृष्ट हो गया है चित्त जिसका ऐसे उस देवने अपने रूपके प्रकाशितकर सुवर्णमय घटोंके जलसे उनका अभिषेककर 'महावीर' यह नाम रक्खा।" (पृष्ट २९९)

इस कथानकसे वीर प्रभूकी वीरता और धीरताका दिग्दर्शन होजाता है। परन्तु इसमें जो देवका त्रास देनेके हेतु आगमन लिखा वह ठीक नहीं मालूम देता, क्योंकि गुणभद्राचार्य विरचित उत्तरपुराणके हिन्दी छन्दोबद्ध वृत्तिमें इस देवका भगवानके बलकी परीक्षा...गमन लिखा है, जैसे—

"तब हरजू ऐसे कही, सब देवनमें सूर।
वीर स्वामि अब हैं सही, महागुण भर पूर॥
इम सुन संगमदेव तब, मन संशय उपजाय।
लैन परीक्षा तासकी, धरणी पर तब आय॥" हिन्दी उत्तरपुराण

इस कथानकके अतिरिक्त एक अन्य और है जिससे प्रकट होता है कि भगवान महावीरने एक मदमत्त नामक भव हाथीको बातकी बातमें बांध लिया था। फलतः इनसे भगवानके विशेष पराक्रमका भास साफ प्रगट हो जाता है।

भगवानकी शिक्षाके सम्बन्धमें हम देख चुके हैं कि भगवान अपने पूर्व जन्मोंके शुभकर्मोंके प्रभावसे एक उत्कृष्ट बुद्धिको लिए हुए जन्मे थे। और उनके समान उस समय कोई भी विद्वान नहीं था। वे जन्मसे ही मति श्रुति अवधि ज्ञानके धारक थे। महावीरपुराण अध्याय आठवेंमें जो यह उल्लेख है कि भगवान शास्त्र न काव्योंका अध्ययन शैशव कालसे ही किया करते थे, उससे विदित होता है कि वे शिक्षामें पूर्ण दक्ष थे जैसे कि उनके पिता थे।

इस प्रकार "बढ़ते हुए भगवान अपनी चपलताको दूर करनेके लिए स्वयं उद्युक्त हुए। और शैशवको लांघकर क्रमसे उन्होंने नवीन यौवन लक्ष्मीको प्राप्त किया। उनका नवीन कनेरके समान है वर्ण जिसका ऐसा सात हाथका मनोज्ञ शरीर, निःस्वेदता (पसेना न आना) आदि स्वाभाविक दश अतिशय से युक्त था।

१ मलमूत्र रहित शरीर (२) पसीना न आना (३) दूधके समान श्वेत रक्त (४) वज्रवृषभनाराच संहनन (५) समचतुरस्र संस्थान (६) अद्भुत रूप (७) अतिशय सुगंधता (८) १००८ लक्षण युक्त शरीर (९) अनंतबल (१०) प्रियहितकर वचन।

संसारके हंता, नवीन कमल समान हैं सुकुमार चरणयुगल जिनके ऐसे कुमार भगवानने देवोपनीत भोगोंको भोगते हुए तीस वर्ष विता दिए।" (महावीरचरित्र पृ० २९६)

भगवान वालब्रह्मचारी रहे थे। और जैसा हम देख आए हैं, आप बाल्यकालसे ही धार्मिकशील व्यक्ति थे और वैराग्यभावके मुग्ध भ्रमर थे। भगवानके इस अपूर्व कालका उपर्युक्त वर्णन उनके पूर्वजन्मोंमें कृत शुभ कृत्योंको देखनेकी लालसा उत्पन्न करदेता है। अस्तु, साधारणतया उनके पूर्व जन्मोंका दिग्दर्शन भी हम यहां किए लेते हैं।

(१६)

पूर्वभव-दिग्दर्शन।

"काल अनन्त भ्रम्यो जगमें सहिए दुःख भारी।
जन्म मरण नित किए पापको हो अधिकारी॥"
— सामायिक पाठ।

जीव अनन्तकालसे संसारमें कर्मोंके वश होकर चक्कर लगा रहा है। कभी शुभ कर्मोंके करनेसे मनुष्य देवादि जन्मोंके सुख भोगने लगता है और वहांपर भेद विज्ञानको पाकर उत्तरोत्तर उन्नति करता हुआ मोक्षधाममें अनन्त सुखका भोक्ता बन जाता है। यदि विवेक और संयमकी उपेक्षा करके वह जीव मनुष्यादि उच्च अवस्थाओंमें विषयासक्त हो नानाप्रकारके सांसारिक प्रपंचोंमें फंस जाता है तो उसी क्रमसे संसारमें नीच दशाओंमें पड़ दुःख

उठाता चक्कर लगाता फिरता है। भगवान महावीरका जीव भी इसी क्रमसे चक्कर लगा रहा था। उन्होंने अपने पहिलेके जन्मोंमें निम्नलिखित शुभ गुणोंमें अपनेको पूर्ण करनेके कारण तीर्थङ्कर जैसे उच्चपदको पाया थाः—

(१) पूरा पूरा सच्चा श्रद्धान (सम्यक्दर्शन)। (२) सम्यक्-दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्रमय रत्नत्रय मार्गको एवं उसके अनुयायियोंकी भक्ति विनय। (३) व्रतोंका पालन। (४) स्वाध्याय। (५) धर्मसे प्रेम और दुनियासे वैराग्य (६) त्याग अथवा सांसारिक वस्तुओंसे ग्लानि। (७) संयम (८) साधु समाधि (अपनी आत्माका ध्यान) (९) सर्व प्राणियोंकी सेवा, खासकर साधुओं और सम्यक्ती जीवोंकी। (१०) तीर्थङ्करकी उसको आदर्श मानकर भक्ति। (११) आचार्यों (साधुओंके पथप्रदर्शकों) की विनय (१२) उपाध्यायोंकी विनय (१३) शास्त्रकी भक्ति (१४) शास्त्रोंमें निर्धारित नियमोंका पालन (१५) धर्मका प्रचार करना और स्वयं उस पर अमल करना (१६) और सत्यमार्ग पर चलनेवालोंके साथ वैसा ही प्रेम रखना जैसा गायका अपने बछड़ेके साथ होता है।

भगवानने इन शुभ गुणोंमें उत्कृष्टता बहुतसे जन्म धारण करके पाई थी। इनमेंसे आपके जन्मोंका वर्णन भगवान ऋषभ-नाथसे पहिले तकसे मिलता है। मनुष्य जब सर्वज्ञताको प्राप्त होजाता है तब उसे भूत भविष्य वर्तमान तीनों कालकी वस्तुओंका हाल युगपत मालूम होने लगता है। भगवान महावीरके मुख्य शिष्य गणधर इन्द्रभूति गौतम सर्वज्ञ थे। उन्होंने ही भगवानके

जीवनवृत्तान्त वर्णन और उपदेशको लोगोंको समझाया था। जिनमें मुख्य श्रोता राजा श्रेणिक बिम्बसार थे।

जैनशास्त्रोंमें भगवान महावीरका जीव पहिले पहिल एक मनुष्य दर्शाया गया है, यद्यपि इसके पहिले भी अनेक और भव हुए होंगे, क्योंकि जीव अनादिसे संसार सागरमें गोते लगा रहा है। जम्बूद्वीपके मध्य मधुवनके भीतर उनका जीव पुरूरवा नामक भील था। सागरसेन मुनिने उसे धर्मका स्वरूप समझाया था जिससे उसने अहिंसादिक व्रतोंकी बहुत दिनों तक पालना की; जिसके प्रभावसे वह मरकर सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ था। वहांके भोग भोगकर यह देव ऋषभदेवके पुत्र भरत चक्रवर्तिका पुत्र मरीचि हुआ था। और हम देख चुके हैं कि इसने ऋषभदेवके साथ ही साथ दिगम्बरीय दीक्षा ली थी, परन्तु कठिन परीषहोंको न सह सकनेके कारण उससे विमुख हो अपने मनोनुकूल सांख्य सदृशमतका अवलम्बन करने लगा था। इस कायक्लेशके बलसे वह पांचवें स्वर्गमें कुटिल परिणामी देव हुआ था।

वहांसे चयकर यह जीव कौलीसक नगरके कौशिक ब्राह्मणके यहां प्रिय पुत्र हुआ था। यहां भी इसने मिथ्यातत्वोंका उपदेश दिया था और कायक्लेश किया था, जिसके कारण यह मरकर प्रथम स्वर्गमें देव हुआ। वहां विषयभोगोंमें लिप्त रहा और शोकसे मरकर स्थूणागर नामक नगरमें भारद्वाज द्विजके यहां पुष्पमित्र नामक पुत्र हुआ। पुष्पमित्रने बाल्यकालसे हठयोगका अवलम्बन किया जिससे वह देहत्यागकर पुनः स्वर्गमें देव हुआ।

श्वेतिविका नामकी नगरीमें अग्निहोत्री ब्राह्मण अग्निभूतिकी

माता गौतमीके गर्भसे यह देव अग्निसह नामक पुत्र हुआ। यहां भी यह संन्यासियोंके धर्मका आचरणकर मृत्युको प्राप्त हो सनत्कुमार स्वर्गमें आठ विभूतिका धारक देव हुआ। वह देव भरतक्षेत्रके मंदिर नामक पुरमें गौतम ब्राह्मणके यहां अग्निमित्र नामक पुत्र हुआ। और फिर मरकर देव हुआ। पुनः स्वस्तिमती नगरीमें संतशयन ब्राह्मणके भारद्वाज पुत्र हुआ। संन्यासीका तप तपा और जीवनको पूर्णकर स्वर्गमें देव हुआ। वहां देवाङ्गनाओंमें विशेष आशक्त रहा, और उनके वियोगके भयसे संतप्तचित्त रोता रोता मरकर दीर्घकाल तक नरक, एकेन्द्रिय दोइन्द्रिय योनियोंमें भटकता रहा। पापके भारको काटकर शुभ प्रकृतिके उदयसे यह राजगृह नगरमें सांडिल्य ब्राह्मणके पाराशरी नामक स्त्रीसे स्थावर नामक पुत्र हुआ। मस्करी-संन्यासीका तपकर ब्रह्मस्वर्गमें जाकर उत्पन्न हुआ।

पुनः राजगृह नगरके अधिपति विश्वभूतिके यहां यह देव विश्वनन्दी नामका पुत्र हुआ। राजा विश्वभूति अपने भाई विशाखभूतिको राज्य देकर साधुमार्गसे रत हुआ। विश्वनन्दी युवराज पद पर थे। विशाखभूतिका पुत्र विशाखनन्दीको विश्वनन्दीसे ईर्षा हुई। इस हेतु चाचा भतीजोंमें युद्ध हुआ। विश्वनन्दीको विजयलाभ भी हुआ। पर वह वैराग्यको पा साधु हो गया। विशाखभूति भी मुनि होगया। विशाखनन्दी पर राज्य भार चला नहीं अतः राज्यभ्रष्ट होगया। विश्वनन्दी मुनि मथुरामें जारहे थे कि बैलसे धक्का खाकर गिर पड़े। विशाखनन्दी भी निकटमें था। उसने इनका उपहास किया। विश्वनन्दी क्रोधके वशीभूत हो प्राण

त्याग कर दशवें स्वर्गमें देव हुआ। यह देव वहांसे आकर पोदनपुरके अधिपति बाहुबलीके रानी मृगवतीके गर्भसे त्रिपिष्ट नामक चक्रवर्ति हुआ। विशाल राज्य व अनुपम सुन्दरियों और अनन्य उत्तम सामिग्रीका उपभोग करके और हिंसादि कृत्योंमें रत रहकर यह नरक गतिके दुःख सहता रहा। अन्तमें वहांसे निकलकर प्रविपुलसिंह पर्वतपर सिंह हुआ।

वह सिंह हिंसा कृत्यसे मरकर नरकमें गया और पुनः बराह नामक पर्वत पर सिंह हुआ और वहां पर हिंस्र पशुओंकी भांति जीवन व्यतीत करने लगा; परन्तु उसके पूर्वके शुभोदयसे उसी समय अमितकीर्ति अमितप्रभू नामक दो चारण मुनियोंने उसको धर्मका उपदेश दिया और उसे हिंसादि कार्योंसे दूर हटाया। इन शुभ भावोंके प्रभावसे वह मरकर सौधर्म स्वर्गमें हरिध्वज नामका प्रसिद्ध देव हुआ। यह देव वहांसे आकर कच्छदेशके हेमपुरके राजा कनकाभके कनकध्वज नामका पुत्र हुआ। कनकध्वज सानन्द अपनी रानीके साथ कालयापन करता था कि एक मुनिके निकट धर्म श्रवण कर दिगम्बरीय दीक्षा ग्रहणकर शुद्ध चारित्रका अनुसरण करने लगा। आयुके अन्तमें सल्लेखना व्रतसे मरकर आठवें स्वर्गमें देव हुआ। देवानंद नामक यह देव स्वर्गोंके भोग भोगते भी वीतराग जिन भगवानको हृदयमें धारण किये रहता था।

फिर उज्जयनी नगरीके अधिपति वज्रसेनकी महिषी सुशीलाके गर्भसे हरिषेण नामका पुत्र यही देव हुआ। श्रावकके व्रतों व राज्यलक्ष्मीको धारण करनेवाला यह हरिषेण अन्तमें सुप्रतिष्ठ नामक मुनिके निकट साधु होगए और उत्कृष्ट चारित्रका पालन कर

समाधिसे जीवनका अन्त कर प्रीतिवर्धन विमानमें देव हुआ। वहांपर अनेक प्रकारके सुखोंको भोगता हुआ रहने लगा। वहांसे चय कर यह देव क्षेमद्युति नगरके राजा धनंजयके यहां प्रियमित्र नामका पुत्र हुआ। वुद्धि वैभवमें भरपूर था और विशेष बलवान था। इसके चक्रवर्तिकी विभूति थी। इसने भक्तिभावसे इस विभूति प्राप्तिके उपलक्षमें जिनेन्द्रदेवकी पूजा की थी। एवं समस्त भूमंडलपर अपना राज्य स्थापित किया था। और उत्तमोत्तम भोगोपभोगका रसास्वादन किया था। अन्तमें इस चक्रवर्तिने तीर्थङ्कर भगवानके समवशरणमें जाकर धर्मको सुनते हुए मोक्षमार्गको जानकर चक्रवर्तीकी दुरंत विभूतिको भी तृणको तरह छोड़ दी थी और क्षेमंकर आचार्यके निकट दीक्षा ग्रहण की थी। सुतरां व्रतपूर्वक मृत्युको प्राप्त होकर उसने रुचक विमानमें दैवी सम्पत्तिको प्राप्त किया था।

वह देव वहांसे आकर भरतक्षेत्रके पूर्वदेशकी श्वेतात्पात्रा नगरीके अधिपति नंद्वर्धनकी महषी वीरवतीके नंदन नामक राजपुत्र हुआ। नंदवर्धनके पिहिताश्रव मुनिके निकट दीक्षा लेजानेपर नंदन राज्याधिकारी हुए थे और राज्यभोग किया था। एक दफे मुनिमहाराजके निकट आपने अपने पूर्व भव सुने थे, जिससे वैराग्य उत्पन्न होगया और वह मुनि होगए। शील संयम व्रतादिको पालते हुए वे समाधिसे देहत्याग करके पुष्पोत्तर विमानमें देव हुए।

यही देव पुष्पोत्तर विमानसे आकर भगवान महावीरके मनुष्य शरीरमें अवतीर्ण हुए थे।

इस उपर्युक्त भववर्णनसे हमें कर्मसिद्धान्तका मार्मिक भाव संक्षेपमें आजाता है। पाप-पुण्यमई कृत्योंका फल नेत्रोंके समक्ष आजाता है। कर्मसिद्धान्तका भान करानेको यह पूर्वभव वर्णन विशेष महत्वको लिए हुए है।

(१७)

वैराग्य और दीक्षाग्रहण।

"जीवनका है क्षेम नहिं, औ लिख दुखका स्रोत।
निज मन खोजन लाग रे, परम तोष जप जोत॥"

इस संसारमें जो कुछ भी हिलन चलन मच रही है, उसकी जड़ मनुष्यकी सुख पानेकी उत्कट पिपासा ही है। इस तृप्त न होनेवाली पिपासाके कारण ही मनुष्य नवीन नवीन आदर्श और उद्देश्य ढूंढ निकालता है और उनके अनुसार कुछ काल तक चलता है; परन्तु जब उन्हें भी अपूर्ण पाता है तो उनको छोड़कर अन्य वैसे ही देखनेमें सुखवर्द्धक उद्देश्यको मान बैठता है और उसका अनुशीलन करने लगता है। कुछ मनुष्य तो अपने जीवनका अन्त ही इन एकके बाद एक उद्देश्यको सुख पानेकी इच्छासे ढूंढनेमें कर डालते हैं परन्तु सुख इन बाह्य वस्तुओंमें नहीं है—उसके लिए नए २ मार्ग बनानेकी आवश्यक्ता नहीं है। असली सुख मनुष्यकी आत्मामें मौजूद है। उसे बाहर ढूंढने कहीं नहीं जाना है। उसका मार्ग भी निश्चित है। मनुष्यको पहिले अपनी आत्माका और उसकी अनन्तशक्तिका विश्वास होना आवश्यक है।

विश्वास होनेपर स्वभावसे ही मनुष्य आत्माके पूर्ण ज्ञानका अध्ययन करेगा। जब आत्माके स्वरूपसे भिज्ञ होजायगा तब स्वतः ही ऐसे शुद्ध चारित्रको ग्रहण करेगा जो उसे अपनी आत्माके निज स्वभावकी ओर लेजानेवाला होगा। और वह इस प्रकार प्रयत्नशील बने रहनेसे एक रोज अनन्त सुखको पालेगा, जिसकी उसको वाञ्छा थी। उसको अच्छी तरह मालूम होजायगा कि अन्य जगह कहीं भी सुख नहीं है।

लार्ड अवेबरी इस विषयमें किस उत्तमतासे कहते हैं कि "धन हमें सुखी नहीं बना सका, विजय सफलता हमें सुख तक नहीं पहुंचा सकी, मित्रगण सुखका अनुभव नहीं करा सके, और सुस्वास्थ्य और बल भी हमें सुख नहीं दे सका। यह सब सुखके लिए हैं, परन्तु इनसे सुखकी प्राप्ति नहीं होसकी। प्रकृति अपनी भरसक कि जो चाहे सो करसकी है। वह भले ही हमें सद्बुद्धि, निरोगता, धन सम्पदा और एक दीर्घ जीवन प्रदान कर दे किन्तु वह हमें सुखी नहीं बना सकी। सुखके लिए हम मेंसे प्रत्येकको स्वयं प्रयत्नशील होना चाहिए। हमारी भाषा इसे खूब व्यक्त करती है। देखिए एक आनन्दमय दिवसके दिन हम क्या कहते हैं? कहते हैं कि हमने खूब आनन्द भोगा (We say, we have enjoyed 'Ourselves'). हमारी मातृ भाषाका यह संबोधन विशेष अर्थको लिए है। हमारा सुख हम पर ही निर्भर है।" आधुनिक महान तत्ववेत्ता कारलायल भी आत्मसंयमको संसारमें समस्त उच्च सद्गुणोंमें सर्वोपरि ठहराता है। हम देखते हैं कि आधुनिक संसारमें भी यह सत्य अपना प्रभाव

दिखला रहा है और ऐसे स्थानपर जहां आत्मवादके विषयमें अभी भ्रम फैला हुआ है। रूसके प्रख्यात तत्ववेत्ता काउन्टलिओ टालस्टाय एक राजषी ठाठके अधिकारी थे। परन्तु उसमें उनकी आत्माको शान्ति नहीं मिली, और उन्होंने अन्यमार्गका अवलम्बन किया। आज भारतमें महात्मा गांधीका चरित्र आंखोंके सामने है। तभी तो जैन कवि कहता है किः—

"जो जगके सुखमें सुख होवहि, तौ किम् कानन जावहिं राजा।
कोटि विलासि तजहिं किहि कारण, छांड़हिं वे किम राज समाजा॥
सूझ पैरे जब ही उनको, निजका घर ध्यान सुधारहिं काजा।
रे मन! तोहि न सूझ पैरे, जगके सुख चाह न लागत लाजा॥"

बात यह है संसारमें विदून त्याग और संयमके कुछ भी प्राप्त नहीं होसक्ता। अल्प कार्योंके लिए जब त्यागकी जरूरत है, तब परम सुख प्राप्ति जैसे महान कार्यके लिए कितने न बड़े त्यागकी आवश्यक्ता होगी? हिन्दूशास्त्रोंमें भी इस त्यागके महत्वका वर्णन शिवजीके लिए पार्वतीके तप करनेके वर्णनसे प्रकट है। तुलसीदासजी इसका उल्लेख इस प्रकार करते हैं:—

"ऋषनि गौरि देखी तहं कैसी, मूरतवंत तपस्या जैसी।"

वस्तुतः किसी भी सफलताके लिए किसी न किसी रूपमें त्याग-तप-संयमकी आवश्यक्ता है।

हम भगवान महावीरके विषयमें पहिले ही देख चुके हैं कि वे बाल्यकालसे ही संसारसे विरक्त थे। उन्हें संसारके भोगोंमें आनन्द नहीं भासता था। उन भोगोंका रसास्वादन करते हुए भी

वे उनमें संलग्न नहीं थे। उनको विश्वास था कि जीवनकी शुद्धावस्थाका अनुभव करना जीवनोद्देश्य है। और सांसारिक धनसम्पदा बाह्य वस्तुऐं संसार परिभ्रमणकी कारण हैं। इसी भावका ध्यान रखते हुए उन्होंने अपने तीस वर्ष श्रावककी दशामें व्यतीत कर दिए थे। इसी समयमें उनके पिताने उनसे विवाहके लिए कहा था परन्तु आपने इन्द्रिय सुखोंकी अनित्यताका विचार करके उनके इस उद्देश्यको स्वीकार नहीं किया था। एक दिवस जब आप अपनी आत्माका ध्यान कर रहे थे, तब सहसा आपको वैराग्य होगया– आप विषयोंसे विरक्त होगए। आपको अपने पूर्व जन्मोंका स्मरण हो आया। आपने जान लिया कि उद्धत इन्द्रियोंके विषयोंकी तृप्ति कभी नहीं होनेकी और अपने निर्मल अवधिज्ञानसे अपनी आयुकी स्थिति भी जान ली, इन निमित्त करणोंको पाकर उन्होंने मुनिव्रत धारण करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया। यद्यपि आप अभी यौवनावस्थामें ही थे। सुतरां उन्होंने अपनी आत्मग्लानिमें विचारा कि "मैं तीन ज्ञान नेत्र रखता हूं, आत्मज्ञानी हूं, तो मैंने मूर्खके समान इतना काल वृथा ही गृहस्थाश्रममें ठहरकर खो दिया।" इस तरह घरको जेलखाना जानकर उसे राज्यलक्ष्मीके साथ छोडकर वनमें तपके लिए जानेका प्रभुने परम उद्यम कर लिया।

आपके माता पिताओंने जब आपका यह निश्चय सुना, तो बड़े व्याकुल और विह्वल होगए और आपको राजश्री सम्पत्तिका न त्याग करनेकी सम्मति देने लगे। रानी त्रिशलादेवी स्वभावसे भाववत्सला–कोमल हृदयकी थीं। वे अपने पुत्रको इस तरह समझाने लगीं–" प्यारे पुत्र राजकुमार वर्द्धमान ! तुम अभी युवक

हो। तुमने कभी भी सूरजकी गर्मी सर्दी नहीं सही है। तुम कैसे धूपकी तपसको सहन कर सकोगे? तुम्हारा सुकुमार शरीर और कोमल अवयव दिगम्बरीय दीक्षाके कठिन परिषहोंको नहीं सह सकेंगे। तुम तो राज्यकीय महलोंमें रहो और पिताजीको राज्यभार संभालनेमें सहायता दो। वैसे मैं जानती हूं कि वत्स! तुम्हारा जन्म संसारके सामान्य मनुष्योंकी भांति इन्द्रियतृप्तिमें ही सुख मानने को नहीं हुआ है। तुम जगतको विषयवासनाके कूपसे निकालने, प्रत्येकको स्वतंत्रताका पाठ पढ़ा उसे स्वावलम्बी बनाने और लोगोंको यह बतलानेके लिए कि मनुष्य निज आत्माका आश्रय लेकर अपनी गुप्त शक्तिको प्रकाशमें लाकर ही स्वाधीनता स्वतंत्रता मोक्ष पासका है, अवतीर्ण हुए होगे परन्तु नंदन! अभी तुम्हारी अवस्था दुर्धर तपश्चरण करनेके योग्य नहीं है।" परन्तु भगवान महावीर अब रुकनेवाले नहीं थे। उनके वैराग्यको देवोंने आकर और पुष्ट कर दिया था। वे माताको इस प्रकार उत्तरमें कहने लगे कि "पूज्य मातुश्री! संसार इन्द्रजालवत् है, इसकी वस्तुएं सांसारिक मोहान्धव्यक्तियोंको देखनेमें अपनी असलियतसे विभिन्न दीखती हैं। इसलिए मनुष्यको रागको छोड़कर संन्यास धारण करना चाहिए, जिससे मोक्षकी प्राप्ति हो। जगके दृश्य पदार्थ जलबुदबुदकी तरह नष्ट होजानेवाले हैं। रोग, शोक, परिताप सदा मनुष्यके साथ लगे रहते हैं। ये शारीरिक सौन्दर्यको नष्ट कर देते हैं। मृत्यु हरवड़ी व्याधि भांति पीछे लगी रहती है और अवसर पाते ही फौरन शस्त्रप्रहार कर देती है, फिर आत्माके साथ कुछ नहीं रहता, रहता है तो केवल अपना किया हुआ

भला या बुरा कार्य। अस्तु त्यागी माता। और वनमें जाकर आत्मध्यानमें लीन होना परमोपादेय कर्तव्य है।"

पुत्र विछोहके भयके मोहसे व्याकुल माता प्रभुको पहिले तो छोड़ न सकी, किन्तु प्रभुके दृढ़निश्चय और संसारकी नश्वरता समझाने पर उन्होंने अपनी मिथ्या भ्रान्तिको त्याग दिया। भगवानने तीस वर्षकी अवस्थामें निर्ग्रन्थ मुनिपदको धारण किया। और उष्ण सुवर्णके समान भगवानका शरीर नग्न अवस्थामें अपने स्वाभाविक तेज और प्रकाशसे सूर्यके समान शोभता हुआ।

जिस समय आपने गृहस्थावस्थाको त्यागनेका निश्चय कर लिया था, उस समय कहते हैं कि आपने अपनी सर्व वस्तुओंका दान कर दिया था। अपनी विशाल सम्पदाको याचकोंमें वितीर्ण कर दिया था। वादमें, श्रेष्ट रत्नमई चन्द्रप्रभा नामकी पालकीमें आरुढ़ होकर भव्यजनोंसे वेष्टित वीरनाथ भगवान कुण्डलपुरके वाहर निकले। नागखंड (ज्ञात्रिखंड) वनमें पहुंचकर आपने पालकीको रुकवाया। और पालकीमेंसे उतरकर भगवान् अत्यंत निर्मल स्फटिकमणिमय पाण्डुशिला पर विराजमान हुए थे। इस शिलाके निकट ही अशोक वृक्ष था। भगवान् उसी वृक्षके नीचे इस शिलापर उत्तर दिशाको मुखकर बैठे और सर्व आभूषणों व वस्त्रोंको उन्होंने त्याग दिया। फिर उन्होंने सिद्धोंको नमस्कारकरके परिग्रहका त्यागकर २८ मूलगुणोंको धारण किया था और पंचमुष्टि केशलुंचन किया था। (जैन साधुओंके लिए यह नियम है कि वे हाथसे पांच दफेमें अपने बालोंको उखाड़कर फेंक दें। वे हिन्दू सन्यासियोंकी तरह बाल बनवाते नहीं हैं।) इस प्रकार मगसिर शुक्ला दशमीको भगवानने

मुनिपदको धारण किया था, जैसे हिन्दी उत्तरपुराणमें कहा है:—

"रत्नशिला पर तिष्टे सही, उत्तर आस्वासन मुख लही ।
मार्गशीर्ष सुदि दशमी जान, हस्त उत्तरामय खसिभान ॥
अरु अपराह्न समय जिनराय, संयम सन्मुख भए सभाय ॥"

'भगवानने शीघ्र ही सात लब्धियोंको प्राप्त कर लिया। और *मनःपर्यय ज्ञानको पाकर वे तमरहित भगवान रात्रिके समय नहीं प्राप्त किया है एक कलाको जिसने ऐसे चन्द्रमाकी तरह बिल्कुल शोभने लगे।'

---

* जैनशास्त्रोंमें ज्ञान पांच प्रकारका बतलाया है यथाः—
"मतिश्रुतावधिमनःपर्य्ययकेवलानि ज्ञानम्" (तत्वार्थ सूत्र १-९)
अर्थात् (१) मति (२) श्रुत (३) अवधि (४) मनःपर्य्यय (५) केवलज्ञान। मतिज्ञान संसारके दृश्य पदार्थोंका ज्ञान है जो इन्द्रियों और मनद्वारा जाना जासक्ता है। मतिज्ञानके साथ २ शास्त्रोंके स्वाध्याय और अध्ययनसे प्राप्त समस्त पदार्थोंके ज्ञानको श्रुतज्ञान कहते हैं। उन सब बातोंका ज्ञान जो दूर रहीं हों बिना वहां जाएं ही बैठे २ जान लेनेको अवधि कहते हैं। दूसरोंके मनोभावको जान लेना मनःपर्य्यय है और जगतके भूत भविष्यत वर्तमानके समस्त पदार्थोंको युगपद् जान लेना केवलज्ञान है।

(१८)

तपश्चरण और केवलज्ञानोत्पत्ति।

"श्री वर्द्धमानमानंदं नौमि नानागुणाकरं।
विशुद्धध्यानदीप्तार्चिर्हुत कर्मसमुच्चयं॥"

भगवान महावीरके तपश्चरण और केवलज्ञानोत्पत्तिका वर्णन करनेके पहिले आइए उन भगवानके घातियां कर्म्मोंके क्षय होकर केवलज्ञानोत्पत्तिके हर्षोपलक्षमें उनका स्मरण हृदयसे करलें, जिससे उन जैसी शुभ्र दशाको मैं व आप जैसी भव्य आत्माऐं प्राप्त हों। अस्तु।

भगवान महावीर अब जैनमुनिके कठिन तपश्चरणका अनुसरण करने लगे थे, परीषहोंको जीतते थे, व्रतोंका पालन करते थे, अपनी आत्मोन्नतिके लिए बड़े २ उपवास करते थे। और उनमें अपनी आत्माके शुक्लध्यानमें लवलीन रहते थे। इस समय आप यत्रतत्र भ्रमण अवश्य करते थे, परन्तु अभी आपने प्रकट रीत्या जनतामें उपदेश देना प्रारंभ नहीं किया था; जैसे कि नियम है कि तीर्थङ्कर भगवान केवलज्ञानकी प्राप्ति तक उपदेश नहीं देते हैं। इस भ्रमणके मध्य आप चातुर्मासमें एक स्थान पर वर्षाऋतुके चार महीने रहते थे; क्योंकि इन दिनों बहुतसे सूक्ष्म जीव पृथ्वी पर उत्पन्न होजाते हैं। और उनके प्राणोंकी हिन्सा न करनेके लिए जैन मुनि भ्रमण नहीं करते हैं। इस भ्रमण और केवलज्ञानोत्पत्तिके बादके भ्रमणका वर्णन जैन शास्त्रोंमें बहुत खूबीके साथ दिया हुआ है। दिगम्बर और श्वेताम्बर ग्रन्थ इस बातको व्यक्त

करते हैं कि भगवान महावीरने केवलज्ञान प्राप्तिके पहिले बारह वर्ष तक दुर्धर तपश्चरण किया था, और भारतवर्षके विविधस्थानों पर भ्रमण किया था। परन्तु इस भ्रमण वृतान्तमें दोनोंमें मतभेद है। दीक्षाके उपरान्त आपने छै महीनेका तप धारण किया था जिसमें आप निश्चल ध्यानारुढ़ रहे थे। इसके पश्चात छै महीनेके अन्तमें आप आहार हेतु कूलपुर नामक ग्राममें गए थे। वहांके कूल नृपने आपको विनयके साथ आहार कराया था। दीक्षा ग्रहण करनेके बाद प्रथम पारणा आपका यही हुआ था। कूलपुर और कूल नृपके विषयमें शास्त्रोंमें कुछ विशेष वर्णन नहीं है। महावीर चरित्रमें केवल इतना उल्लेख है कि (पृष्ट २९९) "एक दिन महान् सत्व-पराक्रमसे युक्त वीर भगवानने जब कि सूर्य आकाशके मध्यभागमें आगया उस समय बड़े महलोंसे भरे हुए कूलपुरमें पारणाके लिए अर्थात् उपवासके अनन्तर आहारके लिए प्रवेश किया। कूल यह पृथ्वीमें प्रसिद्ध है नाम जिसका ऐसा एक राजा उस नगरका स्वामी था। उसने भगवानको आहार करनेके लिये ठहराया।" इस ग्रन्थसे पहिलेका संकलित गुणभद्राचार्य कृत उत्तरपुराणकी हिन्दी छन्दोबद्ध वृत्तिमें इस विषयमें इस प्रकार उल्लेख है कि:—

"अब भटारक तन थित काज। अशन निमित उठे महाराज ॥
कूल नामपुरमें जब गया। कूलभूप जिनको लख लिया॥"

इस वर्णनसे इन कूलनृप और उनके नगर कूल्यपुरके विषयमें कुछ विशेष प्रकाश नहीं पड़ता। यही नहीं जाना जासक्ता कि यह कूलपुर कहां था और यह कूलनृप कौन था, जिसने भगवानको प्रथम आहार देकर असीम पुन्य संचय किया था।

मि० लॉ की पहिले उल्लिखित पुस्तकमें एक कोल्यि क्षत्रिय जातिका उल्लेख है। इस जातिके विषयमें वे लिखते हैं (पृ० २०३) कि "रामगाँमके कोल्यि, यह नाम प्रकट करता है कि यह जाति देवदहके कोल्यि क्षत्रियोंमेंसे ही निकली थी। कनिंगघम साहबके अनुसार रामगाँम (रामग्राम) और देवकलि एक ही ग्राम हैं।.... दिघनिकायके महापारिनिव्वान सुत्तन्तमें रामगाँवके निवासियोंको नाग जातिसे सम्बन्धित बतलाया है।"

इसमें कोल्यि शब्दसे कूल शब्दकी बहुत सादृश्यता है और यह विचारनेकी बात है कि कूलपुरका अधिपति कूल नृप जैनशास्त्रोंमें लिखा है। नगर और राजाका नाम एक होना यह निश्चय दिलानेको एक प्रबल कारण प्रतीत होता है कि यह कूल नाम एक जातिका था; और उस कूल जातिके अधिपति जैन शास्त्रोंमें कूलनृप कहे गए हैं। और उस कूल जातिकी राजधानी होनेके कारण उस कूल जातिके नृपतिका नगर कूल्यपुर कहा गया है। मि० लॉ एक क्षत्रिय कोल्यि जातिका उल्लेख करते ही हैं। अस्तु, बहुत संभव है कि इसी जातिके अधिपति कूलनृपके नामसे विख्यात हैं। और उस जातिकी राजधानी रामगाँम ही कूल्यपुर होगी रामगाँमका कूलपुर नाम संभव है इस प्रकार पड़ गया होगा कि रामगाँम और देवकलि एक ही ग्राम थे। देवकलिमेंसे अन्तिम पद कलिकी कुछ सादृश्यता कूलसे बैठती है। अस्तु, इस सादृश्य भावको ध्यानमें रखते हुए कूल जातिकी अपेक्षा ही इस ग्रामका नाम कूल्यपुर कवियों द्वारा रख लिया गया होगा। कालान्तरमें उस नगरका यथार्थ नाम नजरोंसे ओझल होगया होगा क्योंकि

इतिहासकी ओर इतना गंभीर लक्ष्य पहिलेके विद्वानोंका नहीं था। इस प्रकार कूलनृप और कूलपुरकी ऐतिहासिकता प्रगट होती है, किन्तु यह निश्चय रूपमें अभी स्वीकार नहीं की जासक्ती अस्तु।

भगवान महावीर इस कूल्यपुरसे प्रस्थान करके दशपुर नामक नगरको गए थे! वहां भी कूलनृपने जाकर भगवानको दुग्ध और चांवलका आहार विनयपूर्वक दिया था। इसके उपरान्त भगवान महावीर वनको वापस चले गए थे। और फिर कितनेक स्थानोंका भ्रमण करके बारह प्रकारके तपोंका अभ्यास करने लगे थे। इस तपश्चरणके प्रभावसे आपको आठ प्रकारकी ऋद्धियों और कई प्रकारकी सिद्धियोंकी प्राप्ति होगई थी। इसके पश्चात् आपने पंच महाव्रतों, पांच समितियों, तीन गुप्तियों और चौरासी हजार उत्तर गुणोंका पालन किया था। इस तपश्चरणके उपरान्त भी आपने कितनेक स्थानोंमें गमन किया था।

इसी परिभ्रमणके मध्य एक समय आप उज्जयनी नगरीमें पहुंचे थे। और वहँके अतिमुक्तक नामक स्मशान भूमिमें रात्रिके समय प्रतिमायोग धारणकर खड़े हुए थे उस समय भव नामके रुद्रने अपनी अनेक प्रकारकी विद्याओंके विभवसे बहुत कुछ उपसर्ग किए, पर वह उन विभव-संसार रहितको जीत न सका। तब उन जिननाथको उसने नमस्कार करके भगवानका 'अतिवीर' नाम रक्खा था।

उज्जैनसे महावीरस्वामी कौशाम्बीको गए थे। यहांपर चन्दना नामक स्त्रीने आपको आंहार दिया था। यही चन्दना पश्चात्में आपके आर्यिका संघकी नायका हुई थी, इनके विषयमें हम अगाड़ी

कहेंगे। यहांसे भगवान पुनः वनको प्रस्थान कर गए थे और वहांपर उपवास व ध्यान करनें लगे थे। अब आपने बारह वर्षके लिए निश्चल मौनवृत धारण करके कठिन तपस्याका अभ्यास किया था।

इस बारह वर्षके तपश्चरणके पश्चात् आपको केवलज्ञानकी प्राप्ति हुई थी। श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनों ही ग्रन्थ 'इस समय भगवानकी अवस्था ब्यालीस वर्षकी होचुकी थी' ऐसा व्यक्त करते हैं और दोनों ही भगवानके केवलज्ञान प्राप्तिका स्थान भी एक ही बतलाते हैं।

श्वेताम्बर ग्रन्थोंमें जो भ्रमणके स्थानोंमें मतभेद है, वह संभव है, वैसे नगर होंगे जिनका उल्लेख दिगम्बर शास्त्रोंमें नहीं दिया हुआ है। केवल यह ही लिख दिया गया है कि भगवानने विविध स्थानोंमें भ्रमण किया था। दिगम्बरशास्त्रोंमें केवल उन्हीं स्थानोंका नाम दिया है, जहांपर कोई विशेष बात हुई थी और श्वेताम्बरोंके कल्पसूत्रमें भगवानके चातुर्मासोंके हिसाबसे भ्रमणके ग्रामोंका उल्लेख किया है अर्थात् कल्पसूत्रके अनुसार भगवानने प्रथम चातुर्मास अस्थिकग्राममें किया था। और तीन चतुर्मास चम्पा और पृष्टिचम्पामें किए थे और अवशेषमें आठ वैशाली और वणिजग्राममें किए थे। और उनके आचारंग सूत्रमें लिखा है कि आप सर्व प्रथम कुमारग्राममें पहुंचे थे। इस प्रकार दोनों ही संप्रदायोंके शास्त्रोंसे विदित होता है कि बारह वर्षका तपश्चरण करनेके पहिले आपने भारतवर्षके विविधस्थानोंमें भ्रमणकर लिया था और इसके उपरान्त केवलज्ञानको प्राप्त किया था।

यह इस प्रकार हुआ कि एक दिन ऋजुकूला नदीके किनारे पर बसे हुए श्री जृम्भक नामके ग्राममें पहुंचकर अपराह्न समयमें अच्छी तरहसे षष्ठोपवासको धारणकर सालवृक्षके नीचे एक चट्टानपर अच्छी तरह बैठकर जिननाथने वैशाख शुक्ला दशमीको जब कि चंद्र, सूर्यके ऊपर था ध्यानरूपी खड्गके द्वारा सत्तामें बैठे हुए घाति कर्मोंकी नष्ट कर केवलज्ञानको प्राप्त किया। अपनी केवलज्ञान संपत्तिके द्वारा सदा यथास्थित समस्त लोक और अलोकको युगपत् प्रकाशित करते हुए, इन्द्रियोंकी अपेक्षासे रहित, अच्छाया (शरीरकी छायाका न पड़ना) इत्यादिक दशगुणोंसे युक्त जिनेश्वरको त्रिदशेश्वरोंने आकर भक्तिपूर्वक नमस्कार किया।' (देखो महावीर-चरित्र पृष्ठ २५९-२६०) पूर्वोल्लिखित हिन्दी उत्तरपुराणमें भी इसीप्रकार वर्णन है यथाः—

"द्वादश वर्ष तपस्यामांहि। पूरण जिन कीन्हें मन लाहि॥
जंभक नाम ग्राम इक जान। ताढिग सरिता एक प्रमान॥
ऋजुकूला नामासो कही। तातट आरण्य मनोहर सही॥
तामें रतनशिला इक सार। तापर प्रतिमा जोग सुधार॥
साल वृक्षके तल जिनराज। वेलो धरलीनो जिनराज॥
सुदी वैशाख दसै अब जान। और समय उत्तम अपराह्न॥
तप केसार निवतर मांहि। षिपकश्रेणि आरूढ़ कराहिं॥
शुकल ध्यान ध्यायो सुधभाय। घातिकर्म दुखदाय खिपाय॥"

जब भगवानको केवलज्ञान प्राप्त होगया और आप सर्वहितैषी, सर्वज्ञ जिनराजपदको (अर्हत=तीर्थङ्कर) प्राप्त होगए, तब देवोंने उत्सव मनाकर आपके समवशरण (सभागृह)की रचना करदी थी।

इस विषयका वर्णन हम 'तीर्थंकर कौन हैं?' इस प्रकरणमें कर चुके हैं। उसी प्रकार इन अन्तिम तीर्थंकर भगवानके भी सर्व रचना क्रमसे होगई थी। और अब भगवानका शरीर भी वैसा ही दिव्यरूपका होगया था, जैसा कि प्रत्येक तीर्थंकरका होता है। जिसका वर्णन हम पहिले कर चुके हैं। इस समयसे भगवानकी वाणी खिरना (उपदेश होना) प्रारंभ होगई थी और आपके मुख्य गणधर इन्द्रभूति गौतम उस उपदेशको ग्रहण करते थे। इन गणधरका वर्णन हम अगाड़ी चलकर करेंगे। भगवानने समवशरणमें विराजमान हो पुनः भारतवर्षमें विहार किया था।

इस विहार और धर्मप्रचारका वर्णन करनेके पहिले हम श्वेताम्बर ग्रन्थोंकी उन कथाओंको भी दिए देते हैं जो भगवानके केवलज्ञानोत्पत्तिके पहिले उपसर्गरूपमें वर्णित हैं; यद्यपि दिगम्बर शास्त्रोंमें उनके विषयमें उल्लेख नहीं है। इन कथाओंसे भगवानकी मुनि अवस्थामें चारित्रकी दृढ़ताका भान होजाता है, और इसी भावसे उनका मूल्य और महत्व है।

(१९)

विविध-उपसर्ग-वर्णन।

निरापरध निर्वैर महामुनि तिनको दुष्ट लोग मिल मारैं
कोई खैंच खम्भसे बांधे कोई पावकमें परजारैं॥
तहां कोप नहीं करैं कदाचित् पूर्व कर्म विचारैं।
समरथ होय सहैं बधबन्धनते गुरु सदा सहाय
हमारैं॥"

— बाइस परिषह भूधरदासजी कृत।

हम पहिले देख आए हैं कि महावीरचरित्रमें वर्णित है कि भगवान महावीरपर रुद्र द्वारा उपसर्ग हुआ था। और भगवानने उसे समताभावसे सहन किया था। दिगंबर शास्त्रोंमें इसके अतिरिक्त अन्य कोई उल्लेख नहीं है। श्वेताम्बर ग्रन्थोंमें हमें कई एक कथानक मिलते हैं। उनमेंसे कुछका उल्लेख हम यहां करते हैं। इन कथानकोंको प्रकट करनेमें इनके रचयिता आचार्योंका भाव भगवानके चारित्रकी दृढ़ता और निर्मलता दिखानेका प्रतीत होता है। अस्तु।

एक समय भगवान ध्यानमें मग्न थे। देवाङ्गनाऐं इनके ध्यानकी परीक्षा करने आईं और वे गीतनृत्य करने लगीं। अपने हावभावोंसे इन्हें रोमांचित करना चाहतीं थीं—इनके उग्रतपको भंग करना चाहतीं थीं, परन्तु भगवान महावीर, संसार—विजयी वीर—वासना विजयी वीर आत्मध्यानसे हटकर इनकी ओर क्षण-मात्रके लिए भी नहीं देखते थे। विचारी देवाङ्गनाऐं हताश

होकर चलीं गईं। सत्य है—जिस व्यक्तिके हृदय पर वासनाओंका कुछ प्रभाव नहीं होता, जिसके हृदयमें सुख या दुख खलवली पैदा नहीं करसके; जिसके अविचल मेरुतुल्य मनको संसारके बड़े बड़े झंझावात नहीं हिला सके ऐसे अचल ध्यानी वज्रशरीरी वीरके मनको चलायमान करनेके प्रयत्नमें देवांगनाऐं हताश न होतीं तो क्यों होतीं। (देखो जैनसंसार वर्ष १ अङ्क ४)

दूसरा कथानक इस प्रकार है कि दीक्षा ग्रहणकर प्रभू वीर विचरते हुए कुमारगांवके निकट आए, और नासाग्रदृष्टि लगा, हाथ लंबेकर दोनों पैरोंके बीचमें चार अंगुलकी दूरीरख अचल हो, कायोत्सर्ग कर ध्यान करने लगे। पासहीमें एक खेत था। किसान खेतको जोतकर सांयकालके समय बैलोंको महावीर भगवानके निकट छोड़ दूध दुहनेके लिए अपने घर चला गया। पीछेसे बैल कहीं जंगलमें चले गये, क्योंकि प्रभू तो कायोत्सर्ग करके खड़े थे अतः उन्हें क्या मतलब था कि वे किसीको देखते या किसीके बैलोंकी रक्षा करते। किसान लौटकर आया तो वहां बैल दिखाई नहीं हुए। उसने प्रभूसे पूछा परन्तु कुछ उत्तर न मिला। इसीलिए किसान उन्हें खोजनेके लिए जंगलमें चला गया। बेचारा रातभर बैलोंकी खोजमें भटकता रहा, परन्तु कहीं बैलोंका पता नहीं चला। अतः थककर पौफटनेके पहिले वापस लौट आया। वहां आकर क्या देखता है कि बैल महावीरस्वामीके पास बैठे हुए हैं। यह देखकर उसे बड़ा क्रोध आया और प्रभूको कष्ट देनेको तत्पर हुआ। भगवानका स्मरण करते हुए सहसा यह बात इन्द्रको मालूम होगई। वह तत्काल ही वहां आया, और

किसानसे कहने लगाः—"रे मूर्ख! तू यह क्या करनेको तत्पर हुआ है? क्या तू जानता नहीं है—कि ये महात्मा हैं। ये अपना ही राज्य, धन, धान्य सब छोड़ चुके हैं। तब तेरे बैलोंका क्या करते?" किसान इन्द्रकी बातसे सन्तुष्ट हुआ और अपने बैल लेकर चला गया। (देखो जैनसंसार वर्ष १ अङ्क ८—९)

इनके अतिरिक्त श्वेताम्बर ग्रन्थोंमें प्रभूके अपूर्व गुणोंको व्यक्त करनेवाले अन्य कथानक भी हैं। उपर्युक्त कथानकोंसे भगवानकी सहिष्णुता, प्रेम, दया, शील, संयम आदि सद्गुणोंका दिग्दर्शन भलेप्रकार होजाता है।

---

(२०)

विहार और धर्मप्रचार।

'गिरिभित्त्यवदानवतः श्रीमत इव दन्तिनः
अवद्दानवतः।
तव शमवादानवतो गतमूर्जितमपगतप्रमादानवतः॥'

— श्री वृहत्स्वयंभुस्तोत्र।

स्वामी समन्तभद्राचार्यजी उक्त श्लोक द्वारा व्यक्त करते हैं कि "हे वीर! दोषोंके उपशम प्रतिपादक, शास्त्रोंके रक्षक तथा प्रकृष्ट हिंसाके नाश होनेसे अहिंसाव्रत वा अभयदान सहित आपका उत्तम विहार हुआ जैसे सम्पूर्ण भद्रलक्षणों सहित झरते हुए मदवाले जिसको पर्वतीय भित्तिका अवदान है ऐसे हाथीकी गति होती है।"

भगवानके इस विहारमें देवगण और उनके गणधर, मुनि और आर्यिकाऐं, श्रावक और श्राविकाऐं सब साथ रहा करते थे और भगवानका विहार जिस अपूर्वतासे होता था (जिसका वर्णन तीर्थङ्करके प्रकरणमें कर चुके हैं।) उससे अन्य लोगोंके चित्तोंपर बड़ा प्रभाव पड़ता था। वे अपने मिथ्या श्रद्धानको खो बैठते थे। अब भगवानने अपनी उस निर्वाण प्राप्तिकी अभिलाषाको प्राप्त कर लिया था, जिसके लिए वे अहर्निश अपनी आत्माके ध्यान और योग साधनमें बारह वर्ष तक तल्लीन रहे थे। यद्यपि अभी मोक्ष प्राप्त करनेमें कुछ अवकाश अवशेष था।

भगवानने अब अपने संसार-परिभ्रमणकारक आठ कर्म्मोंपर विजय प्राप्त कर ली थी। अब आप '**जिन**' की पदवीको प्राप्त हो गए थे। आप संसारकी समस्त दशाओंको अपने ज्ञानमें देख सक्ते थे, और मानवोंके हृदयविचारोंको जान लेते थे। आपका ज्ञान सम्पूर्ण लोकालोकक्की वस्तुओंमें व्याप्त होगया था। आपको अपनी आत्मा और लोकके स्वरूपका ध्यान करनेसे परमोच्चतम सम्यक्दर्शन और ज्ञानका भान होगया था। इस समय भगवान यथार्थमें भगवान थे।

जिस धर्मको भगवानने अपने अनुभव द्वारा साक्षात् देख-लिया, उसीका प्रचार करनेके लिए आपने उपर्युल्लिखित विहार किया। संसारतापसे झुलसी हुई सुखकी पिपासी आत्माओंको आपने धर्मामृतका पान कराया-सुख और शान्तिका मार्ग बताया। भव्योंको उसी समय अनन्त सुखका रसास्वादन कराया। अनुमानतः तीस वर्षतक इस प्रकार आपने भारतवर्षमें यत्रतत्र

धर्मका प्रचार किया। पवित्र विहारके ही उपलक्षमें वह प्रान्त जहांपर आपका समवशरण आया था और जहांसे आपको निर्वाणका लाभ हुआ था विहार (Modern Bihar) कहलाया। आप वर्षाऋतुमें चार्तुमासके निमित्त एक ही स्थानपर अवश्य रहते थे किन्तु वास्तवमें यह जीवन दिव्य कर्तव्य और उत्कृष्ट तपश्चरणका था। यह सम्पूर्णकाल आपने धर्मका स्वरूप समझानेमें व्यतीत किया था। आपके वीरसंघका आश्रय उत्तरीय भारतके बड़े २ राजाओंने लिया था उनका वर्णन हम अगाड़ी करेंगे।

महावीर भगवानको अपने गत बारह वर्षके तपश्चरणकी उपयोगिताका विश्वास था और आपके वह दिवस वृथा व्यतीत नहीं हुए थे, क्योंकि आपको इसके अंतमें नौ लब्धियोंका (=(१) अनन्तदर्शन (२) अनन्त ज्ञान (३) क्षायिक सम्यक्त्व (४) क्षायिक चारित्र (५) अनन्त दान (६) अनन्त लाभ (७) अनत भोग (८) अनन्त उपभोग और (९) अनन्त वीर्य्य) और अनन्त चतुष्टयका लाभ हुआ था। तप और ध्यानकी महिमासे ही आपको कैवल्य-पद प्राप्त हुआ था।

इस विहारके वर्णनमें दिगम्बर और श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायोंके आचार्य करीब २ एक मत हैं। विहारका वर्णन करनेके पहिले यह घटना उल्लेखनीय है कि भगवानके केवलज्ञान प्राप्त होनेके पश्चात् सहसा ही वाणी (श्रुति-उपदेश) नहीं खिरने लगी थी; जबतक कि इन्द्रभूति गौतम नामक ब्राह्मण उनके समवशरणमें आकर मुख्य गणधरकी पदवीपर आसीन नहीं होगया था, इसका उल्लेख हम अगाड़ी पूर्णरूपेण करेंगे। इन्द्रभूति गौतम भगवानके

साथ २ मुख्य गणधर (Chief Pontiff) के रूपमें तीस वर्ष पर्य्यन्त रहे थे और जब भगवानका निर्वाण हुआ था तब उसी समय आपको केवलज्ञान प्राप्त हुआ था। भगवान महावीरने अपना प्रथम उपदेश गौतमको दिया था। पश्चात् अपने निकटके मनुष्योंको और उपरांतमें अन्य देशोंमें विहारकर उपदेश दिया था।

(See life of Maharvira P. 44.)

अधर्मके घोर अज्ञानान्धकारमें भगवानने जैनधर्मके प्रचारसे ज्ञानसूर्यको प्रकट करके निर्मल धर्म प्रकाशको चहूंओर फैला दिया था। अन्य विविध धर्मपन्थोंके अनुयायी आपकी शरणमें आए थे। यहां तक कि बिचारे निरपराध, निर्बोध, निर्बल पशुओंके भी त्रास दूर हो गए थे। लोगोंने धर्मका यथार्थरूप देख लिया था, वे अब क्रियाकाण्डमें नहीं फंसते थे। यज्ञवेदको रुधिरकी मर्मस्पर्शी लाल धारासे नहीं रंगते थे। 'अहिंसा परमो धर्मः' का अहिर्निश ध्यान रखते थे। भगवान भी भवभ्रमण भवातुर भव्यात्माओंको सन्मार्ग पर लानेमें प्रबल कारण थे। उनको वस्तुका स्वभाव यथावत् दर्शानेमें साक्षात् ज्ञान प्रकाशका कार्य करते थे। उनके दर्शनसे लोगोंकी शङ्काऐं मिट जातीं थीं। वे गङ्गाके दोनों ओर अपना प्रकाश फैलाते विचर रहे थे।

सर्व प्रथम आपका शुभागमन मगधमें हुआ था। वहां व कुण्डलपुरके इर्दगिर्दके देशोंमें आपने धर्मोपदेश दिया था। मगधसे भगवान बिहारको गए थे। वहांपर आपने श्रावस्ती नगरीको अपने दिव्यज्ञान-प्रकाशसे प्रकाशमान किया था। और वैषष्ठी आदि स्थानोंपर सरस ज्ञानामृतका पान लोगोंको कराया था फिर

आप हिमालयकी तलहटीतक दिव्यध्वनि प्रध्वनित करते विचरे थे। 'मिथिलामें भी भगवानने अपने सदुपदेशसे जनताको कृतार्थ किया था; वहांके राजागण विशेष प्रभावशाली और विद्यापटु थे।'*

श्वेताम्बराम्नायके कल्पसूत्र ग्रन्थमें भगवानके चातुर्मासोंका इसप्रकार वर्णन है। अर्थात् चार चातुर्मास तो भगववानने वैशाली और वणिज ग्राममें विताए थे; चौद राजगृह और नालन्दके निकटवर्तमें; छै मिथिलामें; दो भद्रिकामें; एक अलमीकमें, एक पान्यि भूमिमें; एक श्रावस्त्वतीमें और अंतिम पावापुरमें पूर्ण किया था। इननेंसे कुछका नाम महावीरपुराणमें वर्णित स्थानोंमें नहीं है; यद्यपि दोनों वर्णनोंनें विशेष अन्तर नहीं है। महावीरपुराणके अनुसार आपने सम्पूर्ण उत्तरीय भारतमें विहार किया था। विदेहमें वहांके शासनसत्तासम्पन्न राजा चेटकने आपके चरणोंका आश्रय लिया था। और आपकी विशेष विनय की थी। अंगदेशके अधिपति कुणिकने भी भगवानके शुभागमनपर अपने अहोभाग्य समझे थे। और वह भगवानके साथ २ कौशाम्बी तक गया था। कौशाम्बीके नृपति शतनीकने भगवानके उपदेशोंको विशेष भाव और ध्यानसे श्रवण किया था। भगवानकी वन्दना उपासना बड़ी विनयसे की थी। और अन्तमें भगवानके संघमें सम्मिलित होगया था। भगवान महावीरके इस तीस वर्षके दिव्य पर्य्यटनमें मगध विहार, प्रयाग, कौशाम्बी, चंपापुरी एवं उत्तरीय भारतके अन्य कितनेक प्रभावशाली राज्य जैनधर्मके श्रद्धानी और अनुगामी वन गये थे, किन्तु मगधदेशकी राजगृहनगरी ही ऐसा स्थान है जहां भगवानने

*(देखो The Heart of Jainizm.)

अपना विशेष समय व्यतीत किया था। और वहांके लोगोंकी भी आपमें अचल और गाढ़ भक्ति थी। उस समय मगधके अधिपति राजा श्रेणिक बिम्बसार थे, जो जैनधर्मके प्रखण्ड प्रभावक और भगवान महावीरके अविचल भक्त थे। आपका दिग्दर्शन पाठकोंको हम आगाड़ी करायंगे।

श्रीमद्भगवत् जिनसेनाचार्यने अपने हरिवंशपुराणमें (पृष्ठ १८) भगवानके विहारके विषयमें लिखा है कि "जिस प्रकार भव्यवत्सल भगवान ऋषभदेवने पहिले अनेक देशोंमें विहारकर उन्हें धर्मात्मा बनाया था उसी प्रकार भगवान महावीरने भी मध्यके (काशी, कौशल, कौशल्य, कुसंध्य, अश्वष्ट, साल्व, त्रिगर्त पंचाल, भद्रकार, पाटच्चर, मौक, मत्स्य, कनीय, सूरसेन एवं वृकार्थक) समुद्रतटके (कलिंग, कुरुजांगल, कैकेय, आत्रेय, कांबोज, वाल्हीक, यवनश्रुति, सिंधु, गांधार, सौवीर, सूर, भीरु, दशेरुक, वाडवान, भारद्वाज औ क्काथतोय) और उत्तर दिशाके (तार्ण, कार्ण, प्रच्छाल आदि) देशोंमें विहारकर उन्हें धर्मकी ओर ऋजु किया था।"

इतनी बात यहांपर ध्यानमें रखनेकी है कि भगवानने यह विहार एक साधारण साधुकी भांति नहीं किया था; बल्कि समवशरण (सभागृह)के साथ २ उस प्रभावनाके साथ जिसका कि उल्लेख हम पहिले कर चुके हैं विहार किया था। इस समवशरणमें क्या २ रचना होती है और वह कितनी ऊँची होती है, यह मल्लिनाथपुराणके इस श्लोकसे व्यक्त होजाती है:—

'प्राकाराश्चैत्यवृक्षाश्च केतवो वनवेदिकाः ।
स्तूपाः सतोरणाः स्तंभा मानस्तंभाश्च तेऽखिलाः ॥
प्रोक्तास्तीर्थकरोत्सेधाद्दुत्सेधेन द्विषद्गुणाः ।
दैर्घ्यानुरूपमेतेषां रौंद्यमाहुर्गणाधिपाः ॥ १२९॥

भावार्थः—प्राकार, चैत्यवृक्ष, ध्वजा, वनवेदी, स्तूप, स्तंभ, तोरण सहित, मानस्तंभ इन सबकी ऊँचाई तीर्थङ्करके शरीरकी ऊँचाईसे १२ गुणी होती है। उसीके अनुकूल चौड़ाई होती है। रत्नमई मानस्तंभ समवशरणके अग्रभागमें रहते थे, वे ऐसे मालूम पड़ते थे कि मानो 'महादिशाओंमें अन्त देखनेकी इच्छासे पृथ्वी-पर आये हुए मुक्तिके प्रदेश हों।'

भगवान महावीरका दिव्योपदेश 'अनाक्षरी भाषा'में होता था, जिसको उनके मुख्य गणधर इन्द्रभूति गौतम मागधी भाषामें प्रगट करते थे। भगवानकी वाणीके विषयमें उक्त पुराणमें लिखा है किः—

'मुखाम्बुजेऽस्य वक्तुर्विकृतिर्नाभून्मनाग् न च ।
ताल्वोष्ठानां परिस्पंदौ निर्ययौ भारती मुखात् ॥'

भावार्थः—भगवानके मुखकमलमें कोई विकार न हुआ, न तालु ओंठ ही हिले, इसतरह वाणी प्रगट हुई।' भगवानकी वाणीमें क्या अपूर्वता थी उसीको स्वामी समन्तभद्राचार्य विक्रमकी दूसरी शताब्दिके प्रारंभमें इस प्रकार प्रगट करगए हैंः—

'बहुगुणसंपदसकलं परमतमपि मधुरवचनविन्यासकलम् ।
नय भक्त्यवतंसकलं तव देव ! मतं समन्तभद्रं सकलम् ॥'

अर्थात्–सर्वज्ञत्व, वीतरागत्वादिक जो बहुगुण तद्रूप सम्पत्ति उससे न्यून, तथा मधुर वचनोंकी रचनासे युक्त मनोज्ञ, ऐसा परका मत है, तथा आपका मत (धर्मोपदेश) सम्यक् प्रकारसे भव्य प्राणियोंको कल्याणका कर्ता है और नैगमादि नयोंका जो भंग (स्यादस्तीत्यादि भेद) तद्रूप जो कर्णभूषण उसको लानेवाला है, अर्थात् नैगमादि नय व सप्तभंगों सहित है ।

भगवानके धर्मोपदेशमें एक मुख्यता यह भी थी कि आपके धर्मोपदेशसे प्रभावित व्यक्तिको भगवानके संघमें आश्रय मिलता था । जातिभेद–वर्णभेदकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता था । सर्व प्रकारके जीवोंके लिए भगवानके संघमें स्थान था । स्वयं भगवानके मुख्य गणधर ब्राह्मण थे । इस प्रकार भगवानके संगमें सर्वप्रकारके मनुष्य जैन धर्मानुयायी थे । और भगवानने अपने उत्कृष्ट तीस वर्ष इस प्रकार धर्मप्रचार और विहार करते हुए, प्रभावशाली राज्योंको जैनधर्ममें परिवर्तन करते हुए विता दिए थे । अब भगवानके निर्वाण प्राप्तिका समय आगया था, परन्तु उस पुण्यमई अवसरका वर्णन करनेके पहिले हम भगवानके गणधरों, मुनियों, विशेप भक्तों और समकालीन मनुष्योंका परिचय पाठकोंको करादेंगे।

(२१)

इन्द्रभूति गौतम ।

त्रैकाल्यं द्रव्यषट्कं सकलगणितगणाः सत्पदार्थानवैव।
विश्वं पंचास्तिकाय व्रतसमितिविदः सप्ततत्त्वानि धर्मः॥
सिद्धे मार्गस्वरूपं विधिजनितफलं जीवषट्काय लेश्या
एतान्यः श्रद्धधाति जिनवचनरतो मुक्तिगामी स भव्यः

भगवान महावीरके ग्यारह गणधर थे, जिनमें मुख्य इन्द्रभूति गौतम थे। ये सर्व गणधर अन्य धर्मोंमेंसे जैन धर्ममें आए थे। भगवानके सम्यक् उपदेशको श्रवण करके इनको जैन धर्ममें श्रद्धान हुआ था। अस्तु, यह विद्यामें सर्व भगवानके मोक्ष प्राप्त कर लेनेके पश्चात् इन्होंने ही धर्मका प्रचार चालू रक्खा था।

भगवान महावीरके मुख्य गणधर इन्द्रभूति गौतम व सुमति नामक ब्राह्मणके पुत्र थे। यह पाराङ्गत विद्वान थे। हिन्दू शास्त्रोंके ज्ञाता थे और वेदादिके पारगामी पंडित थे। इस कारण इनको अपनी विद्यापटुताका बड़ा गर्व था।

भगवान महावीरको केवलज्ञान प्राप्त होनेपर सहसा वाणी नहीं खिरने लगी थी। देवोंका इन्द्र जो उस समय भगवानके निकट अवस्थित था, उसने अपने अवधिज्ञानसे जान लिया कि गणधरके न होनेसे भगवानकी दिव्यध्वनि नहीं होरही है। और यह भी जान लिया कि गौतम नामक ब्राह्मण विद्वान् ही भगवानका गणधर होगा। इसलिए स्वयं इन्द्र ही उस ब्राह्मण विद्वानके निकट गया था।

इन्द्रको मालूम था कि इन्द्रभूति गौतम बड़ा मानी और गर्वी व्यक्ति है, यद्यपि उसकी बुद्धि निर्मल और विशुद्ध है। इस लिये वह अपना रूप बदलकर एक बृद्ध विद्यार्थीके रूपमें उसके निकट पहुंचकर बोला कि "महाराज! मेरे पूज्य गुरुने मुझे एक श्लोक बताया है किन्तु उसका अर्थ बतानेके पहिले ही वे अपने शुक्लध्यानमें आरूढ़ होगए। अब इस श्लोकका अर्थ मुझे कोई नहीं बता सक्ता है परन्तु मैंने आपकी विद्वत्ताकी महिमा खूब सुनी है। सुना है कि आप वेद और पुराणोंके पारगामी विद्वान् हैं और मुझे इस श्लोकके अर्थ जाननेकी उत्कट लालसा लग रही है। अस्तु, मैं आशा करता हूं कि आप इस श्लोकका अर्थ बताकर मेरी आत्माकी अशान्तिको मिटांयगे। "इन्द्रभूति उस श्लोकका अर्थ बतानेको राजी होगए, परन्तु उन्होंने भी यह ठहरा लिया कि 'मेरे अर्थ बता देनेपर इन्द्रको मेरा शिष्य होना पड़ेगा।' वृद्ध विद्यार्थीरूप इन्द्रने यह बात स्वीकार करली और वह श्लोक पढ़कर सुनाया जिसका भाव करीब २ उपर्युक्त श्लोककी भांति था; अर्थात् छै द्रव्य त्रिकालिक हैं? नव सत्पदार्थ हैं, पंचास्तिकायमें विश्वका समावेश होजाता है, क्रियाका फल यह मोक्षमार्गका स्वरूप है, तत्व सात हैं, जीवके छै लेश्यायें हैं, इन व अन्य जिनवर वचनोंमें श्रद्धा रखते हुए भुक्तिमार्गके अनुगामी हैं, वे भव्य जीव हैं।'

गौतम इस श्लोकको सुनकर असंमंजसमें पड़ गए, उनका मस्तिष्क चकराने लगा, वे कुछ भी नहीं समझ सके कि इसका अर्थ क्या हो सक्ता है। छै द्रव्य क्या हैं? पंचास्तिकायसे क्या

मतलब है? तत्वोंसे क्या भाव है? छैः लेश्यायें कौनसी हैं? और वह अन्यथा अर्थ बतानेका भी साहस नहीं कर सके, क्योंकि वह जानते थे कि यह वृद्ध पुरुष जब इस श्लोकका यथार्थ अर्थ जानेगा तब मेरे अन्यथा बताए हुए अर्थके कारण मेरा उपहास करेगा; इस लिए उनने यह ही उत्तम समझा कि स्वयं भगवान महावीरके निकट चलकर इस श्लोकका अर्थ बताना चाहिये, जिससे मिथ्या बतानेका दोष मेरे सिरपर न आवे और इसी विचारसे वह अपने दो लघु भ्राताओं—अग्निभूति और वायुभूति एवं अपने पांचसौ शिष्योंके साथ २ भगवान महावीरके समवशरणके लिए प्रस्थानित हुआ। मार्गमें उसे भगवानके निकट चलनेमें संकोचकी शङ्का भी हुई, परन्तु उनके भाइयों और शिष्योंने चलनेका अनुरोध किया। भाइयोंके अनुरोधसे इन्द्रभूति भगवानके समवसरणके निकट पहुंचे। पहिले मानस्तंभको देखते ही उनका मान और गर्व मन्द पड़ गया और समवशरणके भीतर प्रवेशकर त्रिलोकवंदित स्वयं भगवान महावीरकी परम वीतराग मुद्राको देखकर उसका हृदय नम्रीभूत होगया, योगावस्थाकी आत्मविभूति देखकर प्रभावित होगया। उन्होंने भगवानको साष्टांग नमस्कार किया, और भगवानके उपदेश सुननेकी वांछा प्रगट की। भगवानने उनको जैनधर्मके तत्वोंका स्वरूप बताया और जैनसिद्धांतके यथार्थ मर्मको समझाया; जिसको सुनकर इन्द्रभूति गौतमको जैनधर्ममें दृढ़ श्रद्धान उत्पन्न होगया, और उन्होंने भगवानके निकट अपने भाइयों और शिष्यों सहित मुनि-धर्मको स्वीकार किया। आपके दोनों भ्राता क्रमशः गणधर होगए थे और आप भगवानके मुख्य गणधर रहे थे।

इस प्रकार विद्यार्थीका वेश धारण करनेवाला इन्द्र गौतमको वादका छल करके भगवानके निकट लिवालाकर-भगवानके मुख्य गणधर पदपर उनको आसीन देखता हुआ था। उस गौतमने दीक्षाके साथ ही पूर्वाह्नमें निर्मल परिणामोंके द्वारा तत्काल बुद्धि, औषधि, अक्षय, ऊर्ज्ज, रस, तप और विक्रिया! इन सात लब्धियोंको प्राप्त किया और उसी दिन अपराह्नमें उस गौतमने जिनपतिके मुखसे निकले हुए पदार्थोंका है विस्तार जिसमें ऐसे उपांग सहित द्वादशाङ्ग श्रुतकी पद रचना की। जब भगवान महावीरका निर्वाण होरहा था उसी समय आपको भगवानकी मोक्ष प्राप्तिके साथ २ केवलज्ञानकी प्राप्ति होगई थी। भगवान महावीरके पश्चात् आप ही संघके नायक रहे थे और भगवानकी मोक्षप्राप्तिके वारह वर्ष उपरान्त आप भी भगवानके अनुगामी हुए थे। इस प्रकार आप मुनि अवस्थामें पचास वर्ष रहे और कुल ९२ वर्ष जीवित रहे थे। आपके विषयमें चीनयात्री हुईनसांगने लिखा है कि वह महावीर स्वामीके मुख्य गणधर थे।

इस उपर्युक्त वर्णनसे हमें भगवान महावीरके मतकी धार्मिक उदारताका पता चलता है। भगवानके ज्ञानमें जो सत्यका प्रकाश हुआ, उसीको उन्होंने संसारके समक्ष प्रगट कर दिया और जिस भव्यको उस सत्यमें श्रद्धान हुआ उसीने यथार्थ धर्मको स्वीकार किया। किसी भी वाह्याडम्बरमय लालच या प्रभावसे किसीने जैनधर्मकी शरण नहीं ली, वल्कि सत्य ज्ञानकी यथार्थताको पाकर ही लोग भगवानके अनुयायी हुए थे। इसप्रकार जिसे धर्ममें सत्य-श्रद्धान हुआ और उसने चारित्रको धारण किया वही जैन कहलाया।

(२२)

सुधर्माचार्य एवं अन्य शिष्य ।

" जैवंत दयावंत सुगुरुदेव हमारे,
संसार विषम खार सों जिनभक्त उधारे ॥
जिन वीरके पीछे यहां निर्वानके थानी ।
बासठ वर्षमें तीन हुए केवलज्ञानी ॥
फिर सौ वर्षमें पांच ही श्रुतकेवली भये ।
सर्वांग द्वादशांगका उमंग रस लये ॥
जैवंत दयावंत सुगुरु देव हमारे,
संसार विषम खार सों जिनभक्त उधारे ॥

श्रीकविवर वृन्दावनदास ।

इन्द्रभूति गौतमके अतिरिक्त दश गणधर और थे, यह भगवानके मुख्य शिष्य थे। भगवान महावीरके संघमें चार प्रकारके आचारके अनुयायी मनुष्य थे। प्रथम प्रकारके शिष्य मुनि वा श्रमण कहलाते थे, इनकी संख्या १४००० थी, इन्हींकी प्रतिष्ठा संघमें सर्वोच्च थी और इनके चारित्रके नियम भी अति दुर्धर थे। श्वेताम्बर दृष्टिसे यह संघ-अंग नौ गणोंमें विभक्त था और प्रत्येक गणके मुनिजन एक गणधरके आधीन रहते थे।

'लाइफ ऑफ महावीर' नामक पुस्तक (पृष्ठ ९६) में इन गणधरोंके नामादिका एक उत्तम नकशा संभवतः श्वेताम्बर दृष्टिसे दिया हुआ है उससे हम जानसक्ते हैं कि:—

(१) प्रथम मुख्य गणधर इन्द्रभूति गौतम, गौतम गोत्रके थे और उनके गणमें ५०० मुनि थे।

(२) दूसरे गणधर अग्निभूति भी गौतम गोत्रके थे। इनके गणमें भी ५०० मुनि थे।

(३) तीसरे गणधर वायुभूति, इन्द्रभूति और अग्निभूतिके भाई गौतम गोत्री थे। इनके आधीनगणमें भी ५०० मुनि थे।

(४) आर्यव्यक्त चौथे गणधर भारद्वाज गोत्रके थे। इनके गणमें भी ५०० मुनि थे।

(५) अग्नि-वैशयायन गोत्रके पांचवें गणधर सुधर्माचार्य थे। इनके आधीन भी ५०० मुनि थे।

(६) मण्डिक पुत्र अथवा मण्डित पुत्र वशिष्ट गोत्रके थे; और २५० श्रमणोंको धर्मशिक्षा देते थे।

(७) मौर्यपुत्र काश्यपगोत्री भी २५० मुनियोंके गणधर थे।

(८) अकम्पित—गौतमगोत्री और (९) हरितापन गोत्रके अचलवृत दोनों ही साथ २ तीनसौ श्रमणोंको धर्मज्ञान अर्पण करते थे।

(१०) मैत्रेय और (११) प्रभास कान्डिन्य गोत्रके थे। दोनोंके संयुक्तगणमें ३०० मुनि थे।

इन ग्यारह गणधरोंमेंसे केवल इन्द्रभूति गौतम और सुधर्माचार्य भगवानकी निर्वाण प्राप्तिके पश्चात् जीवित रहे थे, अवशेष गणधर भगवानके जीवनकालमें ही मुक्तिको प्राप्त हुए थे। यह सब केवली थे। उपर्युक्त वर्णनसे विदित होता है कि इन गणधरोंके आधीन ४२०० मुनियोंके अतिरिक्त मुनि और भी थे जिनकी गणना करके हमको १४००० मुनि बतलाए गए हैं।

ईसवी सन् ७८३–७८४में होनेवाले श्री जिनसेनाचार्यजी दिगम्बर दृष्टिसे भगवान महावीरके गणधरोंका वर्णन इसप्रकार करते हैं कि–"भगवानके इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, शुचि-दत्त, सुधर्म, मांडव्य, मौर्यपुत्र, अकंपन, अचल, मेद्ार्य और प्रभास ये ग्यारह गणधर थे। ये समस्त ही सात प्रकारकी ऋद्धियोंसे संपन्न और द्वादशांगके वेत्ता थे ॥ ४०–४३ ॥ तप्त दीप्त आदि तपऋद्धि (१), चर्तुबुद्धि विक्रिया (२), अक्षीणर्द्धि (३) औषधि (४) लब्धि (५) रस और (६) बलऋद्धि (७) ये सात ऋद्धियां हैं ॥४४॥ गौतम आदि पांच गणधरोंके मिलकर सब शिष्य दशहजार छैसौ पचास और प्रत्येकके दो हजार एकसौ तीस२ थे। छठे और सातवें गणधरोंके मिलकर सब शिष्य आठसौ पचास और प्रत्येकको चारसौ पच्चीस २ थे। शेष चार गणधरोंनें प्रत्येकके छैसो पच्चीस पच्चीस और सब मिलकर ढाई हजार थे। एवं सब मिलकर चौदह हजार थे ॥ ४५॥४६॥"

गणोंके अतिरिक्त मुनियोंकी आत्मोन्नतिके लिहाजसे गणना इस प्रकार थी। अर्थात् ९९०० साधारण मुनि; ३०० अंगपूर्व-धारी मुनि; १३०० अवधिज्ञानधारी मुनि; ९०० ऋद्धिविक्रि-यायुक्त; ५०० चार ज्ञानके धारी; ७०० केवलज्ञानी; ९०० अनु-त्तरवादी, सब मिलकर १४००० मुनि थे।

इन्द्रभूतिके अतिरिक्त सुधर्माचार्यने भी भगवानके पीछे धर्मशासनकी प्रभावना चालू रक्खी थी। सुधर्मस्वामीको खर्तर गच्छकी पट्टावलीमें कोल्लाग ग्रामके एक ब्राह्मणका पुत्र होना लिखा है। (See Indian Antiquary, Vol. XI, P. 246.)

इन्द्रभूतिके उपरान्त आप ही मुख्य गणधर हुए थे। आपने धर्मका प्रचार भी खूब किया था। प्रख्यात जम्बूस्वामी अन्तिम केवली आप ही के शिष्य थे। जम्बूस्वामीने मथुराके निकट चौरासीसे मुक्ति लाभ किया था। आपने १२ वर्ष उपरान्ततक धर्मप्रचार किया था। अबतक महावीर स्वामीको मोक्षगए ६२ वर्ष हो चुके थे। इसके १०० वर्ष बाद भद्रबाहु श्रुतकेवली हुए थे। इस प्रकार इस मुनिसंघ द्वारा १६२ वर्ष पर्य्यन्त धर्मका प्रचार खूब प्रभावनाके साथ रहा।

इसके पश्चात् १८३ वर्ष बाद तक दश पूर्वोंके ज्ञानके धारी मुनि धर्मप्रचार करते रहे, जिनके नाम इस प्रकार हैं—(१) विसापाचार्य (२) प्रोष्टलाचार्य (३) क्षत्रयाचार्य (४) जयाचार्य (५) नागसेन (६) सिद्धार्थ (७) धृतसेन (८) विजय (९) बुधल (१०) गंगसेन (११) सुधर्म, और हम देखते हैं कि इस जमानेके चन्द्रगुप्त मौर्य; भिक्षुराज खारवेल आदि प्रसिद्ध सम्राट् जैनधर्मानुयायी थे। इसके पश्चात् २२० वर्ष तक ११ अंगके धारी मुनि विहारकर धर्मका उद्योत करते रहे। वे यह थे अर्थात् (१) नक्षत्राचार्य (२) जयपाल (३) पाण्डु (४) ध्रुवसेन (५) कंसाचार्य। पश्चात् केवल एक अंगके पाठी सुभद्र, यशोभद्र, यशोबाहु और लोहाचार्य रहे। अन्तमें इनका भी अभाव होगया। फिर लोहाचार्यके पश्चात् वितयधर, श्रीदत्त, शिवदत्त और अर्हदत्त ये चार आरातीय मुनि अंग पूर्वज्ञानके कुछ भागके ज्ञाता हुए और फिर पूर्वदेशके पुण्ड्रवर्धनपुरमें श्री अर्हद्वलि मुनि अवतीर्ण हुए, जो अंगपूर्व देशके भी एक देश (भाग) के जाननेवाले थे। इनके पश्चात् माघनन्दि आदि मुनि

हुए । इसी समय ग्रन्थ लिपिबद्ध किए गए थे । अबतक वे स्मृति द्वारा कण्ठस्थ याद रक्खे जाया करते थे । पश्चात्में सर्वसे प्रसर आचार्य कुन्दकुन्दका पता हमको चलता है और उमास्वामि, समन्तभद्राचार्य प्रभृत आचार्य होते रहे थे । वर्तमानमें भी इस मुनिगणके कठिन मार्गका अभ्यास करनेवाले साधारण मुनिगण विद्यमान हैं । इस प्रकार भगवानके संघका यह अंग अब तक जीवित है ।

मुनियोंके पश्चात् संघके दूसरे अंगमें आर्यिकायोंकी गणना थी । यह आर्यिकाऐं भगवानके समयमें छत्तीस हजार थीं । यह सब भारतीय महिलाऐं थीं जिन्हें अपनी आत्माका ज्ञान होगया था और जिसके कारण ही उन्होंने मुनियों जैसे कठिन व्रत, संयम और आत्मसमाधिकी शरण ली थी । वे सांसारिक प्रलोभनों एवं संसर्गोंसे नितान्त विलग रहती थीं । इन आर्यिकायोंकी नायिका चेटकराजाकी लघु पुत्री चन्दना थीं । भगवानके संघके इस अंगका वर्तमानमें अभावसा ही है, यद्यपि श्वेताम्बराम्नायमें अब भी बहुतसी आर्यिकाऐं मिलती हैं किन्तु इन आर्यिकायोंके चारित्र नियम भगवानके समयकी आर्यिकायों जैसे उत्कृष्ट नहीं हैं ।

भगवानके संघके तीसरे अंगमें एक लाख श्रावक थे जिनमें मुख्य सँखस्तक थे । संभवतः यह व्रती श्रावक थे अथवा उदासीन श्रावक थे । इनके अतिरिक्त अन्तिम अङ्गमें तीन लाख श्राविकाऐं थीं जिनमें मुख्य सुलसा और रेवती थीं । इनके अलावा एक बड़ी संख्यामें बहुतसे गृहस्थ और देव भगवानके भक्त थे ।

इस प्रकार भगवान महावीर स्वामीका चतुर्निकायक संघ था जो अभी तक अपने प्रत्यक्षरूपमें जैन जातिके भीतर विद्यमान है। और इस संघके चारित्र नियमकी उचित व्यवस्था भी एक कारण थी जिससे जैनधर्म हिन्दू बौद्धादिकोंसे भारी वेदना सहकर आज भी भारतवर्षमें मौजूद हैं, यद्यपि इसका मुख्य कारण इसके सिद्धान्तोंका वैज्ञानिक सत्य होना ही है।

(२३)

महिलारत्न चन्दना।

" सोचो, नरोंसे नारियां, किस बातमें हैं कम हुई ?
मध्यस्थ वे शास्त्रार्थमें हैं, भारतीके सम हुई ?

*　　*　　*　　*

क्या कर नहीं सकतीं भला यदि शिक्षिता हों नारियाँ ?
रणरङ्ग, राज्य, सुधर्मरक्षा, कर चुकीं सुकुमारियाँ !"

भारतीय—महिला—संसारका पूर्व इतिहास अपनी अपूर्व छटामें एक ही है। जब कभी उस अपूर्वताका एकाध चमकता हुआ रत्न नेत्रोंके सामने आजाता है, तब हमारा हृदय उसी समाजकी वर्तमान दशाका अवलोकनकर द्रवीभूत होजाता है। इस पवित्र समाजकी भगवान महावीरस्वामीके समयमें क्या दशा थी ? यह इसीसे व्यक्त होसक्ता है कि वह कितनी उत्कृष्ट न होगी कि जिसमेंसे ३६००० महिलाएं सांसारिक विषयसुख और अपने

प्रिय आभूषणों एवं गार्हस्थिक बन्धनोंको तोड़कर आत्मसंयममें लीन होगई थीं। उनका ज्ञान, उनका चारित्र कितना बड़ा, चढ़ा न होगा!

श्रीमती महिलारत्न चन्दनादेवी इन्हीं आर्यिकाओंकी नायिका थीं। वे वैशालीके अधिपति चेटककी सर्व लघुपुत्री थीं और सर्व-गुणसम्पन्न, परमसुंदरी थीं। एक दिन वे बागनें वायु सेवनकर रहीं थीं। वहांसे एक विद्याधर विमानमें बैठा निकला। उसने चंदनाकी रूपराशिपर अपने नेत्रोंको उलझा उनपर आसक्त होगया और उनको उठाकर अपने विमानमें बैठाकर ले गया, परन्तु अपनी गृहिणीके भयसे उसने उन्हें मार्गमें ही एक वनमें छोड़ दिया। बेचारी शोकसागरमें व्याकुल हो वहांपर अश्रुधाराएं बहा-रहीं थीं कि इतनेमें एक भील आया और उन्हें कौशाम्बी ले जाकर एक वृषभसेन नामक धनिक वणिकके यहां बेच दिया। धनिक सेठने उन्हें अपने घरमें रखलिया, पर कुछ दिनों उपरान्त आप पूर्ण यौवनावस्थाको प्राप्त होगईं जिससे सेठकी स्त्री सुभद्रा उनसे रूपराशिके कारण ईर्ष्या करने लगी। वह चन्दनाको हरतरहके दुःख देने लगी, खराब भोजन देने लगी, फटे कपड़े पहिननेको देने लगी, कभी २ ताड़नाको भी काममें लाने लगी! पूर्व दुष्कर्मके फलस्वरूप चन्दना यह यातनाएं शान्तिपूर्वक सहन कर रहीं थीं।

संतोषका परिणाम भी मिष्ट होता है। चन्दनाके शुभ कृत्यके पुण्योदयसे एक दिवस भगवान महावीर स्वामी विहार करते हुए कौशाम्बी पहुंचे, वहांपर चन्दनाने पड़गाहकर भगवानको आहारदान दिया था, यह हम पहिले देख आए हैं। इस आहार-

दानके प्रभावसे चन्दनाका यश पुरभरमें फैल गया था। वहांकी रानीने इन्हें आमंत्रित किया था। देखनेपर पहिचाना कि यह तो मेरी लघु भगिनी है, जो बाल्यावस्थामें लुप्त होगई थी। बहिनोंकी प्रसन्नताका ठिकाना न रहा। चन्दनाकी इस बहिनका नाम मृगावती था। चन्दना मृगावतीके पास रहने लगी थी, पर भगवान वीरका पावन उपदेश सुनकर उसे संसारसे पूर्ण वैराग्य होगया, जिसके कि अङ्कुर उसके हृदयमें पहिलेसे विद्यमान थे, और वह आर्यिका होगई। निर्मल चारित्रका अनुसरणकर दुर्धर तप तपने लगीं, आत्मज्ञानकी ज्योतिसे अपने नेत्रोंको भूषित करने लगीं और पवित्र साधु धर्मका पालन करतीं करतीं आप भगवानके आर्यिका संघके नायिका पदपर विभूषित हुई थीं, यह हम पहिले देख आए हैं। अन्तमें आप स्वर्गधामको सिधारीं थीं।

आपके चारित्रसे हमें संयम, नियम, संतोषव्रत आदिमें परम दृढ़ता रखनेका अपूर्व पाठ मिलता है व भारतीय रमणियोंके अपूर्व गुणोंका दिग्दर्शन होता है।

(२४)

वारिषेण मुनि।

"समकित सहित आचार ही, संसारमें इक सार है।
जिनने किया आचरण उनको, नमन सौ सौ बार है॥"

"जीवकी अशुभ परणतिको पाप कहते हैं। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह, ये पांच पाप प्रसिद्ध हैं। इन पांच पापोंका त्याग किए विना आत्मस्वभावमें थिरतारूप निश्चय चारित्र नहीं होसक्ता। इससे पांच पापोंका त्याग निश्चय चारित्रका कारण है और इसीलिए पंच पापोंके त्यागको व्यवहारमें चारित्र कहते हैं।"

जिन जीवोंको सर्वज्ञ आप्तदेव तीर्थङ्कर भगवान कथित धर्ममें विश्वास है अथवा निश्चयसे जिनको अपने आत्माके अस्तित्व और अनन्तगुणोंका विश्वास है वे सम्यक्दृष्टि कहलाते हैं। सम्यक्दृष्टि जीवोंको चारित्र धारण करनेकी बड़ी रुचि रहती है। शुभोदय और वैराग्यकी तीव्रतासे वे किसी रोज पांच पापोंका त्यागकर मुनि होजाते हैं और साधु धर्मके महाव्रतोंका पालन करते हैं। जो जीव पांच पापोंका पूर्ण त्यागकरके महाव्रतोंका पालन नहीं करसक्ते वे उनका थोड़ा २ त्याग करते हैं और वे श्रावक कहलाते हैं।

वारिषेण मुनि पूर्ण सम्यक्दृष्टि थे और उनका चारित्र भी परम निर्मल था। आप जैन जैनधर्मानुयायी मगधाधिपति राजा श्रेणिकके पुत्रोंमेंसे एक थे। कुमार अवस्थासे ही आप संसारसे उदासीन थे। विषयभोगोंकी धधकती आगकी झुलसमें रहते हुए भी उसमें दग्ध नहीं हुए थे। अपने श्रावकके व्रताचरणमें तल्लीन

थे। आपने कुमारावस्थामें ही दैगम्बरीय जिन दीक्षा लेली थी यह निम्न कथासे विदित है। आपका सम्यक्त्व इतना गाढ़ था कि आज जैन समाजके आबालवृद्धकी जिह्वापर आपका नाम है। सम्यक्दर्शन और चारित्रके अङ्गोंका ध्यान करते ही हमें वारिषेण मुनिका भी स्मरण हो आता है।

जिन दीक्षा लेनेके कारणका समागम कुमार वारिषेणको अपने आत्मध्यानमें मग्न होते समय होगया था। एक समय आप राजगृह नगरके बाहर निर्जनस्थानमें सामायिक कर रहे थे। राजगृह नगरमें विद्युत नामक चोर मगधसुन्दरी वेश्यापर आशक्त रहता था। वेश्याने विद्युतसे श्रीदत्त नामक सेठके यहांसे रत्नहार ला देनेको कहा। विद्युत उसी रात्रिको सेठके यहांसे रत्नहार चुरा लाया, मार्गमें उस हारको लाते कोतवालने देख लिया। कोतवालने उसका पीछा किया। इस कारण वह भागकर उसी निर्जन स्थानमें पहुंच गया, जहांपर कुमार वारिषेण आत्मध्यानमें लीन थे। उसने उन्हींके निकट हार पटक दिया और आप वहीं छिप गया। रत्नहार वारिषेणके निकट होनेके कारण कोतवालको उन्हीं पर संदेह होगया। और राजा श्रेणिकने कोतवाल आदिके विश्वासपर उनका मस्तक काट डालनेकी आज्ञा दे दी, परन्तु जिस समय चान्डाल उनका मस्तक धड़से जुदा कर रहा था, तो सहसा पुण्यप्रभावसे तलवार पुष्पहार हो गई। राजा श्रेणिकको यह समाचार सुनकर अपनी मूर्खता पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। उन्होंने कुमारसे क्षमा मांगी और घरपर चलनेको कहा परन्तु उन्होंने संसारका ऐसा चरित्र देखकर जिन दीक्षा ले ली।

यही मुनि जहां तहां विचरते और लोगोंको उपदेश देते हुए पलाशकूट नगरमें पहुँचे। वहां राजा श्रेणिकके मंत्रका पुत्र पुष्पडाल रहता था। वह सच्चा सम्यग्दृष्टी था। उसने वारिषेण मुनिको आहार दिया था। पश्चात् वारिषेण मुनिने पुष्पडालको ज्ञान वैराग्यका उपदेश दिया था, जिसके कारण वह भी उनके निकट मुनि होगया। मुनि तो वह होगया किन्तु उसका मन सदैव अपनी स्त्रीमें लगा रहता था। एक दिन वे दोनों महावीर स्वामीके समवशरणमें पहुंचे। वहां उसने एक गंधर्वको एक श्लोक पढ़ते सुना, जिसका भाव था कि हे भगवान्! आपने पृथ्वीरूप स्त्रीको तीस वर्षतक अच्छी तरह भोगके छोड़ दिया है। इसलिए वह बेचारी आपके विछोहसे दुःखी होकर, नदीरूप आंसुओंसे आपके नामको रो रही है। इसके सुनते ही उसे अपनी स्त्रीकी याद आ गई और वह अपने घरकी ओर जाने लगा। परन्तु अंतरयामी मुनि वारिषेणने उसे जाने न दिया—उसे धर्ममें स्थिर रखना उचित समझा इसलिए वे उसे राजगृह नगरमें राजप्रासादमें ले गए। और वहां अपनी स्त्रियोंको उसे दिखाकर कहा कि "हे मुनि! जिस धनके लिए तुम मुनिपद छोड़कर जाना चाहते हो, सो यह अतिशय रूपवान स्त्रियां गृहण करो और भोगकर देख लो कि इनमें सुख है या मुनिमार्गमें सुख है।" पुष्पडाल यह वचन सुन लज्जित हुआ और गुरुसे प्रायश्चित्त लेकर मुनिधर्ममें पुनः दृढ़तामें मनको लगाकर मोक्षको प्राप्त हुआ था। वारिषेण मुनि इस प्रकार मुनिको धर्ममें स्थिर रखनेके कारण विशेष यशके भागी हुए, और अन्तमें वे भी मोक्षको प्राप्त होगए थे।

इससे हमें ज्ञात होता है कि भगवान महावीरके संघमें राजषी सामिग्रीके भोक्ता लोग भी सम्मिलित थे और वे केवल श्रावकके ही व्रत नहीं पालते थे, बल्कि मुनिधर्मका पालनकर देशमें धर्मका प्रचार करते थे। अनेक प्रख्यात राजाओंने भी भगवानके समवशरणमें दीक्षा ली थी उनमेंसे कुछका वर्णन निम्न प्रकार है-

(२५)

क्षत्रचूड़ामणि-जीवंधर।

"करणवर्ग सुतृप्तिविधायिनः
शुभगयौवनभूषितविग्रहः।
परविभूतिधुराः सदुपायिनः
कति कति प्रथिता न नराधिपाः॥"

"असकृद्भुक्तं राज्यं युवति शतान्यपि तथैव भुक्तानि।
वर सम्पदोपि चात्मा न खलु विशुद्धः स्मृतो निजानन्दः॥
येन स्मृतेन झटति प्रकटविनष्टा भवन्ति रागाद्याः।
प्रभवति मुक्तिरधीना चैतन्यामृतपयोधिमग्नानाम्॥
तद्भ्रातर इह लोके समुपगतनृजन्मसार मणिराशौ।
भवितव्य न दरि : प्रच्युतसारैः प्रमादवश गत्वात्॥"

जैनाचार्य उपर्युक्त श्लोकोंद्वारा व्यक्त करते हैं कि "इन्द्रियोंको संतृप्त करनेवाले, सुन्दर यौवनभूषित शरीरवाले, उत्कृष्ट विभूतिके धारण करनेवाले और बड़ी २ भेटोंके ग्रहण करनेवाले कितने २ राजा ससारमें प्रसिद्ध नहीं हुए ?" "अनेकवार राज्यभोग किया,

अनेकवार सैकड़ों स्त्रियोंका भोग किया और श्रेष्ठ सम्पत्तिका भी खूब भोग किया, परन्तु खेद है कि विशुद्ध निजानन्द स्वरूप आत्माका स्मरण कभी नहीं किया जिसके कि स्मरणसे चैतन्यामृत समुद्रमें मग्न रहनेवाले पुरुषोंके रागादिक शीघ्र ही नष्ट होजाते हैं, और मुक्तिलक्ष्मी उनके आधीन होजाती है। इसलिए हे भाई! प्रमादके वशीभूत होकर मनुष्य जन्मरूपी सारभूत मणियोंकी राशि-वाले संसारमें सारभागको छोड़कर दरिद्री नहीं बने रहना चाहिये।"

—(वृन्दावनविलास पृ० १४५)

क्षत्रचूड़ामणि जीवंधर ही धन्य थे कि उन्होंने अपनी आत्माका कल्याण किया था। जीवंधरस्वामी क्षत्रियोंके चूड़ामणि अर्थात् वीर–शिरोमणि थे। इनके चरित्रको चित्रण करनेवाले ग्रन्थ जैनसमाजमें अनेक हैं। इनकी कथा बड़ी रोचक और चित्ताकर्षक है। क्या ही उत्तम हो कि इनके विषयमें ऐतिहासिक प्रकाश अपना विकाश प्रकटकरे! जिसका प्रकट होना सुगम प्रतीत होता है क्योंकि जीवंधरस्वामीका ऐतिहासिक व्यक्ति होना विशेष युक्तिसंगत है।

भारतवर्षके सोनेकी खानियोंकी शोभाको धारण करनेवाले हेमांगद नामक प्रदेशकी राजधानी राजपुरी थी। सत्यंधर नामका राजा राज्य करता था। राजा अपनी शीलवती विजया नामक रानीपर इतना आसक्त हो रहता था कि उसने अपने राजपाटका सारा भार एक काष्ठांगार नामक राज–कर्मचारीके सुपुर्द कर दिया था। कुछ दिनो पश्चात् विजया रानीके गर्भ रहा था। उस समय रानीको एक स्वप्न हुआ था जिसके फलको विचारकर राजाने निश्चय लिया कि मैं मारा जाऊंगा इसलिए उसने अपनी व अपने

शकी रक्षाके विचारसे एक मयूरके आकारका यंत्र बनाया जो एक
ल्के घुमानेसे आकाशमें उड़ सक्ता था। और उसमें बैठा२ कर
नी विजयाको आकाशमें उड़ानेका अभ्यास कराने लगा, कि
जेससे समय आनेपर रानी अपनेको बचाकर वंशको नष्ट होनेसे
चासकेगी।

इधर काष्टांगारको दुष्टता सूझी। उसे पराधीनतामें रहना असह्य होगया, इसलिए आखिर उसने सत्यंधरको मारकर स्वयं राजा बन जानेका निश्चय कर लिया। तदनुसार उसने एक सेना राजाके मारनेको भेज दी। राजाने अपना अंत निकट आया समझ रानीको तो मयूरयंत्रमें बैठाल उड़ादिया, और आप सेनासे लड़ते२ मृत्युको प्राप्त हुआ। यद्यपि अन्त समय उसका मन आत्मध्यानमें लीन था। वह मयूर यंत्र बाहर समशानमें आकर गिरा, वहीं राजपुरीका प्रसिद्ध सेठ गन्धोत्कट अपने पुत्रकी दग्धक्रिया करने आया था। विजयारानीने वहीं पुत्र प्रसव किया और उसे वहीं छोड़ दिया। सेठको वह पुत्र दृष्टि पड़ गया। उसने उसको लेजाकर अपनी स्त्रीको दे दिया। स्त्रीने उसका पुत्रवत् पालन पोषण किया और उसका नाम जीवंधर रक्खा। रानीविजया दण्डकारण्यमें तपस्वियोंके एक आश्रममें चली गई।

जीवंधरकुमार इन्हीं सेठके यहां रहने लगे और क्रमकर आप युवावस्थाको प्राप्त हुए। आर्यनन्दी नामके प्रसिद्ध आचार्य जीवंधरकुमारके गुरु हुए। और किसी विद्यालयमें शिक्षा पाकर वे बड़े भारी विद्वान् होगये, उनका बल भी विशाल था यह उनके भीलोंसे युद्ध करके नन्दगोप ग्वालेकी गऊओंको लादेनेसे विदित

है। पश्चात् आपका विवाह गान्धार देशकी राजकन्या गन्धर्वदत्तासे हुवा था। गन्धर्वदत्ताको आपने वीणा बजानेमें परास्त किया था क्योंकि ज्योतिषियोंने पहिले ही कह दिया था कि गन्धर्वदत्ताका पति वह होगा जो इसे वीणावादनमें परास्त करेगा।

पश्चात् एक समय जीवंधरने एक कुत्तेको मरते समय बड़ी सान्त्वना देकर णमोकार मंत्र सुनाया, जिससे मरकर वह सुदर्शन नामक यक्ष हुआ। इस कुत्तेको ब्राह्मणोंने हविद्रव्य दूषित करनेके कारण मारा था।

राजपुरीमें सुरमंजरी और गुणमाला दो कन्यायें थीं। 'गुणमाला जिस समय स्नान करके घर जारही थी, उस समय एक उन्मत्त हाथी छूटा हुआ था। वह कन्यापर झपटा ही था कि, कुमारने जाकर उसे मारकर अलगकर दिया। इस समय इन दोनोंकी चार आंखें होगईं। गुणमाला कुमारपर मोहित होगई और अन्तमें उसके मातापिताओंने बड़ी प्रसन्नतासे उसे कुमारके साथ ब्याह दिया।' और सुरमंजरीसे भी कुछ काल पश्चात् कुमारने विवाह कर लिया था। कुमारने गुणमालाको बचाते समय काष्ठांगारके हाथीको कड़ा मारा था। इसलिये क्रोधित होकर उसने इन्हें पकड़ बुलवाया और मार डालनेका हुक्म दे दिया। कुछ समझें लोगोंने समझा कि कुमार मार डाले गए, परन्तु यथार्थमें उन्हें सुदर्शन यक्ष उठा ले गया और चन्द्रोदय पर्वतपर उन्हें पहुंचा दिया। वहांसे चलकर कुमारने एक स्थानमें हाथियोंको दावानलसे जलते हुए बचाया और अनेक तीर्थोंकी वन्दना की। आगे चंद्राभा नगरीके राजा धनपतिकी पुत्री पद्माको जिसे कि

सांपने काट खाया था, जीवदान दिया। इससे प्रसन्न होकर राजाने वह कन्या और अपना आधा राज्यकुमारको दे दिया।

कुमार पद्माके साथ कुछ दिन सुख भोगकर वहांसे चले गए। और तापसोंको सच्चे धर्मका स्वरूप समझाते हुए दक्षिण देशके सहस्रकूट चैत्यालयमें पहुंचे। उस चैत्यालयके किवाड़ खोलकर दर्शन किए। यह देखकर एक आदमी इन्हें प्रार्थना करके सुभद्र नामक सेठके यहां क्षेमपुरी लिवा ले गया। सेठने अपनी क्षेमश्री कन्या इनको प्रदान की, क्योंकि ज्योतिषियोंने इनके विषयमें पहिलेसे कहा था।

एक दिन जीवंधरस्वामी किसीसे विना कुछ कहे सुने क्षेमपुरीसे चलदिए। उनके पास जो बहुतसे वस्त्र आभूषण थे उन्हें उन्होंने किसी पात्रको दे देना चाहा, परन्तु जब कोई पात्र नहीं मिला, तब रास्तेमें एक शूद्र पुरुषको पाकर उन्होंने उसे सुखका, संसारका और सागार, अनागार धर्मका स्वरूप समझाया, जिसे सुनकर वह पुरुष प्रतिबुद्ध होगया और उसने उसी समय गृहस्थधर्म स्वीकार कर लिया। इस तरह जब वह श्रावक होकर पात्र होगया, तब कुमारने उसे अपने बहुमूल्य वस्त्राभूषण उतारकर दानकर दिए।

वहांसे चलकर आप हेमाभा नगरीमें पहुंचे। वहांके राजा दृढ़मित्रने इन्हें अपनी कनकमाला नामक सुन्दर कन्या व्याह दी, क्योंकि कुमारने उसके पुत्रोंको धनुष--विद्यामें निपुण बना दिया था। यहां पर इनको गन्धोत्कट सेठके पुत्र नन्दाढ्य और पद्मास्य मित्रोंसे भेट हुई। उनके कहने पर आप अपनी माता विजयासे मिलकर राजपुरीमें पहुंचे, वहां सागरदत्त सेठने अपनी कन्या विमला इनको व्याह दी। उसने कहा कि "आज मेरी दूकानके

नहीं बिकनेवाले भी रत्न बिक गए हैं, और निमित्त–ज्ञानियोंने कहा था कि जिस पुरुषके आनेसे यह रत्न विक्रय होगा, वही विमलाका पति होगा, अतएव स्वीकार कीजिए।"

तदनन्तर जीवंधरस्वामी गन्धोत्कट सेठसे सम्मति लेकर अपने मामा गोविन्दराजके यहां धरणीतिलकानगरी*को गए, और उनसे परामर्श करके उनके साथ काष्टांगारके निमंत्रण मिलने पर ससेना राजपुरीमें आए। फिर गोविन्दराजने वहां अपनी पुत्री लक्ष्मणाका स्वयंवर रचा और प्रगट किया कि चंद्रक यंत्रके तीन वराहोंको जो छेदेगा, उसे अपनी कन्या व्याह दूंगा। सर्व राजागण इसमें विफल हुए। जीवंधरने बातकी बातमें उन वराहोंको छेद दिया। इसी समय गोविंदराजने सब राजाओंपर प्रकट कर दिया कि यह सत्यंधर महाराजका पुत्र जीवंधर है। अब काष्टांगार बहुत घबराया और युद्धपर उतारू हुआ, परन्तु आखिर वह पापी जीवंधरके हाथसे मारा गया।

इसके पश्चात् गोविन्दराजने जीवंधर कुमारका बड़े भारी उत्साहसे राज्याभिषेक किया और जीवंधर महाराज अपना कुल परम्परागत राज्य करने लगे। फिर अपनी पद्मा आदि सब रानियोंको बुलाकर उसने उनके व्याकुल हृदयको शांत किया, और मामा गोविन्दराजकी पुत्री लक्ष्मणासे पाणिग्रहण किया।

* इस नगरीको क्षत्रचूड़ामणि काव्यमें जिसके अनुसार यह कथा लिखी गई है, 'विदेहदेशकी धरणीतिलका नामक राजधानी' और गोविन्दराजको विदेहदेशका राजा लिखा है, परन्तु दूसरी ओर विदेहकी राजधानी मिथिला कही गई है। इससे सम्भवता यही व्यक्त होता है कि विदेह दो विभागोंमें विभक्त था।

'महाराज जीवंधर सब प्रकारके सुखोंसे संपन्न हो राज्यकर रहे थे। उसी समय एक दिन उनकी माता विजयाको वैराग्य हो गया और उन्होंने संसारको अनित्य समझकर पद्मा नामकी आर्यिकाके पास दीक्षा लेली।'

जीवंधरस्वामी वसन्तऋतुमें अपनी आठों स्त्रियोंके साथ जलक्रीड़ा कर रहे थे कि सहसा आपको वैराग्य हो गया। आपने उसी समय बारह भावनाओंका चिन्तवन किया और अपने पुत्र सत्यंधरको राज्य देकर, महावीर भगवानके समवशरणमें जा पहुंचे और वहां दिगम्बरी दीक्षा लेकर वे महान तप करनें लगे। अंतमें जीवंधरस्वामी महामुनि आठों कर्मोंका नाशकरके अविनाशी मोक्ष सुखके स्वामी हुए।

इस प्रकार जीवंधरस्वामीकी कथा है। इसके वर्णनसे हमारे पहिलेके कथन 'कि महावीर स्वामीके समयमें समाजके जातीयबंधन आजकलकी तरह कठोर नहीं थे, और उस समयके विवाह क्षेत्रमें भी बहुत स्वतंत्रता थी' की पुष्टि होती है। और हम देखतें हैं कि धार्मिक उदारता इतनी बढ़ी हुई थी कि एक शूद्र भी शुद्ध किया जाकर गृहस्थधर्मका पालन करनेवाला श्रावक बनाया जा सक्ता था। साथमें बहुविवाहका प्रचार होना भी प्रतीत होता है और निमित्तज्ञानके प्रचार एवं ज्योतिषशास्त्रमें दृढ़ विश्वास होना भी प्रगट होता है। इनका प्रचार महावीरस्वामीके पहिलेसे जन-साधारणमें प्रचलित था। यह बात आजीवक सम्प्रदायके संस्थापक मक्खाली गोशालके वर्णनसे पाठकोंको और भी अच्छी तरह प्रकट होजायगी।

(२६)

जैन सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार और चेटक ।

'विपुलाचल पर जिनवर आये, सुनत श्रवण नृप श्रेणिक धाये ।
समवसरन सुरधनद बनाये, जासु रुचिरता त्रिभुवन छाये ॥
द्वादश सभा जहाँ दरसाये, तामधि आप जिनेश सुहाये ।
जाति विरोध त्याग पशु आये, जिनपद सेवत प्रीति बढ़ाये ॥

* * * *

गौतम गणधर अरथ सुनाये, धर्म श्रवणकरि पाप नसाये ।
श्रेणिक सोलह भावन भाये, प्रकृति तीर्थंकर बंध कराये ॥"

— जैन कवि देवीदास ।

प्राचीन भारतवर्षके आधुनिक इतिहासमें जैन सम्राट् श्रेणिक बिम्बसारसे ही ऐतिहासिक रीत्या क्रमवार भारतीय सत्तासम्पन्न शासकोंका वर्णन प्रारम्भ होता है । हम पहिले लिख चुके हैं कि सम्राट् श्रेणिक महावीर भगवानके शिष्य थे, इसलिए उनके समकालीन होनेके कारण आपका समय जो ईसासे पूर्व ५४२ से ४९१ का माना गया है वह ठीक बैठता है । इनके राजत्वकालमें इन्होंने राजगृह नामक अपनी राजधानीको फिरसे निर्माण किया था और अपने वंशपरम्परागत प्राप्त राज्यकी वृद्धि भी की थी । (See Oxford History of India by V. Smith P. 56.)

सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार अपने प्रारंभिक जीवनमें बल्कि युवावस्थाके बादतक बौद्ध धर्मावलंबी रहे थे यह जैनियोंके शास्त्र

स्वयं व्यक्त करते हैं परन्तु अवशेष जीवनमें आपने जैन धर्म अपनी रानी चेलनाके प्रयत्नसे ग्रहण किया था। यही कारण प्रतीत होता है कि बौद्ध शास्त्रोंमें इनके अन्तिम जीवनकालका कोई निश्चित वर्णन नहीं है जिसका न होना ठीक भी है, क्योंकि जब महाराज श्रेणिक जैन होगए थे तब भला प्रतिपक्षी धर्मकी विजयका हाल बौद्ध लोग कैसे लिखते और यही कारण है कि बौद्धोंने उनके पुत्र कुणिकको, जो अपने पिताकी भांति अपने प्रारंभिक जीवनमें जैनधर्मका श्रद्धालु था, 'सर्व दुष्कृत्योंका समर्थक और पोषक' लिखा है। इससे हमारा श्रेणिक महाराजको अन्तमें जैनधर्मानुयायी लिखना उपयुक्त प्रतीत होता है। सन् १९२१ की अप्रेल मासकी 'सरस्वती' के पृष्ठ २३३ से २३७में प्राचीन जैन सम्राट् खारवेलका वर्णन खंडगिरी उदयगिरि पर्वतकी हाथी गुफावाले शिलालेखके आधारपर दिया हुआ है, उससे भी विदित होता है कि श्री श्रेणिक महाराज अर्थात् बिम्बसार और अजातशत्रु अर्थात् कुणिक प्रसिद्ध जैन राजा श्री महावीर स्वामीके समयमें हो गए हैं। अस्तु, जैन शास्त्रोंका श्रेणिक और कुणिकको जैन धर्मानुयायी लिखना यथार्थ है।

जैनशास्त्रोंमें श्रेणिकके विषयमें निम्न प्रकार वर्णन है और इनकी मान्यता जैनसमाजमें इतनी है कि वे मानते हैं कि— यदि महाराज श्रेणिक महावीर भगवानके समवशरणमें नहीं होते और भगवानसे ६०००० प्रश्न न करते तो आज जैनधर्मका नाम भी न सुनाई पड़ता! परन्तु अभाग्यवश इन इतने प्रश्नोंमेंसे आज हमें अति अल्पसंख्यक प्रश्नोंका उत्तर मिलता है! अब

सब कालकी चाल और विधर्मियोंकी कृपासे अंधकारके गर्त्तमें पहुंच चुके हैं।

जैनशास्त्रोंमें महाराज श्रेणिकके पिताका नाम उपश्रेणिक लिखा है। वे राजगृहमें रहकर मगधपर राज्य करते थे। यह बड़े धर्मवीर और शूरवीर थे। और इन्होंने अपने इर्दगिर्दके राज्यों पर विजय प्राप्त कर ली थी। चन्द्रपुरका राजा सोमशर्मा अपने पराक्रमके अगाड़ी सबको तुच्छ गिनता था परन्तु महाराज उप-श्रेणिकने इसे परास्त किया था। यद्यपि अन्तमें उसका राज्य उसीको दे दिया था। इसी शूरवीरताके कारण संभव है कि हिन्दूओंके विष्णुपुराणमें शिशुनाग वंशके चौथे राजाका नाम क्षत्रौजस लिखा है, जब कि श्रेणिक उसी वंशके पांचवे राजा हैं। इस प्रकार क्षत्रौजस जैनशास्त्रोंके उप-श्रेणिक ही प्रतीत होते हैं।

महाराज उप-श्रेणिककी रानी इन्द्राणीके गर्भसे महाराज श्रेणिकका जन्म हुआ था। इन "कुमार श्रेणिकमें सर्वोत्तम गुण थे, रुप शुभ था और अतिशय निर्मल था। वह अत्यंत भाग्यवान और लक्ष्मीवान थे।" क्रमशः कुमार श्रेणिक बढ़ने लगे और वे अपने बाल्यकालसे ही बुद्धिकी चतुराईके कारण सज्जनोंको मान्य होगये। "इन्होंने विना परिश्रमके शीघ्र ही शास्त्ररूपी समुद्रको पार कर लिया था और क्षत्रिय धर्मकी प्रधानताके कारण अनेक प्रकारकी शस्त्रविद्याएं भी सीख लीं थीं। इस प्रकार यौवनावस्थाको प्राप्त अत्यन्त बलवान श्रेणिक अपनी सुन्दरता आदि संपदाओंसे संपन्न थे।"

एक समय महाराज उपश्रेणिक एक नए घोड़ेकी परीक्षाकर रहे थे कि वह घोड़ा उनको एक अज्ञात स्थानको ले भागा और

उन्हें एक गहनवनमें जा पटका। वहां पर भीलोंके अधिपति यम-दंडने इनको अपने यहां रक्खा। यह क्षत्रिय राजा राज्यसे भ्रष्ट हो यहां रहता था। महाराज उपश्रेणिक इसकी सुन्दर कन्या तिलकवतीके रुपलावण्य पर मुग्ध हो उससे उसकी याचना करने लगे। उसने इस शर्तपर वह कन्या इनको देदी कि उसका ही पुत्र राज्याधिकारी होगा। तदनुसार तिलकवतीके पुत्र चलाती नामक हुआ था और उसीको राज्याधिकार मिला था।

कुमार श्रेणिकको कुछ दोष लगाकर देशनिकालेका कठोर दण्ड मिला था और मंत्री आदिके कहनेसे उन्होंने पितृ आज्ञाका उल्लंघन नहीं किया था। ऐसा ही उल्लेख सर रमेशचंद्रदत्तने अपने 'भारतवर्षकी सभ्यताके इतिहास' में पृष्ट २१ पर किया है कि "....मगधके एक राजकुमार........को....ईसाके पहिले पांचवीं शताब्दिमें उसके पिताने........देशसे निकाल दिया था।" संभव है कि यही राजकुमार कुमार श्रेणिक हों। जो हो, राजगृहसे निकलकर वे नंदिग्राम पहुंचे, परन्तु वहांके ब्राह्मणोंने इनको आश्रय नहीं दिया। इस लिए वह अगाड़ी चलकर बौद्ध सन्यासियोंके आश्रममें गए, और वहां उनका आतिथ्य स्वीकार किया। बौद्धाचार्यके मीठे बचनोंके प्रभावसे कुमार श्रेणिकने बौद्धधर्म स्वीकार किया। और बौद्धधर्मके पक्के अनुयायी हो गए। वे कुछ दिन पर्यंत वहीं पर रहे।

पश्चात् बौद्धाश्रमसे इन्द्रदत्त सेठीके साथ२ अन्यत्रको चल दिए। और इन्द्रदत्त सेठिके नगर वेणपद्ममें पहुंच गए। श्रेष्ठि इन्द्रदत्तके एक युवती कन्या नंदश्री नामकी सर्वगुण–सम्पन्न थी,

वह महाराज श्रेणिकके गुणोंकी श्रेष्ठताके कारण उनपर आसक्त होगई । और सेठि इन्द्रदत्तने उसका पाणिग्रहण कुमार श्रेणिकके साथ कर दिया । कुमार आनंदसे रहने लगे ।

इधर महाराज उपश्रेणिकका देहांत होगया और चलाती प्रजापर बडा अन्याय करने लगा, जिसके कारण प्रजाने दुःखी हो कुमार श्रेणिकको बुला भेजा । कुमारका आगमन सुन चलाती भयभीत हो गया । श्रेणिक राज्याधिकारी हुए और शत्रुओंसे रहित होकर नीतिपूर्वक प्रजाका पालन करने लगे । "उनके राज्य करते समय न तो राज्यमें किसी प्रकारकी अनीति थी और न किसी प्रकारका भय ही था किन्तु प्रजा अच्छी तरह सुखानुभव करती थी । पहिले महाराज बौद्धधर्मके सच्चे भक्त होचुके थे, इसलिए वे उससमय भी बुद्धदेवका बराबर ध्यान करते रहते थे ।"

उपरान्त जम्बूद्वीपकी दक्षिण दिशामें अवस्थित केरलानगरीके अधिपति राजा मृगाङ्कने अपनी यौवनावस्थापन्न विलासवती पुत्री महाराज श्रेणिकके भेंट भेजी, क्योंकि उनको मालूम हो गया था कि इसका वर श्रेणिक होगा । इनका ही उल्लेख संभवतः बौद्धोंके तिब्बतीय दुल्वमें वासवीके नामसे है । और उनके गर्भसे कुणिक अजातशत्रुका होना लिखा है जो स्वयं उनके पाली ग्रन्थोंके वर्णनमें ढूंढ़नेसे नहीं मिलता है । (See The Kshatriy Clans in Buddhist India P. 125.) बात यह है कि यहांपर बौद्धोंने अजातशत्रु (कुणिक) को यथार्थमें महाराज चेटककी पुत्री चेलनासे उत्पन्न न बताकर वासवीसे, जो कि उपर्युक्त विलासवती ही प्रतीत होती है, इसीसे बताया है कि कुणिक प्रारंभमें जैनधर्मका पक्षपाती

था। और इसीलिए उक्त बौद्ध ग्रन्थमें वासवीको एक साधारण लिच्छावी नायककी पुत्री लिखा है। जब कि लिच्छावी जातिकी कन्या चेटकराजाकी पुत्री और राजा श्रेणिककी रानी चेलना ही है, जिनका वर्णन अगाड़ी है। बौद्ध ग्रन्थोंमें महाराज श्रेणिककी एक अन्य रानी कौशलके नृपतिकी भगिनी बताई गई हैं, इनका उल्लेख जैनशास्त्रोंमें नहीं है। संभवतः यही रानी खेमा होंगी, जो बौद्ध होगई थीं। (See Gotama Buddha by K. J. Saunders P. 53)

महाराज श्रेणिकके राज्य प्राप्त करनेके पहिले नन्दश्रीके गर्भसे पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ था, जिसका नाम उन्होंने अभयकुमार रक्खा था और नन्दश्रीके पास छोड़ आए थे। इनका वर्णन हम अगाड़ी करेंगे।

राज्यसत्तासम्पन्न हो महाराज श्रेणिकको नंदिग्रामके विप्रोंकी याद आई और उन्होंने उनको दण्ड देना चाहा। अस्तु, अपराध लगानेके लिए उन्होंने उनको दुष्कर कार्य करनेको बताए, परन्तु राजकुमार अभयकी सहायतासे वे उन्हें पूर्ण कर सकें। जिससे विस्मित हो महाराज श्रेणिककी अभयकुमारसे भेट हुई और उन्होंने नन्दश्रीको बुला भेजा। और उसे महादेवी बनाया। अभयकुमार युवराज हुए।

अथानन्तर विदेह देशकी वैशाली नगरीके अधिपति चेटकके सात कन्यायें थीं। इनमें प्रथम प्रियकारिणीका विवाह कुंडलपुरके स्वामी महाराज सिद्धार्थके साथ हुआ था, यह हम पहिले देख आए हैं। द्वितीय कन्या वत्सदेशमें कौशांबीपुरीके स्वामी महाराज नाथ अथवा सारको विवाही गई थी। तथा तृतीय कन्या जो कि वसु-

प्रभा थी, उसका विवाह राजा चेटकने दशार्ण (दशासन) देशमें हेरकच्छपुर (कमैठपुर)के स्वामी सूर्यवंशीय राजा दशरथसे किया था। एवं चतुर्थ कन्या प्रभावतीका विवाह कच्छदेशके रोरूकपुरके स्वामी महातुरके साथ हो गया था। उत्तरपुराणमें कच्छदेशके स्वामी उद्दायन लिखे हैं और श्रेणिकचरित्रमें महातुर वहांके राजा बतलाए गए हैं। इधर डॉ० डी० आर० भाण्डारकर दो मुख्य ग्रंथ स्वप्नवासवदत्त और प्रतिज्ञा यौगन्धरायणसे प्रगट करते हैं कि "शतनीकके पुत्र और सहश्रेणिकके पौत्र उद्दायन भारतवंशमें हुए प्रतीत होते हैं। और वह 'विदेहपुत्र' अपनी माताके कारण कहलाते थे, जो कि विदेहके राजाकी पुत्री थीं।" और हमें ज्ञात है कि शतनीक कौशाम्बीके नृपति थे; परन्तु श्रेणिकचरित्र और उत्तरपुराणमें वहांके राजाका नाम क्रमसे नाथ और सार लिखा है। इसलिए यह सम्भव हो सका है कि कौशाम्बीके नृपतिका तीसरा नाम अथवा यथार्थ नाम शतनीक था। जिनके कि पुत्र उद्दायन विदेहपुत्र कहलाते थे। और यदि डा० भाण्डारकरके सह-श्रेणिक एवं श्रेणिकचरित्रके उपश्रेणिक एक व्यक्ति हैं, तो उद्दायन सम्राट् श्रेणिकके पिता उपश्रेणिकके पौत्र हो सके हैं, क्योंकि नृप श्रेणिककी रानी चेलना इनकी माताकी बहिन थीं। इस तरह श्रेणिकचरित्रमें रोरूकपुरके स्वामी महातुर लिखना ठीक प्रतीत होता है। और उद्दायन कौशाम्बीके राजकुमार थे ऐसा ज्ञात होता है।

अब कौशाम्बी और कच्छदेशका सम्बन्ध प्रगट करना अवशेष रहजाता है। हमारे विचारसे इसमें किसी प्रकारका भ्रम होना संभव है, क्योंकि राजा चेटककी राजधानी विशाल (वैशाली)को श्रेणिक-

चरित्रमें कच्छदेशमें होना लिखा है; जब कि विशाला अथवा वैशाली विदेहमें थी, जैसा हम देख चुके हैं। अतः यह संभव होना प्रगट होता है कि जैनाचार्योंने उस देशको कच्छदेशके नामसे लिखा था जिसमें कि विशाला, कौशाम्बी और रोरुकपुर अवस्थित थे। फलतः नृप उद्दायन कौशाम्बीके नृपति शतनीकके पुत्र रानी मृगावतीसे थे, जो राजा चेटकके धेवते थे और राजा उपश्रेणिकके नाती थे। शायद यही नृप उद्दायन अपने सम्यक्तके कारण जैनसमाजमें विख्यात हैं। और महातुर कच्छदेशके रोरुकपुरके स्वामी प्रभावतीके पति थे।

महाराज चेटककी अवशेष तीन कन्याऐं अभी कुमारी ही थीं। इनमेंसे एककी याचना गांधारदेशके महापुरके राजा महिपालके पुत्र सात्यकीने की थी। संभवतः बौद्धोंके जातक कथानकके गांधारदेशके राजा बोधिसत्त ही यह सात्यकी हैं। बोधि शब्द सत्तके साथ बौद्ध लेखकोंने व्यवहृत किया होगा। उस कथानकमें इन्हीं बोधिसत्तको पंचव्रत (=अणुव्रत=Moral Precepts) धारण करते लिखा है। और सन्यास लेना भी लिखा है। (See The Kshatriya Clans in Buddhist India P. 152) इससे सात्यकी और बोधिसत्तका एक व्यक्ति होना प्रतीत होता है। अस्तु, इन सात्यकीकी याचनाको राजा चेटकने स्वीकार नहीं किया, जिसके कारण वह दीक्षा ले गया।

पश्चात् कवि खुशालचन्दकृत पूर्वोल्लिखित उत्तरपुराणकी छन्दोबद्ध हिन्दी आवृत्तिमें यह उल्लेख है कि राजा चेटक मगधपर आक्रमणकर राजगृहके निकट ठहरा हुआ था। वहांपर इनको इनकी पुत्रियोंका चित्रपट किसी चित्रकारने दिया था। इस लड़ाईका

उल्लेख डॉ० भाण्डारकर भी करते हैं और कहते हैं कि राजा श्रेणिकका पाणिग्रहण वैदेही (चेलना) के साथ इस युद्धके आपसी निवटेरेके उपरान्त हुआ था। और उत्तरपुराणके वर्णनसे भी श्रेणिकचरित्रकी निम्नघटनाके सदृश ही है, यही प्रगट होता है कि इस युद्धके पश्चात् राजा श्रेणिकका विवाह चेलनाके साथ हुआ था। राजाचेटकका एक अन्य युद्ध अंगदेशके राजा कुणिकके साथ भी हुवा था। इसी संबंधमें श्रेणिकचरित्रमें वर्णन है कि चित्रकारने वही पट ले जाकर महाराज श्रेणिकको दिया और इसका सर्व वृतान्त वताया। और यह भी जतलाया कि महाराज चेटक अपनी पुत्रियोंको सिवाय जैनीके और किसीको नहीं देते हैं। श्रेणिक उन पर आसक्त हो गए थे। कुमार अभय वैशालीसे उन कन्याओंको छलसे लेने गए और वहां पर अपनेको जैनी प्रगट करते हुए उन पुत्रियोंको राजा श्रेणिककी ओर विशेष उपायोंसे आकर्षित करने लगे। और अन्तमें वे सब उनके साथ चलनेको राजी होगईं। परन्तु दो तो पिताके भयसे लौट गईं। केवल चेलना रह गईं। सो भी अकेली जानेको तैयार न थी। परन्तु अभयकुमार उसे लिवा लाए। और राजगृहमें आकर उसका पाणिगृहण श्रेणिकसे कराया, परन्तु जब उसे यह ज्ञात हुआ कि श्रेणिक बौद्ध धर्मानुयायी है तो उसे अति दुःख हुआ। और वह मलिनचित्त रहने लगी। श्रेणिकने इसका कारण पूछा तब उसने कह दिया कि यह राजसी भोगोपभोगकी सामग्री किस कामकी, जब प्राणोंको हितवर्धक प्यारे सत्यधर्मका पालन ही न होसके। इस पर श्रेणिकने उनको अपने गुरुओंकी विनय आदि करनेकी आज्ञा दे दी थी।

बौद्धग्रन्थोंमें चेलनाका उल्लेख है। श्वेताम्बर सम्प्रदायके प्रख्यात् ग्रन्थ निर्यावली सूत्रमें भी चेलनाको वैशालीके राजाओंमें एक राजा चेटककी पुत्री लिखा है, जिनकी कि वहिन क्षत्राणी रानी त्रिशला महावीर स्वामीकी माता थी। बुद्धके एक तिब्बतीय जीवनचरित्रमें चेलनाका नाम श्रीभद्रा और कहीं २ भद्रा लिखा है। संभवतः राजा श्रेणिककी पहिली रानी नन्दश्रीकी अपेक्षा ऐसा लिखा होगा। वैसे साधारण रीत्या बौद्ध ग्रन्थोंमें चेलनाका उल्लेख वैदेहीके नामसे आया है और उसके पुत्र कुणिक अजातशत्रुका नाम विदेह पुत्तोंके नामसे व्यवहृत हुआ है। बौद्धग्रंथ दिव्यावदानके एक अवदानमें अजातशत्रुको वैदेही पुत्र करके लिखा है। और उसी ग्रन्थमें अन्यत्र वर्णन है कि "राजगृहमें राजा विम्वसार राज्य करता है। वैदेही उसकी महादेवी (पटरानी) है और अजातशत्रु उसका पुत्र एवं युवराज है।" (See The Kshatriya Clans in Buddhist India P. 125.) इससे प्रकट है कि अजातशत्रुका जन्म वैदेही (चेलना) राजा चेटककी पुत्रीके गर्भसे हुआ था। जैन धर्म और बौद्धधर्मकी आपसी प्रतिस्पर्द्धाके कारण हम देख चुके हैं कि उन्होंने कहीं २ पर इनके विषयमें भ्रमात्मक बात लिख दी है जो कि स्वयं उनके पाली ग्रन्थोंमें नहीं है।

हम कह चुके हैं कि राजा श्रेणिकने अपनी चेलना रानीको अपने निर्ग्रन्थ गुरुओंकी विनय पुजा और जैनधर्मका पालन करनेकी आज्ञा दे दी थी। इसके अगाड़ी श्रेणिकचरित्रमें वर्णन है कि इस बातको सुनकर बौद्धगुरु राजा श्रेणिकके पास आए थे, और रानी

चेलनाको बौद्धधर्म स्वीकार करानेके प्रयत्नमें लगे थे । उन्होंने अपनेको सर्वज्ञ बतलाया था। चेलनाने उनकी परीक्षा ली थी जिसमें वह अनुत्तीर्ण हुए थे,। और इस परीक्षाके कृत्यसे उनकी अवज्ञा भी हुई थी, जिसके कारण जैन गुरुओंके प्रति श्रेणिक महाराजके हृदयमें द्वेष धधकने लगा था।

महाराज श्रेणिक एक दिवस आखेटको गए थे कि उन्होंने मार्गमें एक दिगम्बर मुनिको ध्यानारूढ़ देखा। देखते ही अपने गुरुकी अवज्ञाका बदला चुकानेके लिए महाराज श्रेणिकने उनके गलेमें एक मरा हुआ साँप डाल दिया और वापिस राजगृहको लौटे। उधर दिगम्बर मुनिने अपनेपर उपसर्ग आया जान अपनी ध्यानमुद्रा और भी चढ़ादी और नित्य अनित्यादि बारह भावनाओंका स्मरण करने लगे।

बौद्ध गुरुओंको यह सब हाल राजा श्रेणिकने कह सुनाया जिससे वे अतिप्रसन्न हुए परन्तु यह सुनकर रानी चेलनाको बहुत दुःख हुआ। और उसके नेत्रोंसे अखिल अश्रुधारा वह निकली। राजा श्रेणिकसे अपने प्रियाका रोदन नहीं देखा गया। वह उसे साँत्वना देने लगे और कहने लगे कि "प्रिये! तू इस बातके लिये जरा भी शोक न कर, वह मुनि गलेसे सर्प फेंक कबका वहांसे चल बसा होगा।" महाराजके ये वचन सुन रानीने कहा कि "नाथ! आपका यह कथन भ्रममात्र है। मेरा विश्वास है, यदि वे मेरे सच्चे गुरु हैं तो कदापि उन्होंने अपने गलेसे सर्प न निकाला होगा।" इस पर महाराज श्रेणिकने रानी समेत उसी स्थानको प्रस्थान किया जहां पर वह मुनिको छोड़ गया था। वहां पहुँचकर

उसके विस्मयका पारावार न रहा, उसने देखा कि वह अविचल ध्यानी मुनि अपने ध्यानसे ज़रा सी चल नहीं हुए हैं, और वह मृत सर्प उनके गलेमें पड़ा हुआ है। यद्यपि उसमें अब कीड़ियां लग गई हैं। मुनिराज भला चल कैसे होसक्ते थे, क्योंकि नियम है कि जबतक उपसर्ग रहे तबतक मुनिको ध्यानारूढ़ रह बारहभावनाओंका चिन्तवन करना चाहिये।

राजा और रानीने समान भावसे मुनिको नमस्कार किया, क्योंकि राजाके हृदयपर इस दृश्यका बड़ा प्रभाव पड़ा था। और उनके गलेसे सर्प अलहृदा कर दिया और मुनिराजके शरीरके तापको दूर करनेके लिए चन्दनसे उनका अभिषेक किया। मुनिराजने समयानुसार मौनवृत त्यागकर राजारानीको समान भावसे धर्मवृद्धि दी जिससे श्रेणिकका हृदय परम शांतिका अनुभव करने लगा और वे अवाक् रह गए। उनको मुनिमहाराजके शत्रु मित्रसे समान वर्तावके कारण उनपर बड़ी भक्ति होगई। मुनिराजने धर्मवृद्धि दे उनसे कहा कि:—

"विनीत मगधेश! संसारमें यदि जीवोंका परम मित्र है तो धर्म ही है। इस धर्मकी कृपासे जीवोंको अनेक प्रकारके ऐश्वर्य मिलते हैं, उत्तम कुलमें जन्म मिलता है और संसारका नाश भी धर्मकी ही कृपासे होता है इसलिए उत्तम पुरुषोंको चाहिए कि वे सदा उत्तम धर्मकी आराधना करें।"

राजा श्रेणिकका हृदय धर्मरससे भीज रहा था। उन्होंने उन परमज्ञानी मुनिके निकट अपने पूर्वभव सुने। मुनिसे आपको मालूम हो गया कि पूर्वभवमें वे सूर्यपुरके स्वामी सुमित्र थे। इनके

मंत्रीका पुत्र सुषेण मुनि होगया था। सुषेणको प्रीतिवश आहार देनेके लिए इन्होंने अपने पुरवासियोंको उन्हें आहार देनेकी मनाई कर दी थी, परन्तु देवयोगसे इधर आप भी अन्य कार्योंमें व्यस्त होगये थे जिससे वह मुनि निराहार कई दफे लौट गये थे। अंतिम वार जब वह लौटे जारहे थे तब उनके कानमें लोगोंके वचन पड़े कि "राजा न स्वयं आहार देता है और न हमें देने देता है।" यह सुनते ही मुनि ईर्यापथसे विचलित होगये और क्रोधके मारे उनका सारा शरीर धधकने लगा और पत्थरसे ठुकराकर एकदम गिरगए जिससे तत्काल ही उनके प्राणपखेरू उड़ गए। खोटे निदानसे मुनि सुषेण व्यंतर हुए थे। सुमित्र भी अन्तमें तापस होगया था और मरकर देव हुआ था। यही देव स्वर्गसे आकर राजा श्रेणिक हुआ और यह व्यंतर रानी चेलनाके गर्भसे कुणिक नामक पुत्र हुआ; जो पूर्वभवके वैरके कारण सदैव श्रेणिकका शत्रु रहा था।

मुनिराजके पाससे धर्मश्रवण करनेसे राजा श्रेणिकको जैनधर्मसे कुछ प्रीति होगई थी, परन्तु बौद्धाचार्योंके समझानेपर उन्हें पुनः जैनगुरुओंमें अश्रद्धान होगया था। उनके मनमें फिरसे जैनधर्म एवं जैनमुनियोंकी परीक्षाका विचार आकर सामने ठुकराने लगा था। तदनुसार महाराजने जैनमुनियोंकी परीक्षा ली थी, जिससे महाराजके हृदयमें पुनः जैनधर्मके प्रति सद्भाव होगए थे।

अन्ततः जब भगवान महावीरस्वामीका समवशरण राजगृहके निकट विपुलाचल पर्वतपर आया था तब महाराज श्रेणिक भगवानके समवशरणमें गए थे, जैसा कि उपर्युक्त कवितासे जो इस प्रकरणके प्रारंभमें दी हुई है, विदित होता है। समवशरणमें महाराजने

भगवानकी बन्दना पूजा की थी और जैनधर्मका स्वरूप समझा था जिससे आपको जैनधर्ममें पूर्ण श्रद्धा होगई थी और आपको क्षायिक सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई थी।

एक दिवस राजा श्रेणिकने गौतमगणधरसे अपनी बुद्धि व्रतोंकी ओर नहीं झुकनेका कारण पुछा जिसके उत्तरमें गणधरने महाराजको वतला दिया कि मुनिराजके गलेमें सांप डालनेसे वह नर्क आयुका बंध बांध चुके हैं, इस कारण नियमसे उनकी बुद्धि व्रतोंकी ओर नहीं झुकती। यद्यपि उन्होंने राजा श्रेणिकको भव्य और उत्तम बताया और यह भी जतला दिया कि क्षायिक सम्यक्त्वके प्रभावसे राजा श्रेणिक आगामी उत्सर्पिणी कालमें इसी भरतक्षेत्रमें पद्मनाभ नामके प्रथम तीर्थङ्कर होंगे, क्योंकि उन्होंने अंतमें सोलहभावना भानेसे तीर्थङ्कर पदका बंध बांध लिया था।

अन्तमें महाराज श्रेणिक परमोच्च श्रावक होगये थे और वे धर्मकी प्रभावनामें निशिदिन तल्लीन रहते थे। हमें मालूम है कि श्री सम्मेदशिखर पर तीर्थङ्कर भगवानके मोक्ष स्थानोंपर आप ही ने टोंकें (Shrines) बनवाई थीं, जैसे कि मि० टी०, डी० बनर्जी, सब–जज, पटना हाईकोर्टने अपने शिखरजीके मुकद्दमेके फैसलेमें लिखा है:—

"The Hindu Traveller's account published in Asiatic Society's Journal for January 1824 reveals the fact, how Raja Sarenik of Magadha, contemporary of Mahaveer Swami, had discovered the places of the Tirthancars and established Charan there."

अर्थात् जनवरी १८२४ के एसियाटिक सोसाइटीके पत्रमें जो हिन्दू यात्रीने हाल प्रगट किया है उससे प्रगट है कि श्री महावीर स्वामीके समकालीन मगधदेशके राजा श्रेणिकने तीर्थंकरोंके मोक्ष—स्थानोंकी खोज की और वहाँ चरण स्थापित किए।

महाराज श्रेणिक आनन्दसे जिन भगवानके धर्मका पालन करते हुए दिन व्यतीत कर रहे थे कि आपके कुणिक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसके गर्भ और जन्मसे ही ऐसे लक्षण हुए थे, जिससे प्रगट होगया कि वह अवश्य ही महाराज श्रेणिकका शत्रु है। कुणिकका जन्म महाराज श्रेणिकके जैन मुनियोंकी परीक्षा लेने बाद और भगवानके समवशरणमें आनेके पहिले होचुका था। रानी चेलनाने अपने पतिका इसे शत्रु जान इसे अन्यत्र भेज दिया था, परन्तु राजाने अपने पुत्र—मोहसे उसे मंगवा लिया था। राजकुमार कुणिक दिन प्रतिदिन बढ़ते२ यौवनावस्थाको प्राप्त हो गए थें। महारानी चेलनासे कुणिकके अतिरिक्त वारिषेण, हल्ल, विद्‌ल, जितशत्रु और गजकुमार यह पुत्र और हुए थे।

युवराज कुमार अभय भी पिताके साथ भगवान महावीरके समवशरणमें गए थे और धर्मोपदेश सुना था, इसलिए उन्हें संसारसे वैराग्य होगया था और वे मुनि होगए थे। उनके पश्चात् कुणिकको युवराज पद मिला था।

अनन्तर "किसी समय धर्मसेवनार्थ, चिंताविनाशार्थ और सुखपूर्वक स्थितिके लिए पूर्वजन्मके मोहसे महाराजने समस्त भूपोंको इकट्ठा किया और उनकी सम्मतिपूर्वक बडे समारोहके साथ अपना विशाल राज्य युवराज कुणिकको देदिया। अब पूर्व पुण्यके

उदयसे युवराज कुणिक महाराज कहे जाने लगे। वे नीतिपूर्वक प्रजाका पालन करने लगे और समस्त पृथ्वी उन्होंने चौरादि भय-विवर्जित करदी।"

"कदाचित् महाराज कुणिक सानंद राज्यकर रहे थे कि अकस्मात उन्हें पूर्वभवके वैरका स्मरण हो आया। महाराज श्रेणिकको अपना वैरी समझ पापी, हिंसक, महाअभिमानी, दुष्ट कुणिकने मुनिकण्ठमें निक्षिप्त सर्पजन्यपापके उदयसे शीघ्र ही उन्हें काठके पींजरेमें बंद कर दिया। महाराज श्रेणिकके साथ कुणिकका ऐसा वर्ताव देखकर रानी चेलनाने उसे बहुत रोका किन्तु उस दुष्टने एक न मानी, उल्टा वह मूर्ख गाली और मर्मभेदी दुर्वाक्य कहने लगा। खानेके लिए महाराजको वह रूखासूखा कोदोंका अन्न देने लगा और प्रतिदिन भोजन देते समय अनेक कुवचन भी कहने लगा। महाराज श्रेणिक चुपचाप उस पिंजरेमें पड़े रहते और कर्मके वास्तविक स्वरूपको जानते हुए पापके फलपर विचार करते रहते थे। यह याद रखनेकी वात है कि यह घटना भगवान महावीरके निर्वाण प्राप्तिके पश्चात्की प्रतीत होती है। कुणिकके ईसासे पूर्व ४९१ में राज्याधिकारीके होनेके कुछ वर्ष उपरान्त ही यह घटना घटित हुई थी ऐसा प्रतीत होता है। इस समय कुणिकका हृदय बुद्धदेवकी ओर आकर्षित होरहा था ऐसा हमें वौद्ध ग्रन्थसे मालूम होता है और वहुत संभव है कि यही निमित्तकारण श्रेणिकको कष्ट देनेको कुणिकको मिल गया था। क्योंकि वौद्धग्रन्थ अमितायुरध्यान सूत्रमें लिखा है कि "अजात शत्रुने देवदत्तके कहनेपर अपने पिता विम्वसारको पकड़वा लिया

और उन्हें सात दिवालोंसे घिरे हुए कारावासमें डाल दिया। बिम्वसारकी परम–हितैषी महादेवी वैदेही (चेलना) ने स्नानादि क्रियाकर अपने हारमें अंगूरोंका रस छिपाकर उनके दर्शनकर रस देकर इसके प्राण वचाए थे। अजातशत्रुने अपने पिता वावत दर्याफ्त किया और पहिरेवाले सिपाहीसे ज्ञात किया कि वैदेहीने क्या किया था इससे वह क्रुद्ध होगया और अपनी माताको मारना चाहा परन्तु इसपर मंत्रियोंने इसे रोका और उसने ऐसा करनेका भाव छोड़ दिया। वैदेहीको भी एकान्त स्थानमें रक्खा गया।" यह कथन श्रेणिकचरित्रके उपर्युक्त कथनके सदृश है, परन्तु इससे हमें कुणिकको अपने पिताको कष्ट देनेके निमित्तकारणका पता चलजाता है जैसे हमने ऊपर व्यक्त किया है। जिस देवदत्तका उल्लेख है वह पूर्ण बौद्ध था और म० बुद्धके स्थानपर स्वयं संघका नायक होना चाहता था। इस समय कुणिक इसका मित्र था, जिसकी रुचि बौद्धधर्मके प्रति पहिलेसे होगई थी। जैसे कि मि० के० जे० सॉन्डर्स अपनी गौतम बुद्ध नामक पुस्तकके पृष्ठ ७०–७१पर लिखते हैं:—"Though they now met for the first time, it Seems clear that some at least of the Sangha had dealings with Ajatsattu whilst he was still Rajkumar."

अर्थात् यद्यपि इस समय वे (गौतमबुद्ध और अजातशत्रु) पहिले ही पहिल मिले, परन्तु यह प्रगट है कि कमसे कम संघके कुछ व्यक्तियोंका अजातसत्तुसे सम्बन्ध उनकी राजकुमारावस्थासे था। इससे प्रगट है कि बौद्धोंके उकसाने और पूर्व–वैरके कारण

अजातशत्रु कुणिकने अपने पिता श्रेणिक बिम्बसारको जो कि जैन धर्मानुयायी थे, कष्ट दिया था और इसीसे बौद्ध ग्रन्थ उनके अंतिम परिणामका कुछ निश्चित उल्लेख नहीं करते ((See Saunder's Gotama Buddha P. 71.) क्योंकि अन्तमें कुणिकने जैनधर्मके परमश्रद्धालु अपने पिताको बन्धन--मुक्त करना चाहा था, जैसे कि श्रेणिकचरित्रके निम्न वर्णनसे प्रगट है, परन्तु यहांपर यह याद रखना उत्तम है कि बौद्धग्रन्थोंमें जो कुछ वर्णन है वह सदैव साफ साफ नहीं है क्योंकि जैनियोंसे उनकी पूर्ण स्पर्धा थी और उनमें अपने उन अनुयायियोंका कहीं भी उल्लेख नहीं है जो जैनी होगए थे। जब कि जैनशास्त्रोंमें साफतौरसे लिख दिया गया है कि जब२ उसके अनुयायीने बौद्धादि परमतको ग्रहण किया था। इस हेतु उनका वर्णन विशेष उपयुक्त होसक्ता है। अस्तु।

श्रेणिक चरित्रमें लिखा है कि रानी चेलनाने कुणिकको बहुत समझाया और पिताके मोहको दर्शाया कि राजा श्रेणिकने कुमार कुणिकके लिए कितने कष्ट सहे थे, इससे कुणिकको दया आगई थी और वह अपने इस दुष्कृत्यका पश्चात्ताप करता हुआ हुआ राजा श्रेणिकको मुक्त करने जारहा था। राजा श्रेणिकने जो उसे आते देखा तो वे घबड़ागए और सोचने लगे कि आज न जाने यह क्या अनर्थ करेगा। इससे डरकर उन्होंने अपना सिर दीवालसे धरमारा, जिससे उनके प्राणपखेरू उसी समय उड़कर अपने दुष्पापोंका परिणाम प्रथम नरकमें भोगनेको चले गए! वहांसे आप आकर अगाड़ी तीर्थंकर होंगे।

राजा कुणिक और रानी चेलना इस हृदयविदारक घटनासे बड़े दुःखी हुए और विलाप करने लगे। पश्चात् राजा कुणिकने ब्राह्मणोंको दान दिया, इससे विदित होता है कि उसका विश्वास ब्राह्मण धर्ममें भी था।

रानी चेलनाको संसार असार दीखने लगा इसलिए उसने चंदना आर्यिकाके निकट दीक्षा लेली और तप तपकर देवगतिको प्राप्त हुई। कुणिकके विषयमें अगाडी कुछ वर्णन नहीं है और पहिले वर्णनसे हमें ज्ञात हो चुका है कि वह मिथ्यात्वी हो गया था अर्थात् उसने बौद्धधर्म स्वीकार कर लिया था।

इस प्रकार राजा श्रेणिक विम्बसारका सम्बन्ध भगवान महावीरसे प्रकट है जो पहिले बौद्ध थे। पश्चात् रानी चेलनाके प्रभावसे भगवान महावीरके परमभक्त और आम शिष्य होगए थे। साथमें यह भी प्रकट है कि राजा चेटकके यहां जैनधर्मका गाढ़ श्रद्धान था।

(२७)

अभयकुमार व अन्य राजपुत्र।

'ते धन्यास्ते महात्मानस्तेषां लोके स्थितं यशः।
यैर्निबद्धानि काव्यानि ये वा काव्येषु कीर्तिताः॥'

महाराज श्रेणिकके प्रथम पुत्र अभयकुमार थे। इनकी माता रानी नन्दश्री इन्द्रदत्त श्रेष्ठिकी पुत्री थीं और इनका जन्म नन्सालमें हुआ था, यह हम पूर्व प्रकरणमें लिख चुके हैं। जिस समय कुमार अभय अपनी माताके गर्भमें थे उस समय माताको सात दिनतक अभयदान देनेकी इच्छा उत्पन्न हुई; जो शुभ की सूचक थी परन्तु इसकी पूर्ति सहज न समझ वे उदास रहने लगीं थीं। जिसपर श्रेणिकने उस नगरके राजा वसुपालको प्रसन्न करके नन्दश्रीकी इच्छाकी पूर्ति की थी। इसी कारण इनका जन्म होनेपर कुमारका नाम अभय प्रसिद्ध हुआ था।

कुमार अभयका उल्लेख बौद्ध ग्रन्थोंमें भी है। उनमें कुमार अभयको महाराज श्रेणिक बिम्बसारका पुत्र एक लिच्छावी स्त्रीके गर्भसे हुआ लिखा है। बौद्धोंके तिब्बतीय दुल्व नामक ग्रंथमें इसका इसप्रकार वर्णन है "वैशालीमें एक लिच्छावी महानामन नामक था। इनके बगीचेके आम्रकुञ्जमें एक कदली वृक्षसे सुन्दर कन्या उत्पन्न हुई; जिसके सम्पूर्ण अङ्ग सुडौल थे। उसको इसने आम्रपाली कहकर प्रसिद्ध किया। जब वह युवावस्थाको प्राप्त होगई तो वैशालीके नियमानुसार कि सुन्दर स्त्रीकी शादी न की जावे, बल्कि जनताके लिए उसको रख छोड़ा जावे, वह वेश्या (Courtezan),

होगई। गोपालके द्वारा मगधेश बिम्बसारने इसके विषयमें सुना और वे उसके निकट वैशालीमें आए, यद्यपि उस समय वे वैशालीसे युद्ध कररहे थे और सात दिनतक उसके यहां रहे। आम्रपालीको इनसे गर्भ रहगया और एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसको उसने अपने पिताके पास भेज दिया। यह बालक राजाके निकट निर्भयरूपसे पहुंचा और उनकी छातीपर चढ़ गया, जिससे उनने कहा कि इस बालकको भय नामनिशानको नहीं मालूम होता। सो वह अभयके नामसे विख्यात हुआ।"

उक्त कथा मि० विमलचरण लॉ० एम० ए० बी० एल० की पुस्तक The Kshatriya clans in Buddhist India P. P. 127-28 में दी हुई है। और इस पर मि० लॉका कथन है कि "यह कथा जो अभय अथवा जैन शास्त्रानुसार अभयकुमारको वैशालीकी वेश्या आम्रपालीका पुत्र व्यक्त करती है, पाली ग्रन्थों (बौद्ध) के खिलाफ है।" यथार्थमें जैनियोंसे द्वेषके कारण बौद्धोंका इस प्रकार लिखना ठीक ही है। उन्होंने इनकी माताकी वास्तविकताका चित्र चित्रण किया है। कुमार अभय महावीरस्वामीके परमश्रद्धालु शिष्य थे और जैनधर्मके पक्के अनुयायी थे यह बात स्वयं बौद्धग्रंथके निम्न वर्णनसे प्रगट है:—

"जब आनंद (बुद्धके मुख्य शिष्य) वैशालीमें थे, तब अभय नामक लिच्छावी और एक अन्य पण्डित कुमार नामक लिच्छावी आनन्दके पास आए। अभयने आनन्दसे कहा कि "निग्रन्थ नातपुत्त (भगवान महावीर) सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं। वह ज्ञानके प्रकाशको जानते हैं (अर्थात् केवलज्ञानी हैं) उन्होंने जाना है कि

ध्यानद्वारा पूर्वकर्मोंको नष्ट किया जा सक्ता है। कर्मोंके नष्ट होनेसे दुःखका होना बन्द होजाता हैं। दुःख (Suffering)के बन्द हो जानेसे हमारी विषयवासना नष्ट होजाती है और विषयवासनाके क्षय हो जानेसे संसारपर अगाड़ी दुःख नहीं होगा। इस वर्तमान जीवनमें दुःखसे निर्वृत्ति शुद्धता द्वारा है।" (Anguttara Nikaya, Vol. 1. (P. T. S.) P. P. 220-221)*

अस्तु, कुमार अभय राजा श्रेणिकके पुत्र थे। वे असाधारण विद्वान थे। उनकी विद्यापटुता और न्यायदर्शिताका अनुपम वर्णन जैन शास्त्र श्रेणिकचरित्रमें खूब दिया हुआ है। उन्होंने युवराज अवस्थामें उत्तम नीति और बुद्धिमत्तासे काम लिया था।

अंतमें हम देख चुके हैं कि कुमार अभय भी श्रेणिक महाराजके साथ २ महावीरस्वामीके समवशरणमें गए थे। वहांपर इन्होंने भगवानका दिव्य उपदेश और अपने पूर्व भवार्णव सुने थे। इस कारण इनको संसारसे अरुचिसी होगई थी। अस्तु, कुछ काल पश्चात् संसारकी वास्तविक स्थितिको जानते हुए, वे राजसभामें आए। 'उन्होंने भक्तिपूर्वक श्रेणिक महाराजको नमस्कार किया और वे समस्त सभ्योंके सामने सर्वज्ञभाषित अनेक भेद प्रभेदयुक्त यथार्थ तत्वोंका उपदेश करने लगे। तत्वोंका व्याख्यान करते २ जब सब लोगोंकी दृष्टि तत्वोंकी ओर झुक गई तब अवसर पाकर अपने पितासे मुनि हो जानेकी आज्ञा

* See Kshatriya Clans in Buddhist India P. P. 102-103.

मांगी। महाराज श्रेणिक मोहके मारे विह्वल होगए, परन्तु अन्तमें उन्होंने पुत्रको मुनि होनेकी आज्ञा प्रदान कर दी।

कुमार अभय महावीरस्वामीके समवशरणमें गणधर गौतमके निकट मुनि हो गए थे। उन्होंने दुर्धर तपश्चरण करके केवलज्ञान प्राप्त कर लिया था। अंतमें कुछ दिनों विहारकर अचिंत्य अव्याबाध मोक्ष-सुख पाया था।

हम देख चुके हैं कि भगवान महावीरके समयमें एक ओर मगध, कौशल, वत्स, काशी और अवन्तीमें राजतंत्र थे, व दूसरी ओर शाक्य, कालाप, कोलीय, मोरीय, मल्ल, लिच्छवी, विदेह इनमें लोकतंत्र शासन था। राजतंत्रोंमें मगधमें हम जैन धर्मके प्रचारका वर्णन कर चुके हैं। वत्सदेशकी कौशाम्बी नगरीके नृपति भी जैनधर्मानुयायी थे, यह भी हम पहिले लिख चुके हैं। और यह भी जान चुके हैं कि वे महावीरस्वामीके निकट संबन्धी थे। कौशल और काशीमें भी जैन धर्मकी गति थी, यह कल्पसूत्रके कथनसे व्यक्त है। जिसमें कहा है कि महावीर भगवानके निर्वाणगमनके हर्षोपलक्षमें कौशल और काशीके १८ राजाओंने और ९ मल्लक व ९ लिच्छावियोंने दीपमालिका उत्सव मनाया था। कलिंगदेशके यादववंशी नृपति जितशत्रु भगवान महावीरके फूफा थे; और वहां भी जैनधर्मका प्रचार था।

लोकतंत्र राज्योंमें हम विदेह और लिच्छावियोंमें जैनधर्मके उत्कृष्ट प्रचारका दृश्य देख चुके हैं। अवशेषमें शाक्योंके यहां भी बुद्धके प्रारंभिक समयमें जैनधर्मका प्रचार था, ऐसा प्रगट होता है। जैनशास्त्रोंमें कथन है कि म० बुद्धने पार्श्वनाथ भगवा-

नके तीर्थकालके पिहिताश्रवनामक दिगम्बर मुनिसे दीक्षा ली थी। जैनमुनि होना स्वयं बुद्धने भी स्वीकार किया है, क्योंकि वह एक जगह कहता है कि "मैं बालों और दाढ़ीको उखाड़नेवाला भी था, और शिर एवं मुखके बाल नोचनेकी परीषह भी सहन करचुका हूं।" (See Saunders' Gotama Buddha P. 15.) यहांपर संकेत जैनमुनिकी केशलुंचन क्रिया की ओर है। इसके अतिरिक्त Jainism : The early Faith of Asoka नामक पुस्तकमें वर्णन है कि "तिव्वतभाषाके बौद्ध ग्रन्थ ललितविस्तारमें लिखा है कि जब गौतमबुद्ध शिशु था तब अपने सिरमें ऐसे चिन्हवाले लक्षण पहिनता था—श्रीवत्स, स्वस्तिका, नंद्यावर्त्त, और वर्द्धमान।" इन चिन्होंमें पहिले तीन तो सीतलनाथ, सुपार्श्वनाथ तथा अरह-नाथ तीर्थङ्करके चिन्ह हैं तथा चौथा श्री महावीरस्वामीका नाम है। अस्तु, इससे भी प्रगट होता है कि शाक्य घरानेमें जैनधर्मका प्रचार था और इसकी पुष्टि बौद्ध ग्रन्थ महावग्गके इस कथनसे होती है, कि बुद्धने अपने पहिलेके २४ बौद्धोंको देखा था।

मल्ल राजतंत्रमें भी जैनधर्मके माननेवाले बहुत थे। ९ मल्ल राजा महावीरस्वामीके परमभक्त थे। इन्हींमेंके राजा हस्तिपालके राज्यमें पावानगरीसे भगवान महावीरने मुक्ति—लाभ किया था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि समस्त उत्तरीय भारतमें भगवान महावीरके जीवनकालमें ही जैन धर्मका प्रचार होगया था। अब हम भगवानके समकालीन म० बुद्ध और मक्खाली गोशालका भी सम्बन्ध भगवान महावीरस्वामीसे प्रगट करेंगे।

(२८)

भगवान महावीर और म० बुद्ध।

'सिरि पासणाहतित्थे सरयूतीरे पलासणयरत्थो।
पिहियासवस्स सिस्सो महासुदो बुड्ढकित्तिमुणी ॥ ६ ॥
तिमिपूरणासणेहिं अहिगयपवज्जाओ परिब्भट्ठो।
रत्तंवरं धरित्ता पवट्टियं तेण एयंतं ॥ ७ ॥
मंसस्स णत्थि जीवो जहा फले दहिय दुद्ध-सक्करए।
तम्हा तं वंछित्ता तं भक्खंतो ण पाविट्ठो ॥ ८ ॥
मज्जं ण वज्जणिज्जं दवदव्वं जहजलं तहा एदं।
इदिलोए घोसित्ता पवट्टियं सव्व सावज्जं ॥ ९ ॥
अण्णो करेदि कम्मं अण्णो तं भुंजदीदि सिद्धंतं।
परि कप्पिऊण णूणं वसिकिच्चा णिरयमुववण्णो ॥१०॥'

दर्शनसार।

जैनाचार्य श्री देवसेन उपर्युक्त श्लोकोंद्वारा विक्रम संवत् ९०९में व्यक्तकर गए हैं कि "श्री पार्श्वनाथ भगवानके तीर्थमें सरयूनदीके तटवर्ती पलाश नामक नगरमें पिहिताश्रव साधुका शिष्य बुद्धकीर्ति मुनि हुआ, जो महाश्रुत या बड़ा भारी शास्त्रज्ञ था। मुर्दा मछलियोंके आहार करनेसे वह ग्रहण की हुई दीक्षासे भ्रष्ट होगया और रक्ताम्बर (लाल वस्त्र) धारण करके उसने एकान्त मतकी प्रवृत्ति की। फल, दही, दूध, शक्कर आदिके समान मांसमें भी जीव नहीं है, अतएव उसकी इच्छा करने और भक्षण कर-नेमें कोई पाप नहीं है। जिस प्रकार जल एक द्रव द्रव्य अर्थात्

तरल या वहनेवाला पदार्थ है, उसी प्रकार शराब है, वह त्याज्य नहीं है। इस प्रकारकी घोषणा करके उसने संसारमें संपूर्ण पापकर्मकी परिपाटी चलाई। एक पाप करता है और दूसरा उसका फल भोगता है, इसतरहके सिद्धान्तकी कल्पना करके और उससे लोगोंको वशमें करके या अपने अनुयायी बनाकर वह मरा" इन वाक्योंमें बौद्धके क्षणिकवादकी ओर इशारा किया गया है। जब संसारकी सभी वस्तुऐं क्षणस्थायी हैं, तब जीव भी क्षणस्थाई ठहरेगा और ऐसी अवस्थामें एक मनुष्यके शरीरमें रहनेवाला जीव जो पाप करेगा उसका फल वही जीव नहीं, किन्तु उसके स्थान पर आनेवाला दूसरा जीव भोगेगा।

(जैनहितैषी भाग ११ अंक ५-६-७ पृ० २५१-२५२)

इस प्रकार हमारे पूर्वप्रकरणमें कथित कथन—कि बुद्धदेव अपने प्रारंभिक जीवनमें जैनधर्मानुयायी रहे थे, का स्पष्टीकरण होता है, जिसको स्वयं बुद्धदेवने भी स्वीकार किया है जैसे पहिले प्रगट किया जा चुका है, परन्तु उधर माथुर संघके प्रसिद्ध आचार्य अमितगति लिखते हैं:—

'रुष्टः श्री वीरनाथस्य तपस्वा मौडिलायनः।
शिष्यः श्री पार्श्वनाथस्य विदधे बुद्धदर्शनम्॥ ६॥
शुद्धोदनसुतं बुद्धं परमात्मानमब्रवीत्।'

अर्थात् पार्श्वनाथकी शिष्य परम्परामें मौडिलायन (मौद्गिलायन) नामका तपस्वी था। उसने महावीर भगवानसे रुष्ट होकर बुद्धदर्शनको चलाया और शुद्धोदनके पुत्र बुद्धको परमात्मा कहा। इस प्रकार देवसेनाचार्य और आचार्य अमितगतिकी बतलाई हुई

बातोंमें विरोध आता है, परन्तु एक तरहसे दोनोंकी संगति बैठ जाती है क्योंकि मि० के० जे० सॉन्डरसकी Gotama Buddha नामक पुस्तक (पत्र ४०)के निम्न वाक्य प्रगट करते हैं कि मौद्गलायन बौद्धसंघका नेता था और उसका गुरु संजय था।

"......Gotam himself promoted Sariputta and Moggallāna to Positions of Leadership...They were wandering ascetics, disciples of Sanjaya."

इसके अतिरिक्त महावग्ग आदि बौद्धग्रन्थोंसे भी इसी बातकी पुष्टि होती है कि मौद्गलायन बौद्धसंघका नेता और प्रचारक था। इस दृष्टिसे मौद्गलायनको बौद्धदर्शनका प्रवर्तक कहना अपयुक्त नहीं ठहरता है। मौद्गलायन पहिले जैन मुनि था यह भी इस प्रकार प्रकट है। अशककवि कृत महावीरपुराणमें एक चारणऋद्धिधारी मुनि संजयका उल्लेख है और मौद्गलायनके गुरुका नाम भी यहां संजय बतलाया गया है। अस्तु, यह दोनों संजय एक ही व्यक्ति थे ऐसा प्रतीत होता है अतएव अब उक्त दोनों आचार्योंका सम्मिलित अभिप्राय यह निकला कि पार्श्वनाथके धर्मतीर्थमें पिहिताश्रव नामक जैन साधुके शिष्य बुद्धदेव हुए और बुद्धदेवका शिष्य मौद्गिलायन हुआ, जो स्वयं भी पहिले जैन था। इस प्रकार हम बौद्धमतकी उत्पत्ति जैनधर्मसे देखते हैं जैसे कि मि० कोलब्रुक आदि प्राच्यविद्या महार्णवोंने भी प्रकट की है। अस्तु, जैन धर्मके विपरीत मतके स्थापन करनेवाले म० बुद्धके विषयमें विचार करनेसे हमें ज्ञात होता है कि वे शाक्य प्रजातंत्रके राजकुमार थे। स्वतंत्र स्वाधीन विचार उनके हृदयमें कूट२ कर भरे हुए थे।

सांसारिक बन्धन उनको असह्य थे, इसलिए वह साधु होगए। हम यह नहीं कहसक्ते कि उनने प्रारंभमें किस साधु सम्प्रदायके व्रत ग्रहण किए थे और वह जैनमुनि कब हुए थे। उनके स्वयं-के कथनसे यह प्रगट है कि उनने सर्व प्रकारके मतोंके साधुमार्गका पालन किया था और अन्तमें दुर्धर तपश्चरण करनेपर भी उनको आत्मज्ञानका भान न हुआ। तब वह उससे भी निराश हो गये और शरीरकी रक्षा करना पुनः प्रारंभ करदी। इससे यह बहुत संभव है कि वह इस अवस्थाके प्रारंभ करनेके पहिले जैन मुनि थे परन्तु वह मुनिधर्मके यथार्थ ज्ञानके भानसे अनभिज्ञ प्रगट होते प्रतीत होते हैं।

अतएव "हमें यह नहीं ज्ञात है कि बुद्ध क्या विचार करते अथवा क्या इस विषयपर कहते यदि उनको यह विदित होजाता कि वह सन्यासमें स्वयं दृढ़ता प्राप्त करनेका प्रयत्न विदून ग्रहस्था-श्रमका साधन किए हुए करना चाहते थे। संभवतः उनने इसपर कभी ध्यान नहीं दिया कि शिखरपर पहुंचनेके लिए सीढ़ीकी आवश्यक्ता होती है और यह कि तपस्यासे सिवाय दुःख और क्लेशके और कुछ भी प्राप्त नहीं होता, यदि वह सम्यक्दर्शन और सम्यक्ज्ञानके साथ न हो।" (असहमतसंगम पृष्ठ १८६–७)

श्री समयसारजीमें श्रीमन्महाराज श्री कुन्दकुन्दाचार्यजीने भी ऐसा ही कहा है:—

गाथा—परमट्ठहिन दुअठिदो जो कुणइ तवं वयं च धारई।
तं सव्व बालतवं बालवदं विंति सव्वण्हू॥

भावार्थ—जो परमार्थ भूत आत्माके स्वभावमें स्थिर नहीं है, वह जो कुछ तप या व्रत करता है सो सर्व बालतप व बालव्रत है

ऐसा सर्वज्ञ भगवानने कहा है। इसलिए मुख्यतासे कर्मोंकी निर्जराका कारण आत्मानुभव है। इसके होनेहीसे यह आत्मा निर्वाणका भागी होसक्ता है। आत्मानुभवसे शून्य पुरुष कैसा भी व्यवहारमें सावधान हो, परन्तु कर्मोंसे मुक्ति नहीं पा सक्ता। जब कि आत्मानुभवका दृढ़ अभ्यासी सोते हुए भी कर्मोंकी निर्जरा करता है। इस तरह तात्पर्य यह निकालना चाहिए कि कर्मोंके बन्धनसे छूटनेका उपाय मात्र एक आत्माका सच्चा श्रद्धान, ज्ञान और चारित्र है—निश्चय रत्नत्रय ही मोक्षका साधक है।

बुद्धदेवने इस ओर ध्यान नहीं दिया था; इसीकारण कठोर तपश्चरण करनेपर भी उनको यथार्थ ज्ञानकी प्राप्ति नहीं हुई। तपश्चरणमें उनको अश्रद्धासी होगई और उन्होंने उसकी कठिनाई-को इन शब्दोंमें स्वीकार किया:—

"दुःख बुरा है और उससे बचना चाहिए। अति (Excess) दुःख है। तप एक प्रकारकी अति है, और दुःखवर्द्धक है। उसके सहन करनेमें भी कोई लाभ नहीं है। वह फलहीन है।" (The Encyclopaedea of Religion and Ethics. Vol: II. P. 70.)

और उनको विश्वास भी होगया कि "न इन कठिनाइयोंके सहन करनेवाले नागवार मार्गसे मैं उस अनोखे और उत्कृष्ट पूर्ण (आर्योंके) ज्ञानको, जो मनुष्यकी बुद्धिके बाहर है, प्राप्तकर पाऊंगा। क्या यह सम्भव नहीं है कि उसके प्राप्त करनेका कोई अन्य मार्ग हो?" (Ibid P. 70.) अतएव इसी सबबसे उनने शरीरकी रक्षा करना पुनः प्रारंभ कर दी थी, जिसके कारण वह

इन्द्रिय लिप्सामें भी किसी कदर अगाड़ी बढ़गये। और ' अन्तमें वह मध्यका मार्ग जिसकी वह खोजमें थे, विख्यात बोधिवृक्षके नीचे प्राप्त हो गया। वह मध्यमार्ग कठिन तपस्या और वेरोकटोककी विषयलोलुपताके दर्मियान जो कर्मयोग (सांसारिक कार्योंमें निष्काम मनसे संलग्न होने) के भेषमें प्रचलित थी, एक प्रकारका राजीनामा (मेल) था। अथवा वह मध्यमार्ग वैज्ञानिक दृष्टिसे सिद्ध है या असिद्ध, यह प्रश्न न था। भाव यह था कि दुःखसे हर प्रकार बचें। यदि स्वयं तप दुःखका कारण है तो उससे दुःखका नाश कैसे हो सक्ता है ?' (असहमतसंगम पृष्ट १८६) इस प्रकार—यद्यपि बुद्धदेवको तपश्चरण आदिमें विश्वास नहीं रहा था, परन्तु उनका यथार्थ ज्ञान प्राप्त करनेकी अभिलाषाका श्रद्धान अब भी कम न हुआ था। इसीसे उन्होंने उपर्युक्त मध्यमार्गको ढूंढ़ निकाला और उसका प्रचार करने लगे। अस्तु।

हम देखते हैं कि बुद्धदेवने परीषहोंसे भयभीत हो उतावलीमें जैनधर्मके मुनिपदसे भ्रष्ट हो उससे विपरीत मतको स्थापन किया जो कि सैद्धांतिक न होकर एक तरहका आचार सम्बन्धी मनोनुकूल सुधार था ! और उसने उसके द्वारा हिंसाकी पुष्टि की, यद्यपि वह अपनेको अर्हन्त कहते थे। परन्तु आश्चर्य तो इस पर है कि अर्हंत होनेपर भी उनसे इंद्रियनिरोध न हो सका, और उनके हृदयमें शल्य घुसी रही—वह अपने ज्ञानको जगतके निकट प्रकट करनेमें हिचकते रहे। वास्तवमें बात यह है कि उनको जब बोधिसत्त वृक्षके नीचे मध्यमार्गका भान हो गया तब वह अपनेको अर्हन्त कहने लगे, यद्यपि वह यथार्थ अर्हन्तावस्थासे कोसों दूर

थे और यथार्थ सिद्धान्तसे नितान्त अनभिज्ञ थे जैसे कि मि० के० जे० सॉन्डर्सके निम्न वाक्योंसे प्रगट है:—

"जब उसने निब्बानके विषयमें कहा तब वह अपने अनुभवको ही प्रगट करनेका प्रयत्न कर रहा था। और नैतिक आचार्य होनेकी अपेक्षा उसने उसका वर्णन आचार संबंधी नियमोंमें किया। (पृष्ठ २८) बुद्धने दूसरे शब्दोंमें कहा कि हम निव्वानका स्वरूप तब तक नहीं कह सके जब तक कि हम आत्माका यथार्थ स्वरूप न जानलें। और कोई आत्मा है ही नहीं! कमसे कम इन चार बातोंको बुद्धने व्यक्त करनेसे इन्कार कर दिया था अर्थात् (१) क्या संसार अनादिनिधन है? (२) क्या वह अनन्त है? (३) क्या शरीर और आत्मा एक है? (४) और क्या अर्हत् मृत्युके पश्चात् भी सत्तामें रहता है। (पृष्ठ ३०)" (See Gotama Buddha)

इसीलिए मि० सॉन्डर्स कहते हैं कि "यह इस कारणसे नहीं था कि उसने सत्यका प्रचार किया था, जिससे उसके श्रोताओंने उस पर विश्वास किया, बल्कि यह इस कारणवश था कि उसने उनके हृदयोंको बशमें कर लिया था जिससे उसके वाक्य उन्हें सत्य प्रतीत होते थे।" (Ibid P. 75.) अस्तु, यह प्रगट है कि यथार्थमें वह धार्मिक सिद्धान्तोंसे अनभिज्ञ थे। इसी कारण अपने आचार संबंधी नियम भी वह यथार्थ प्रगट न कर सके और इससे कहना पड़ेगा कि बुद्धने किसी नए रूपमें नए सिलसिलेसे बौद्ध धर्मको स्थापित नहीं किया था।

मि० चम्पतरायजी जैन बैरिष्टर इस बातको अपनी 'असहमत-संगम' नामक पुस्तकके पृष्ठ १८४ पर इस तरह पुष्ट करते हैं

कि " बौद्धमत हिन्दुओंकी पेचीदा वर्णव्यवस्थाके और जैनियोंकी कठिन तपस्याके विरोधमें संस्थापित हुआ था, न कि एक नूतन सैद्धान्तिक दर्शनके रूपमें; कमसे कम प्रारंभमें तो नहीं।"

अस्तु, इस प्रकार हम देख चुके कि बौद्धमतका विकास चारित्र नियमकी कठिनाईके कारण हुआ था और प्रारंभमें सैद्धान्तिक ज्ञान बुद्धकी शिक्षाका कोई आवश्यक भाग नहीं था। सच्चा धर्म एक अमली शिक्षाके सिवा और कुछ न था। दुःखसे छुटकारा मनकी शुद्धता द्वारा प्राप्त होता है। मनकी शुद्धता इच्छा रहित होनेसे होती है। इच्छासे निवृत्ति तपस्या और ध्यानसे होती है, जो मनमें वैराग्य उत्पन्न करते हैं अर्थात् संसार और इन्द्रियोंके निरोधसे। स्वयं बुद्धका मत विशेष अवसरोंपर निश्चित नहीं था। कभी वह सत्ताकी नित्यताको माननेवालेके रूपमें शाश्वत बातचीत करता था और कभी २ नाशके संबंधमें वह कहता था। परन्तु वस्तुतः बुद्धका सिद्धान्त जीवकी अनित्यतापर पूर्णरूपेण जोर डालता है। (देखो असहमतसंगम पृ० १८६) यह भी अवश्य था कि वह सैद्धान्तिक विज्ञानसे अनभिज्ञ था। इसीकारण उसकी अमली शिक्षा भी अपूर्ण थी जिसके विषयमें मि० हरिसत्य भट्टाचार्य एम० ए० बी० एल० लिखते हैं कि "परीक्षा करनेपर यह प्रकट होजायगा कि बौद्धधर्मका सुन्दर आचारवर्णन एक कम्पित नींव पर अवस्थित है। हमें वेदोंकी प्रमाणिकताका निषेध करना है—अच्छी बात है। हमें अहिंसा और त्यागका पालन करना है—अच्छी बात है। हमें कर्मोंके बंधन तोड़ने हैं—अच्छी बात है, परन्तु सारे संसारके लिए यह तो बताईए हम हैं क्या? हमारा ध्येय क्या है? स्वाभाविक

उद्देश्य क्या है ? इन समस्त प्रश्नोंका उत्तर बौद्धधर्ममें अनूठा पर भयावह है, अर्थात् 'हम नहीं हैं'। तो क्या हम छायामें श्रम परिश्रमकर रहे हैं ? और क्या अंधकार ही अन्तिम ध्येय है ? क्यों हमें कठिन त्याग करना है और हमें क्यों जीवनके साधारण इन्द्रिय सुखोंका निरोध करना चाहिए ! केवल इसलिए कि शोकादि नष्टता और नित्य मौन निकटतर प्राप्त होजाऐं। यह जीवन एक भ्रान्तवादका मत है और दूसरे शब्दोंमें उत्तम नहीं है। अवश्य ही ऐसा आत्माके अस्तित्वको न माननेवाला विनश्वरताका मत सर्वसाधारणके मस्तिष्कको संतोषित नहीं करसक्ता। बौद्धमतकी आश्चर्यजनक उन्नति उसके सैद्धान्तिक विनश्वरतावाद (Nihilism) पर निर्भर नहीं थी, वल्कि उसके नामधारी "मध्यमार्ग" की तपस्याकी कठिनाईके कम होनेपर ही थी।" (See Jain Gazette Vol: XVII No. 5).

सुतरां बुद्धदेवके आचार नियमोंकी अपूर्णता और असार्थकता इससे भी प्रकट है कि उसने मृतपशुओंके मांसको खानेका भी निषेध नहीं किया ! देशके प्रसिद्ध नेता लाला लाजपतरायजी भी इस बातको स्वीकार करते और कहते हैं कि "बौद्धोंमें मृतपशुके मांस खानेका निषेध नहीं। ब्रह्मामें, सिंहलमें, चीनमें, जापानमें, सारांश यह कि सभी बौद्ध देशोंमें बौद्ध लोग मांस खाते हैं। परन्तु कोई भी जैन मांस नहीं खाता। जैनोंका सबसे बड़ा नैतिक सिद्धान्त अहिंसा है।" (देखो 'भारतवर्षका इतिहास' पृष्ट १३१) इस प्रकार बुद्धके "मध्यमार्ग" ने तपस्या की कमताई और इंद्रिय सुखकी सुविधाजनक नियमित उपभोगकी आज्ञा देनेके एवं उनकी वाणी ललित और मिष्ट होनेके कारण उन्नति पाई।

बुद्धके जीवनकालमें ही उसका यह आचारनियम इसी प्रकार शिथिल था, यह स्वयं बौद्ध ग्रन्थोंसे प्रमाणित है क्योंकि बौद्धोंके महावग्ग ग्रन्थमें लिच्छावियोंके सेनापति सीहका उल्लेख है कि वह निगन्थ नातपुत्तका शिष्य था, जो प्रो० बुहलर और जेकोबीके अनुसार प्रमाणित रीत्या जैनियोंके भगवान महावीरस्वामी हैं। महावग्गमें लिखा है कि सेनापति सीहने बुद्धकी बड़ी प्रसंशा सुनी थी और वह अन्तमें बौद्ध भी होगया था। बौद्ध होने पश्चात् सीहने बुद्ध और बौद्ध भिक्षुओंको भोजनार्थ आमंत्रित किया था और उनके भक्षणके लिए बाजारसे वह मांस लाया था। इसके अगाड़ी महावग्गमें लिखा है कि "इस समय एक बड़ी संख्यामें निर्ग्रन्थ लोग वैशालीमें, सड़क सड़क और चौराहे चौराहेपर यह शोर मचाते दौड़ रहे थे कि आज सेनापति सीहने एक बैलका वध किया है, और उसका आहार समण गौतमके लिए बनाया है। समण गौतम जानबूझ कर कि यह बैल मेरे आहार निमित्त मारा गया है पशुका मांस खाता है; इसलिए वही उस पशुके मारनेके लिए बधक हैं।"

(See Venaya Texts, Sacred Books of the East, Vol: XVII, P. 116. & the Kshatriya Clans in Buddhist India P. 85.)

इसके अतिरिक्त बौद्धके अंतिम जीवनमें जो उसके संघमें फूट पड़ी थी उसका मुख्य कारण भी इसी बातकी पुष्टि करता है जैसे कि:—

"देवदत्त (बौद्धके शिष्य) का दूसरा कार्य संघको छिन्नभिन्न करना था। उसने तपश्चरणके कुछ आधिक्य होनेपर जोर दिया,

और खासकर कहा कि भिक्षुओंको केवल वनमें रहना चाहिए, मांस नहीं खाना चाहिये, और फटे पुराने कपड़ेसे शरीरकी रक्षा करना चाहिये।" (See Gótama Buddha by K. T. Saunders P. P. 72-73.)

अस्तु, हम देखते हैं कि बुद्धने प्राचीन धर्ममें सुधार मात्र किया था, जो भी यथार्थ न था। किन्तु बुद्धदेवको ज्ञान प्राप्त करनेको इतना दृढ़ श्रद्धान भगवान महावीरके जीवनसे प्राप्त हुआ था। जैसे कि निम्न पंक्तियोंसे प्रकट है। परन्तु आश्चर्य है कि बुद्धके जीवनचरित्रमें उसके ५०से ७० वर्ष तकके जीवनकी घटनाओंका उल्लेख नहीं है। जैसे कि विशप बिगनडेट साहब कहते हैं कि "करीब २ एक पूरा अभाव है।" ("An almost complete blank." See Gotama Buddha P. 45)

इसका कारण भी यही है कि इस समयमें भगवान महावीरका पवित्र विहार हो रहा था, जिसके कारण बुद्धका प्रभाव उठसा गया था। और उल्टे भगवान महावीरका प्रभाव इनके संघपर पड़ा था, जिससे उसमें मतभेद होगया, क्योंकि उसके शिष्य भी असलियतको और अपनी कमताइयोंको जान गए थे। पुनः जब ७२ वर्षकी अवस्थामें बुद्धको हम कर्मक्षेत्रमें देखते हैं, तो उसका प्रभाव पहिले जैसा प्रगट नहीं होता, क्योंकि जब वह राजगृहमें पहुंचते हैं, तब स्वयं पूछनेपर एक कुम्हारके घरमें रात विताते हैं।

अस्तु, भगवान महावीरका प्रभाव म० बुद्धपर भी पड़ा था, और उनकी सर्वज्ञता एवं उनके धर्मकी यथार्थता बुद्धके निम्नशब्दोंसे प्रगट है, जिसमें उसने इन बातोंको स्वीकार किया है और अपने क्षणिक सिद्धान्तमें अश्रद्धाको भी प्रगट किया है अर्थात्—

"भाइयो! कुछ ऐसे सन्यासी हैं, (अचेलक, आजीविक, निगंथ आदि) जो ऐसा श्रद्धान रखते और उपदेश करते हैं कि प्राणी जो कुछ सुख दुःख व समभावका अनुभव करता है वह सब पूर्व कर्मके निमित्तसे होता है। और तपश्चरणसे, पूर्व कर्मोंके नाशसे, और नये कर्मोंके न करनेसे, आगामी जीवनमें आश्रवके रोकनेसे, कर्मका क्षय होता है और इस प्रकार पापका क्षय और सर्वदुःखका विनाश है। भाइयो, यह निर्ग्रंथ (जैन) कहते हैं........मैंने उनसे पूछा क्या यह सच है कि तुम्हारा ऐसा श्रद्धान है और तुम इसका प्रचार करते हो....उन्होंने उत्तर दिया....हमारे गुरू नातपुत्त सर्वज्ञ हैं........उन्होंने अपने गहन ज्ञानसे इसका उपदेश दिया है कि तुमने पूर्वमें पाप किया है, इसको तुम उग्र और दुस्सह आचारसे दूर करो और जो आचार मन वचन कायसे किया जाता है उससे आगामी जन्ममें बुरे कर्म कट जाते हैं........इस प्रकार सर्व कर्म अन्तमें क्षय होजांयगे और सारे दुःखका विनाश होगा। इस सर्वसे हम सहमत हैं।" (Majjhima II, 214. cfi 238 देखो असहमतसंगम पृष्ट १८४–१८९)

"यहां बुद्धदेव स्पष्टतया (१) परमात्मन् महावीर, (२) जैनधर्म, और (३) जैनियोंके इस अत्यावश्यक वादका कि परमात्मन् महावीर सर्वज्ञ थे, उल्लेख करते हैं और बुद्धदेवकी जो इच्छा निगंथ (जैन) से बातचीत करनेकी हुई वह केवल कौतुकरूप नहीं थी कि जिसका कोई स्पष्ट फल न हो। उनके चित्तमें उस पूर्ण ज्ञानके प्राप्त करनेका उच्च उद्देश्य था जो उन्होंने परमात्मन्

महावीरमें देखा था।. तत्पश्चात् उनका सब जीवन इसी ढांचेमें ढल गया।....उपरोक्त उद्धृत वाक्योंसे निम्न बातें पूर्णतया प्रमाणित हो जाती हैं:—

(१) परमात्मन् महावीर वास्तविक ऐतिहासिक व्यक्ति थे न कि कोई कल्पित वस्तु।

(२) वह बुद्धदेवके समकालीन थे।

(३) परमात्मन् महावीरके सर्वज्ञ होनेका प्रतिपादन जैनियोंने स्पष्टतया किया था, जिनका धर्म यह शिक्षा देता है कि प्रत्येक आत्मामें सर्वज्ञता शक्तिरूपसे है और वह निर्वाण प्राप्तिके समय पूर्णतया व्यक्त हो जाती।

(४) जिनेन्द्रके दर्शनसे बुद्धदेवको उस ज्ञानकी प्राप्तिकी तीव्र इच्छा हुई थी जिसके विषयमें उन्होंने बड़े चमकते हुए शब्दोंमें कहा है कि वह सर्वव्यापी श्रेष्ठ आर्यज्ञानका महान और विविक्त दर्शन है जो मनुष्यकी समझमें नहीं आ सक्ता।

(५) बुद्धदेव समझते थे कि ज्ञान तपश्चरणसे प्राप्त हो सक्ता है और उन्होंने उसकी प्राप्तिके लिये उग्र तपश्चरण किया।

(६) उनको तपश्चरणसे यथेष्ट फल नहीं मिला, किन्तु उन्होंने अपना प्रयत्न नहीं छोड़ा, बल्कि अपने उद्देश्यको दूसरे मार्गसे जिस प्रकार भी हो सके, प्राप्त करनेका संकल्प कर लिया।

अतः बुद्धदेवको मनुष्यकी समझसे बाहर सर्वव्यापक श्रेष्ठ, आर्यज्ञानके विविक्त और महान दर्शनके विषयमें किंचित्मात्र भी संदेह नहीं था। उनको ऐसे ज्ञानके विषयमें दृढ़ विश्वास था। उसके लिए उन्होंने कड़ेसे कड़े तपश्चरण वर्षों किए, और शरी-

रके क्षीण और बलहीन होनेपर भी उन्होंने अपने प्रयत्नको नहीं छोड़ा। ऐसा दृढ़ श्रद्धान बुद्धदेवको तीर्थङ्करके साक्षात् दर्शनसे ही हुआ होगा। हम यह भी कह सकते हैं कि और कोई ऐसा नहीं था जिसका दृष्टांत बुद्धदेवके दिलपर ऐसा प्रभाव डालता, क्योंकि जैनधर्मके अतिरिक्त और किसीने भी पूर्ण ज्ञानी सर्वज्ञ होनेका दावा नहीं किया है।"

(देखो मि० चम्पतराय जैनका "गौड खंडन" पत्र ५-७)

इस प्रकार हमारे उपर्युक्त वर्णनसे प्रगट है कि म० बुद्धके जीवन पर भगवान महावीरके जीवनका विशेष प्रभाव पड़ा था, जिसके कारण उन्हें यथार्थ ज्ञान प्राप्त करनेका दृढ़ विश्वास होगया था। यद्यपि वह उसमें पूर्ण सफल प्रयास नहीं हुए और वह अपने 'मध्य-मार्ग' का प्रचारकर लोगोंको दुःखसे बचनेके लिए शून्यतामें गर्त्त हो जानेका उपदेश देते रहे। और अस्सी वर्षकी अवस्थामें सूअरका मांस खानेके पश्चात् मृत्युको प्राप्त हुए।

अस्तु, बुद्धदेवके उपदेशका प्रभाव बहुत लोगोंके हृदयोंपर इस कारणसे पड़ा कि उसमें कठिन तपस्या नहीं करनी पड़ती थी, और उसने हठयोगकी कठिनाइयोंको भी, जो वास्तवमें एक व्यर्थ मार्ग शारीरिक क्लेशोंका है और जिसका तपस्याके यथार्थ स्वरूपोंसे जैसे जैन सिद्धांतमें दिए हुए हैं, पृथक् समझना आवश्यक है, हलका कर दिया था, परन्तु बुद्धसिद्धान्तके विषयमें एवं उसके आवागमनके मतके संबंधमें जिसमें कर्म करनेवालेके स्थानपर एक अन्यपुरुषको कर्म्मोंके फलरूप दुःखसुखको भोगना पड़ता है और उनकी मानी हुई आत्माओंकी अनित्यताकी बाबत हम चाहे

जो कुछ विचार करें वा कहें तो भी हमको संसारी जीवोंके दुःखको बहुत स्पष्टरूपसे जानलेनेके लिए और उस दुःखको शब्दोंमें अपूर्व योग्यतासे चित्रित करनेके लिए उसकी अवश्य प्रशंसा करनी पड़ती है।" (असहमतसंगम पृष्ठ १८७-१८८)

इस प्रकार हम भगवान महावीरके समकालीन विशेषप्रख्यात् साधुका और उसके मतका दिग्दर्शन करचुके। हमने देखा कि महावीरस्वामीका प्रभाव उनके ऊपर भी पड़ा था, और उनका मत भगवान महावीरके धर्मसदृश वैज्ञानिक ढंगका नहीं था।

बुद्धकी मृत्युके पहिले भगवान महावीर निर्वाण प्राप्त करचुके थे, क्योंकि बौद्धग्रन्थोंमें लिखा है कि जब बुद्ध भगवान शाक्य भूमिको जारहे थे, तब उन्होंने देखा कि पावामें नातपुत्त महावीर-का निर्वाण होगया है। इसके पश्चात् बुद्धने पुनः अपने धर्मका प्रचार किया था और अजातशत्रु आदि राजाओंने उनके धर्मको ग्रहण किया था।

मक्खाली गोशाल और पूरण काश्यप।

' सिरिवीरणाहणतित्थे बहुस्सुदो पाससंघगणिसीसो ।
मक्कडिपुरणसाहू अण्णाणं भासए लोए ॥ "

—दर्शनसार ।

उक्त श्लोकसे व्यक्त है कि महावीर भगवानके तीर्थमें पार्श्वनाथ तीर्थंकरके संघके किसी गणीका शिष्य मस्करी पूरण नामका साधु था। उसने लोकमें अज्ञान मिथ्यात्वका उपदेश दिया। यहां पर देवसेनाचार्यने आजीवक सम्प्रदायके मुख्य प्रवर्तक मक्खाली गोशाल और अचेलक मतके संस्थापक पूरण कश्यपको एक ही व्यक्ति लिखा है। यद्यपि दोनोंने ही जैनधर्मसे विपरीत अज्ञान मतका उपदेश दिया था। परंतु देवसेनाचार्यके समयमें आजीवक लोग ही मिलते थे और दोनों सम्प्रदायोंके साधु नग्न रहते थे, इन कारणों-वश संभवतः देवसेनाचार्यने इन दोनोंको एक व्यक्ति लिख दिया है जैसे कि बौद्धोंके अङ्गुत्तर नामक ग्रन्थमें मक्खाली गोशालके छह अभिजाति नामक सिद्धांतको पूरण काश्यपका बतलानेमें भ्रम खाया गया है। और देवसेनाचार्यने उक्त गाथाके उपरांत गाथाओंमें उनके सिद्धान्तोंका वर्णन किया है जो उनके ज्ञात सिद्धान्तोंसे ठीक नहीं बैठते हैं जैसे जीवोंका मरनेके पश्चात् आगमन न मानना और संसारका एक शुद्धबुद्ध परमात्मा कर्ता मानना। सम्भव है कि देवसेनाचार्यके समयके आजीवकोंका इस प्रकारके सिद्धान्तोंमें विश्वास हो गया होगा, क्योंकि वह प्राचीन आजीवक सिद्धान्तोंके,

माननेवाले ही नहीं रहे थे, वल्कि उन्होंने आवश्यकानुसार उनमें संशोधन भी कर लिए थे जैसे कि उन्होंने वैदिक देवताओंकी पूजा करना प्रारम्भ कर दी थी (See The Ajivakas by Dr. B. M. Barua, M. A., D. Litt. Part I P. 58) अस्तु, मस्करी अथवा मक्खाली गोशाल और पूरण कश्यप अलग अलग दो व्यक्ति थे जैसा कि बौद्ध शास्त्रोंसे प्रगट है । और इनमेंसे मक्खाली गोशाल संभवतः जैन मुनिका शिष्य था, क्योंकि इसके नेतृत्व कालमें आजीवक सम्प्रदाय एक व्यवस्थित धर्म वन गया था; जिसकी कुछएक वातें जैनधर्मके चारित्र नियमसे मिलती हुई प्रतीत होती हैं; जैसे जैनियोंका समाधिमरण नियम अथवा सल्लेषणाव्रत और मक्खाली गोशालका बताया हुआ चत्तारि पाणगायं चत्तारिअपाणगायं नियम अर्थात् The doctrine of Four Drinkables and four Substitutes. अस्तु; ।

" कोई कोई इस सम्प्रदायको जैन सम्प्रदायके ही अन्तर्गत वतलाते हैं, किन्तु श्वेताम्बर ग्रन्थ भगवतीसूत्र और आचाराङ्गसूत्रके पाठ मालूम करनेसे होता है, कि आजीवक सम्प्रदाय जैन सम्प्रदायसे भिन्न है, (जैसे दर्शनसारका उक्त श्लोक प्रगट करता है ।) शेष तीर्थङ्कर महावीरस्वामीके समसामयिक मङ्खली पुत्र गोशाल इस सम्प्रदायके एक प्रधान आचार्य थे । भगवती सूत्रसे जाना जाता है, कि मङ्खली नामक एक भिक्षुके औरस और उनकी पत्नी भद्राके गर्भसे गोशालका जन्म हुआ था । इसीसे उनका नाम मङ्खलि पुत्र (मक्खाली) गोशाल पड़ा । महावीरस्वामीके

संसार छोड़नेके बाद दूसरे वर्ष राजगृहमें सामान्य भिक्षुकरूपसे गोशाल भी जा पहुंचे। गोशाल महावीरस्वामीका परिचय पाकर उनके शिष्य होनेको उद्यत हुए थे। भगवान महावीरने गोशालकी प्रार्थना पूर्ण की। फिर ६ वर्ष गोशाल उनके सङ्ग शिष्यरूपसे रहे एवं उसी समयसे क्रमशः सुख, दुःख, रति, विरति, मोक्ष और बन्धन प्रभृति विषय समझने लगे। पीछे कूर्म नामक ग्राममें भगवान महावीरके साथ गोशालका मतभेद हुआ था। राहमें फलपुष्पशोभित तिलवृक्षको देखकर गोशालने महावीरस्वामीसे जिज्ञासा की,—यह वृक्ष मरेगा या नहीं, एवं मरनेके बाद इसके सप्तजीवका क्या परिणाम होगा? महावीरस्वामीने उत्तर दिया, वृक्ष मर जायगा, किन्तु इसी वृक्षके बीजसे पुनः सप्तजीव उत्पन्न होगा। गोशालने उनकी बात पर विश्वास नकर वृक्षको उखाड़ डाला था। कई मास बाद दोनों जब उस स्थानको वापस गए, तब यह देख दङ्ग रह गए, कि पानी पड़नेसे उसी तिलका एक बीज पेड़ हो गया था। महावीरस्वामीने गोशालसे कहा,—हमने तुमसे पूर्वमें जो बताया, उसका प्रत्यक्ष प्रमाण देख लीजिए। पहला वृक्ष मर गया था, परन्तु उसीके बीजसे नूतन वृक्ष उत्पन्न हुआ। गोशाल फिर भी उनकी बातपर विश्वास कर न सके, और पेड़का एक बीज उठा उसकी छाल नोच २ कर देखने लगे, कि सचमुच ही उसके मध्य अति सूक्ष्म सात दाने थे! इसीसे गोशालको धारणा हुई, केवल वृक्षलता ही नहीं—सकलजीवका जन्मान्तर संभव है। फिर कठोर योग्य साधनकर गोशालने अमानुषिक क्षमता प्राप्त की एवं स्वयं एक जिनके नामसे परिचित हुए, किन्तु महावीरस्वामीने

उनका कभी जिनत्व स्वीकार किया न था। निर्ग्रन्थ एवं आजीवक सम्प्रदायके मध्य बहुत दिन तक परस्पर द्वेषभाव रहा। आजीवक गणको विश्वास था,—परिणाममें मोक्ष या परममार्ग पानेपर सब जीवोंको चौरासी लाख कल्प सप्तदेवयोनि, सप्तजड़योनि, सप्तजीवयोनि, और सप्तजन्मान्तर अतिक्रमण करना पड़ता है।"

(हिन्दी विश्वकोष भाग २ पृष्ठ ५२२-५२३)

उपर्युक्त वर्णनसे हमें आजीवक सम्प्रदायका पृथकत्व, उसके प्रसिद्ध प्रवर्तक आचार्य मक्खाली गोशालका जन्मसंबंधी विवरण, महावीरस्वामीसे संबंध और उनके श्रद्धानयुक्त सिद्धान्तका पता चल जाता है। जन्मसंबंधी विवरणकी पुष्टि बौद्धग्रंथ भी करते हैं, परन्तु भगवान महावीरस्वामीसे जो उनका सम्बन्ध शिष्यरूपमें प्रगट किया गया है, उसका उल्लेख बौद्धग्रंथोंमें कहीं नहीं मिलता है, और वह दिगम्बराम्नायके दर्शनसार ग्रन्थके उक्त श्लोककी मान्यताके विपरीत है। एवं डॉ० वारुआने अपनी पूर्वोल्लिखित 'आजीवक' नामक पुस्तकमें इसको अच्छी तरह प्रमाणित किया है कि भगवान महावीरका मक्खलि गोशालसे शिष्यपनेका संबन्ध नहीं था। और वे कहते हैं कि "भगवती सूत्रका यह वर्णन स्वयं उसीकी एवं अन्यकी व्याख्याओंसे बाधित होता है। इतिहासवेत्ताके भ्रममें पड़नेकी और गोशालके प्रति अन्याय करनेकी संभावना है यदि वह भगवती सूत्रके विवरणको नितान्त ऐतिहासिक सत्य मान लेगा।" परन्तु उनका यह कहना कि स्वयं महावीर भगवानने आजीवक सम्प्रदायके सिद्धान्तोंसे अपने धर्मोपदेश देनेमें सहायता ली थी, नितान्त भ्रमपूर्ण प्रतीत होता है, क्योंकि

उन्होंने आजीवक सम्प्रदायकी उत्पत्ति ईसासे ७०० वर्ष पहिले एक हिन्दू वानप्रस्थके ब्राह्मण ऋषिसारभङ्ग वा उद्दैकौन्डलके शिष्य किषवच्छके द्वारा मानी है। यद्यपि किषवच्छके पहिले भी वे नन्द-वच्छ नामक वानप्रस्थ ऋषिसे आजीवक सम्प्रदायका संबन्ध बतलाते हैं और यह ऋषि ब्राह्मण वानप्रस्थसे किसी कारणवश विलग होगए थे तथैव अपने पृथकूपनेकी स्वाधीनताको बनाए रखनेके लिए इन्होंने वानप्रस्थके खिलाफ़ रहकर अपना पृथक् रूप प्रकट किया था। इनका दिगम्बर भेष और पूर्वोंसे आठ महानिमित्तों और दो मार्गोंका लेना व्यक्त करता है कि इन्होंने पार्श्वनाथजीके तीर्थकालमें प्रवर्तित जैन धर्मसे बहुत कुछ लिया था। भगवान पार्श्वनाथके तीर्थकालके जैन मुनि वस्त्र धारण करते थे, यह मानना बिलकुल मिथ्या है। क्योंकि वे भी निर्ग्रन्थ श्रमण कहलाते थे और उनके वस्त्र धारण करनेका उल्लेख न बौद्ध ग्रन्थोंमें मिलता है और न हिन्दुओंके शास्त्रोंमें। इसका विशेष उल्लेख हम श्वेताम्बरोंका उल्लेख करते हुए अगाड़ी करेंगे। अस्तु, भगवान महावीरने आजीवक सम्प्रदायके सिद्धान्तोंसे कुछ नहीं लिया था, क्योंकि उसके सिद्धान्त स्वयं अपूर्ण और अवैज्ञानिक थे, बल्कि उल्टे जैनियोंके पूर्वोंसे आठ महानिमित्तों और दो मार्गोंको लेकर आजीविकोंने अपने धर्म-शास्त्रों की रचना की, और कुछ २ जैनधर्मसे और कुछ २ वानप्रस्थसे मिलते जुलते सिद्धान्तोंके माननेवाले रहे और उनने नग्नवेष श्री पार्श्वनाथ भगवानके तीर्थकालके साधुओंके दिगंबर वेषसे लिया था; क्योंकि आजीवकोंसे पहिले सिवाय जैनधर्मके अन्य किसीने भी दिगम्बर भेषका निरूपण नहीं किया। जब मक्खाली

गोशालके नेतृत्वमें आजीवक सम्प्रदाय आ गया तव वह एक धार्मिकरूप धारण कर सका था; यद्यपि अपने पितृ धर्मकी (वानप्रस्थ) बहुतसी बातें उसमें तव भी रहीं थी, जैसे वनमें भ्रमण करना, शरीरकी परवा न करना, वनके फलोंपर निर्वाह करना, मनुष्योंसे दूर रहना अथवा गोवर या मच्छी खाना, डन्डा हाथमें रखना इत्यादि।

मक्खाली गोशालने आजीवक सम्प्रदायका विशेष प्रचार किया था। उसका मुख्य कार्यक्षेत्र श्रावस्ती रही थी। यद्यपि उसका प्रचार समस्त मध्यदेशमें हो गया था। मक्खाली गोशालने २४ वर्ष तक अपने मतका प्रचार किया था। वह अपनेको तीर्थंकर प्रगट करता था। आश्चर्यका विषय है कि भगवान महावीरके अतिरिक्त उस समय अन्य पांच मत प्रवर्तक भी अपनेको तीर्थंकर प्रगट कर रहे थे! परन्तु जरा विचार करनेसे हमें उनका अपनेको तीर्थङ्कर प्रगट करनेका कारण मालूम हो जाता है। वात यह है कि उस समय लोगोंको मालूम था कि २३ तीर्थङ्कर हो चुके हैं और अंतिम २४वें होनेवाले हैं, जिनकी वह लोग स्वभावतः वाट जोह रहे होंगे, क्योंकि धर्मका ह्रास उस समय पूर्णतया हो चुका था, जैसा कि हम पहिले देख चुके हैं। इस कारण हरकोई अपनेको तीर्थंकर वतलाकर ब्राह्मणोंका विरोध करके लोगोंको अपना लेता था। मक्खाली गोशाल भगवान महावीरसे उमरमें बड़े थे, और उनकी मृत्यु भगवानकी निर्वाण प्राप्तिके पहले होचुकी थी। इसलिए उनने अपने धर्मका जो कि बहुतसी वाह्य वातोंमें प्राचीन जैनधर्मसे मिलता था जैसा कि हम ऊपर लिख चुके हैं,

प्रचार भगवानकी केवलज्ञानोत्पत्तिके पहिले ही किया था ऐसा प्रतीत होता है और यही कारण था कि उनके अनुयायी एक बड़ी संख्यामें होगए थे, किन्तु जब प्रभु महावीरका विहार और प्रचार हुआ तब लोगोंको यथार्थ तीर्थङ्करका पता चलगया, क्योंकि भगवान महावीरका उपदेश बिल्कुल वैज्ञानिक रीत्या वस्तुस्थिति रूपमें होता था, जैसाकि आज भी प्रकट है।* उपर्युक्त व्याख्याको पढ़ते हुए यह भी ध्यानमें रखनेकी बात है कि सिवाय जैनधर्मके अन्यधर्मोंमें आदि रूपसे तीर्थङ्करोंको नहीं माना गया है। भगवान महावीरसे पूर्वके इन वास्तविक तीर्थङ्करोंके अस्तित्वकी पुष्टि हिन्दूओंके वेद भी करते हैं जब कि इन अन्य नाममात्रके तीर्थङ्करोंका उल्लेख उन वेदोंमें नहीं है।

इस नाममात्रके तीर्थङ्कर मक्खाली गोशालके सिद्धान्तोंका वर्णन डॉ० बारुआने अपनी आजीवक नामक पुस्तकमें जैन और बौद्ध शास्त्रोंसे छानबीन करके लिखा है, क्योंकि आजीवकोंके निजी-शास्त्रोंका पता नहीं चलता है; और वह वहींसे जाना जासक्ता है। यहांपर उनका पूर्ण विवरण स्थानाभावके कारण नहीं दिया जासक्ता है, तो भी पाठकोंके अवलोकनार्थ तत्संबंधी कुछ वाक्य हम यहां लिखे देते हैं। 'मलिन्दप्रश्न' नामक बौद्धग्रन्थमें लिखा है—"सम्राट् मलिन्दने गोशालसे पूछा—"अच्छे बुरे कर्म हैं या नहीं? अच्छे बुरे कर्मोंका फल भी मिलता है या नहीं?" गोशालने उत्तर दिया—

* जैनधर्मके वैज्ञानिक रूपकी यथार्थता जाननेके लिए श्रीयुत चम्पतरायजी बैरिष्टरकी Key of Knowledge और असहमत संगम नामक पुस्तकें व जैन आर्षग्रन्थ देखना चाहिए।

"हे सम्राट्, अच्छे बुरे कर्म भी नहीं हैं और उनके फल भी कुछ नहीं हैं।" बौद्ध कहते हैं कि वह मरकर अवीचिनरकमें गया। उसके मतसे समस्त प्रानी विना कारण अच्छे बुरे होते हैं! संसारमें शक्ति सामर्थ्य आदि पदार्थ नहीं हैं। जीव अपने अदृष्टके प्रभावसे यहां वहां संचार करते हैं। उन्हें जो सुखदुःख भोगना पड़ते हैं, वे सब उनके अदृष्टपर निर्भर हैं। इत्यादि

(देखो जैनहितैषी भाग १३ अंक ५।६ पत्र २६८)

बौद्ध सम्प्रदायके 'समनफलसूत्र' से प्रगट है कि महाराज अजातशत्रुसे मक्खलिपुत्र गोशाल मिले थे। अजातशत्रुने बुद्धसे गोशालका मत इस तरह प्रकट किया—"महाराज! वितरण, दान, बलिविधान, पुण्य, पाप, पापपुण्यका फलाफल, वर्तमान जगत, स्वर्ग नर्क, पिता, माता, देव, अप्सरा, जीवलोक, श्रमण, ब्राह्मण आदि कहीं कुछ भी नहीं होता और न उसकी विद्यमानताका कोई प्रमाण ही दे सक्ता है। जो लोग इन द्रव्योंका अस्तित्व बताते वह झूठे हैं।" (हिन्दी विश्वकोष भाग २ पृष्ट ५२३)

मक्खाली गोशालकी मृत्यु श्रावस्तीके हालाहलाकी कुम्भारशालामें ज्वरके कारण महावीरस्वामीकी निर्वाणप्राप्तिके १६ वर्ष पहिले हुई थी। इस समय अंगदेशके वायसराय और पश्चातमें मगधके राजा कुणिक और वैशालीके राजा चेटकसे युद्ध एवं महावीर भगवानका धर्म प्रचार होरहा था। मक्खाली गोशालके परिणामवादके धोखेमें अब लोग नहीं आ रहे थे। इसलिए "जनतामेंसे इस प्रकार विश्वास उठ जानेके कारण गोशाल दिनोंदिन हीनताको प्राप्त होता गया, और अंतमें वह एक मूर्खकी भांति मृत्युको प्राप्त हुआ।"

(See the Heart of Jainism P. 60.)

गोशालकी मृत्युके कुछ पहिले निम्नलिखित छै दीक्षाचर उनके पास पहुंचे थे,—साण, कलन्दु, कणियार, अत्थेद, अग्निवेशायण और अज्जण गोमायपुत्र। इन्होंने गोशालका मत स्वीकार किया था। उन्होंने अपनी बुद्धिके अनुसार पूर्वोंमें गर्भित आठ महानिमित्तों और मार्गोंमेंसे कुछ वाक्य उद्धृत किए। गोशालने स्वयं महानिमित्तोंसे अपने लिए छैः विषय चुने थे, मुक्ति, बन्धन, सुख, दुख, जीवन और मरण। इन्हीं दीक्षाचरोंने बादमें आजीविक सम्प्रदायको जीवित रक्खा था।

गोशालका महानिमित्तोंसे अपने सिद्धान्तोंको चुनना व्यक्त करता हैं कि वह ज्योतिष और मंत्रवादका आचार्य था। उसके उपदेशमें इन्हींकी बहुतायत रहती थी ऐसा प्रगट होता है क्योंकि उसने आनन्दसे कहा था कि वह नष्ट करनेके मंत्रको जानता है। और उसने दो जैन मुनियोंको भी मंत्रविद्यासे नष्ट किया था। (See The Ajivakas by Dr. Barua M. A. D. Litt P. 28.) बौद्धग्रन्थ कथाचरितसागर,की तरङ्ग १३, नं० ६८के जातक कथानकमें साफ लिखा है कि बुद्धके जीवनकालसे ही आजीवकोंके निकट ज्योतिषबाद जीविका उपार्जन करनेका एक मार्ग होगया था। (See Ibid P. 68.) उसके आठ महानिमित्तोंमें सिवाय ज्योतिष और मंत्र विद्याके और कुछ न था और दो मार्गोंमें संभवतः संगीत शास्त्र अथवा आजीविक सम्प्रदायके चारित्र नियमोंका उल्लेख था।

गोशालकी मृत्युके समय आजीविक सम्प्रदायमें कुछ नियम और बढ़ाए गए थे, अर्थात् आठ अंतिम नियम (अट्ठचरमायं=

Eight finalties); (१) अंतिम पान (२) अंतिम गान (३) अंतिम नृत्य (४) अंतिम कुशील (Solicitation) (५) अंतिम आंधी (Tornado) (६) अंतिम छिड़कने-वाला हाथी (७) अन्तिम बड़े, पत्थरोंसे लड़ाई (८) और अन्तिम तीर्थङ्कर मक्खालीपुत्त और चत्तारिपाणगायं व चत्तारि अपाणगायंका नियम । पूर्वके नियमोंका यथार्थ भाव प्रगट नहीं है । संभव है इसमें भी कुछ मंत्रवादका अंश हो । डॉ० हॉर्नल साहब इनमेंसे प्रथम चारको गोशालके अन्तिम समयके बेसुधीकी दशासे सम्बंधित बतलाते हैं और अवशेषके चारमेंसे तीनको उस समयकी घटनाओंसे सम्बंधित बतलाते हैं जब गोशालकी मृत्यु हुई थी परन्तु वह धार्मिक सिद्धान्त क्यों माने जाने लगे यह बात अंधकारमें है । शायद यह कारण हो कि गोशालके तीर्थकरत्वको प्रगट करनेके लिए उन्होंने यह प्राकृतिक घटनाएं ले लीं हों । और यही बात ठीक जंचती है क्योंकि इस समय भगवान महावीरका प्रचार हो रहा था, और लोगोंको असली तीर्थङ्करका पता चलगया था । इसलिए उनका विश्वास मक्खाली गोशालके तीर्थकरपनेमें कम हो चला था, जिसके कारण ही आजीवकोंको मक्खाली गोशालको ही तीर्थंकर माने जानेके लिए यह सैद्धांतिक नियम रचना पड़ा था ऐसा प्रतीत होता है और इसकी पुष्टिके लिए उन्होंने प्राकृतिक घटनाऐं भी प्रमाणरूपमें ले लीं थीं । अस्तु, इस नियमका इस प्रकार खुलासा होजाता है, जिससे प्रगट होता है कि इसमें कुछ भी सैद्धांतिक भाव न था । चत्तारि पाण-गायं आदि नियमके विषयमें हम पहिले कह चुके हैं कि उसका

सादृश्य जैनियोंके सल्लेखनावृतसे है, परन्तु आजीवकोंके निकट वह केवल आत्महत्या (Suicide) भावमें है--उससे आत्मानुभवका कुछ संबंध प्रतीत नहीं होता। आजीविकोंका विश्वास था कि जो कोई इस नियमका पालन करता है, उसके निकट छे महीनेकी अंतिम रात्रिको पुन्नभद्द और माणिभद्द देवता प्रकट होते हैं और वे उसके अवयवोंको अपने ठंडे और गीले हाथोंमें ले लेते हैं। यदि अवयव उनके इस कृत्यसे उल्लसित होगए तो वे सर्पोंका कार्य करते हैं। अन्यथा उनके शरीरसे एक गुप्त अग्नि निकलती है जो अवयवोंको भष्मकर डालती है। बात यह है कि यहांपर आत्मानुभव द्वारा समाधिमरण करके आत्मशुद्धि करनेकी ओर ध्यान नहीं है, वल्कि वही मंत्रतंत्रकी वात आगई है कि देवता प्रगट होंगे।

गोशालकी मृत्युके साथ २ आजीवक सम्प्रदायका कार्यक्षेत्र श्रावस्तीसे हटकर विन्ध्यापर्वतके पाण्डुदेशमें चला गया था। श्रावस्तीमें वह गोशालके समयसे ही ह्रासको प्राप्त हो चलाथा। पाण्डुके राजा महापद्म अथवा देवसेन वा विमलवाहनने आजीवक सम्प्रदायको आश्रय दिया था और निर्ग्रन्थ सम्प्रदायको कष्ट दिए थे। वहांसे दक्षिणको बढ़ते २ आजीवक सम्प्रदाय १४ वीं शताब्दिमें लुप्त होगया। इसके बहुतसे अनुयायी जैन हो गए थे। जब भगवान महावीरका दिव्योपदेश हो रहा था तब उसका प्रभाव आजीवकोंके ऊपर विशेष पड़ा था और वे श्रावस्तीसे हट चले थे। उनका मंत्रादिमें विश्वास कम हो चला था। अस्तु, मक्खाली गोशालके मांत्रिक नकली तीर्थङ्करत्वका. वर्णन देखकर हम अब पूरण कश्यपका भी दिग्दर्शन पाठकोंको कराये देते हैं।

बौद्धग्रन्थोंसे मालूम होताहै कि "यह एक म्लेच्छस्त्रीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था। कश्यप उसका नाम था। इस जन्मसे पहिले यह ९९ जन्म धारण करचुका था। वर्तमान जन्ममें उसने शतजन्म पूर्ण किए थे इस कारण इसको लोग 'पूरण-कश्यप' कहने लगे थे। उसके स्वामीने उसे द्वारपालका काम सौंपा था; परन्तु उसे वह पसन्द न आया और यह नगरसे भागकर वनमें रहने लगा। एक वार कुछ चोरोंने आकर उसके कपडेलत्ते छीन लिये, पर उसने कपड़ोंकी परवा न की, यह नग्न ही रहने लगा। उसके वाद यह अपनेको पुरण कश्यप बुद्धके नामसे प्रकट करने लगा और कहने लगा कि मैं सर्वज्ञ हूं। एक दिन जब वह नगरमें गया, तो लोग उसे वस्त्र देने लगे, परन्तु उसने इन्कार कर दिया। और कहा—"वस्त्र लज्जानिवारणके लिए पहिने जाते हैं और लज्जा पापका फल है। मैं अर्हत हूं—मैं समस्त पापोंसे मुक्त हूं, अतएव मैं लज्जासे अतीत हूं।" लोगोंने कश्यपकी उक्तिको ठीक मानली और उन्होंने उसकी यथाविधि पूजा की, उनमेंसे ५०० मनुष्य उसके शिष्य हो गए और सर्वत्र यह घोषित हो गया कि वह बुद्ध है और उसके वहुतसे शिष्य हैं। परन्तु; बौद्ध कहते हैं कि वह 'अवीचि'नामक नर्कका निवासी हुआ। सुत्तपिटक दीर्घनिकाय नासक भागके अन्तंगत 'सामञ्ञओ फलसुत्त' में लिखा है कि पूरण कश्यप कहता था—'असत्कर्म करनेसे कोई पाप नहीं होता और सत्कर्म करनेसे कोई पुन्य नहीं होता। किए हुए कर्मोका फल भविष्यत् कालमें मिलता है, इसका कोई प्रमाण नहीं है।"—

(देखो जैनहितैषी भाग १३ अंक ५-६ पृष्ट २६८)

इस प्रकार महावीरस्वामीके एक अन्य समकालीन पुरुषका मत था जो स्वयं अपनी सर्वज्ञताकी डोंडी पीटता था, और लोगोंको अज्ञानके गर्त्तमें डाल रहा था। वीर भगवानका वास्तविक ज्ञानसूर्य्य प्रगट होते ही इन लोगोंकी यथार्थता खुल गई थी और इनका मत लुप्त हो गया था। इन लोगोंकी वाञ्छा लोगोंमें अपनी प्रतिष्ठा जमानेकी थी इसी लिए वे अपने आपको तीर्थङ्कर प्रगट करके अपने अनुकूल मनुष्योंको अपनाने लगे थे। उन्हें सत्य-असत्यकी ओर ध्यान नहीं था, परन्तु सत्य स्वयं प्रगट हो जाता है। और इसीसे भगवान महावीरका तीर्थङ्करपना लोगोंपर स्वयं प्रगट हो गया था। इसीसे हमारे पूर्वकथनकी पुष्टि होती है कि तीर्थङ्कर भगवानका आगमन निकट जानकर धार्मिक शृङ्खलाके उस डांवांडोल जमानेमें लोग अपनेको तीर्थकर प्रगट करके जनताको भुलावा दे रहे थे। और वास्तविक ज्ञानसूर्य्यके प्रकट होते ही एकदफे चहुंओर उजाला फैल गया था। उस समयके बड़े माने जानेवाले धार्मिकनेता म० बुद्ध भी उस प्रकाशके प्रभावसे वंचित नहीं रहे थे, जैसा कि हम देख चुके हैं। परन्तु म० बुद्धके उच्च वंशका ही यह प्रभाव प्रतीत होता है कि उन्होंने यथार्थताको छिपाया नहीं और भगवानकी सर्वज्ञताको प्रकट शब्दोंमें स्वीकार किया और कहा कि मेरेसे पहिले २४ बुद्ध वा जिन वा तीर्थङ्कर हो चुके हैं जैसे कि डॉ० स्टीवेन्सन साहब भी कहते हैं कि "यह प्रगट है कि बुद्धने अपने २४ पूर्ववर्ती बुद्धोंको देखा था, परन्तु इस कप्पों (काल) में उसने चार ही देखे। (Mahavanso, book I. Ch. 1.) और जैन अपने सिद्धान्तानुसार व्यक्त करते

हैं कि महावीरने उस कालके अपनेसे पूर्वगामी २३ तीर्थङ्करोंको देखा था।' बौद्धधर्मकी इस व्याख्यासे साफ प्रगट है कि उनका २४ बुद्धोंसे मतलब २४ जैन तीर्थकरोंसे है।" (See Preface to Kalpasutra P. XIII.)

अस्तु, अब हम महावीर भगवानके निर्वाण प्राप्तिके दिव्यावसरका वर्णन करके भगवानके दिव्योपदेश और उनके पश्चात् अनेक संघकी दशाका दिग्दर्शन पाठकोंको करायंगे।

(३०)

भगवानका मोक्षलाभ !

'त्वमसि सुरासुरमहितो ग्रन्थिकसत्त्वाशयप्रणामामहितः ।
लोकत्रयपरमहितोऽनावरणज्योतिरुज्वलद्धामहितः ॥"

वृहत्स्वयंभूस्तोत्र ।

'हे वीर ! आप सुरासुरोंसे वंदित, वा मिथ्यादृष्टियोंसे अवंदित तीन लोकके परमहितकारक, निरावरण ज्योति अर्थात् क्षायक ज्ञान (केवलज्ञान) उससे प्रकाशमान जो मोक्षस्थान है उसको प्राप्त होनेवाले हैं।'

जैन शास्त्रोंमें तीर्थंकर भगवानके जो पांच अति उत्कृष्ट दिव्यअवसर कल्याणक कहे हैं उनमेंसे हम भगवान महावीरके गर्भ, जन्म, तप और ज्ञान कल्याणकोंका वर्णन कर चुके हैं। अवशेष मोक्षकल्याणक जो सर्वमें सर्वोत्कृष्ट है, उसका दिग्दर्शन हम यहां करते हैं। इस ही अवसर पर तीर्थंकर भगवानकी संसारी आत्मा अपनी संसारपरिभ्रमणकारक स्थितिका अन्त सदैवके लिए

करती है और सिद्धावस्थाके जीवनका अनुभव प्रारम्भ करती है। इस सिद्ध जीवनमें आत्मा पवित्र और विशुद्ध होती है, परमसुखका भोग करती है और अविछिन्न शांति एवं अनन्त वीर्यका आनन्द लेती है। इस दशाका वर्णन करना वचनअगोचर है, इसका स्वरूप समाधिस्थित आत्मा ही समझ सक्ती है।

संसारमें समस्त जीवित प्राणियोंके जीवनका एक दिन अन्त होता है, परन्तु वह अन्त एक दूसरे जीवनको प्रारंभ कर देता है। भगवान महावीरके मानुषिक भौतिक जीवनका दिव्य अन्त 'फिर संसारमें न आनेके लिए' हुआ था, इसलिए वह उत्कृष्ट था। उससे जन्ममरणके दुःख-पाश कट गए थे, जिनके कारण जीवित प्राणी संसारमें चक्कर लगाते हैं। इसी कारण कहा जाता है 'भगवानने मोक्षलाभ' किया।

यह दिव्य अवसर ईसासे पूर्व ५२७ वें वर्षमें भगवान महावीरको प्राप्त हुआ था। भगवान गणधरादिके साथ विहार करते हुए दीक्षा ग्रहण करनेके करीब तीस वर्ष उपरांत, समस्त प्राणियोंके हितका उपदेश देकर पावापुरके फूले हुए वृक्षोंकी श्री शोभासे रमणीय 'मनोहर' नामक उपवनमें आकर प्राप्त हुए थे। पावापुरी संभवतः राजा हस्तिपालकी राजधानी थी, जो (राजा) भगवान महावीरके परमभक्त थे।

पावामें राजा हस्तिपाल भगवान महावीरके शुभागमनकी बहुत दिनोंसे प्रतीक्षा कर रहे थे। जब उन्होंने भगवानका आगमन सुना तो समस्त पुरवासियोंको आनन्द मनानेकी आज्ञा दे दी जिसके कारण मार्ग साफ कर दिए गए थे; गलियोंमें गुलाबजल

छिड़क दिया गया था, और वृक्षोंपर कन्डील और पताका लटका दिए गए थे।' पुरवासी सुन्दर बहुमूल्य वस्त्राभूषणोंको धारण करके भगवानकी वन्दनाको गए थे। भगवान उस उपवनमें एक ताला-वके मध्य एक व्रक्षकुञ्जमें अवस्थित थे। श्वेताम्बर ग्रन्थ व्यक्त करते हैं कि भगवानने यहां पर भी दिव्योपदेश दिया था। परन्तु महावीरचरित्रमें लिखा है कि उस वनमें आकर भगवानने सभाको छोड़ दिया था अर्थात् उनका समवशरण विघटित होगया था।

भगवानका उत्कृष्ट आत्मिक प्रभाव उनके चहुंओर एक अच्छी सीमा तक फैल रहा था और उसका प्रभाव समस्त प्राणियोंपर पड़ा था, जिससे वे आपसमें परमसमताभावको धारण किए हुए थे, और सुख एवं आनन्दका अनुभव करने लगे थे। पशु भी अपने वैरको विसार चुके थे। सिंह और गाय साथ २ घूमते थे। एक कवि इस भावको अंग्रेजी भाषामें किस उत्तमतासे व्यक्त करते हैं:—

"*SPOTTED DEER.*"

"*Broused fearless where the tigress fed her cubs,*
And cheetahs lapped the pool beside the bucks;
Under the eagle's rook the brown hares scoured,
While his fierce beak but preened an idle wing;
The snake sunned all his jewels in the beam,
With deadly fangs in sheath; the shrike let pass
The nestling-finch; the emerald halcyons,
Sate dreaming while the fishes played beneath;
Nor hawked the merops, though the butterflies,
Crimson and blue and amber-flitted thick
Around his perch; the spirit of our Lord,
Lay potent upon man and bird and beast."

— Jain Gazette Vol : XV. No. 4. P. 92.

भावार्थ—विरोधी पशुओंने एक दूसरेसे मैत्री कर ली थी, जिससे प्रगट होता था कि भगवानका दिव्य प्रभाव मनुष्य, पक्षी और पशुओंमें पूरा पूरा असर करगया है।

'भगवानकी आत्मिक दिव्य ज्योतिके प्रभावसे प्रकृति भी स्वयं उल्लसित हो गई थी। आकाश निर्मल होगया था। पृथ्वीने हरी २ घास और रंगविरंगे फूलोंको धारण करके मानों भगवानके चरणोंकी पूजा की थी। चहुंओर सुवासित धीमी २ पवन चलने लगी थी। वह स्थान "जय–जय"की ध्वनिसे गुंजायमान होगया था और समस्त प्राणी हर्षमें मग्न होगए थे। संक्षेपमें सुन्दर वनोपवन और आनन्दसे विह्वल मनुष्योंसे वेष्टित पावापुरी साक्षात् स्वर्गका भान देने लगी थी।' (Ibid)

समवशरणके विघटित हो जानेपर दिव्य एवं अनुपम समयमें "निर्मल परमावगाढ़ सम्यक्त्वका धारक वह सन्मति भगवान जिनेन्द्र षष्टोपवासको धारणकर योगनिरोधकर कायोत्सर्गके द्वारा स्थित होकर समस्त कर्मोंको निर्मूलकर कार्तिक कृष्णा चतुर्दशीकी रात्रिके अंतसमयमें जब कि चन्द्र स्वातिनक्षत्र पर था, प्रसिद्ध है श्री जिसकी ऐसी सिद्धि (मुक्ति) को प्राप्त हुआ उस जिनेन्द्रके अव्याबाध अतिशय अनंत सुखरूप पद–स्थानको प्राप्त करते ही, सिंहासनोंके कंपनेसे जानकर–भगवानका मोक्षकल्याणक हुआ है ऐसा समझकर अपनी अपनी सैन्यके साथ शीघ्र ही अनुगमन करनेवाले सारे देव और उनके अधिपति भगवानके पवित्र और अनुपम शरीरकी भक्तिपूर्वक पूजा करनेके लिए, उस स्थानपर जा पहुंचे।"
(अशग कविकृत महावीरचरित्र पृष्ट २७६)

भगवानका निर्वाण सर्वके प्रगटरूपमें हुआ था। कहा जाता है कि जिस समय आपकी परमोत्कृष्ट आत्मा अवशेष अघातिया कर्मोंका नाश करके लोकशिखिरपर स्थित सिद्ध शिलाकी ओर जा रही थी, उस समय कृष्णपक्षकी रात्रिका अन्धकार होते हुए भी एक अपूर्व दैदीप्यमान प्रकाश चहुंओर फैल गया था, समस्त लोकमें एक अद्भुत चमत्कार दृष्टिगोचर होने लगा था, जिससे ऊर्ध्व, मध्य एवं पाताल लोकके प्राणियोंको भगवानकी निर्वाण प्राप्तिका शुभ समाचार ज्ञात हो गया था; जैसे कि महावीरचरित्रके उक्त कथनसे व्यक्त है। समुद्रने भी अपूर्व गर्जन प्रारम्भ कर दी थी। पृथ्वी जरा कम्पित हो गई थी। देवलोकके देवप्रासादोंमें घंटे आदि स्वयं बजने लगे थे। देवोंने आकर भगवानकी पूजा करके उनके शरीरकी अन्त्य क्रिया की थीं, और फिर वे अपने२ स्थानको वापस गए।

श्वेताम्बर आम्नायके ग्रन्थोंसे प्रकट है कि, जिस पवित्र स्थानसे भगवान महावीरको मोक्षलाभ हुआ था, वहांपर एक स्तूप इस पवित्र दिनकी स्मृतिके स्मारकरूपमें निर्मित कर दिया गया था। भगवानकी निर्वाणप्राप्तिके उपलक्षमें उत्तरीय भारतके काशी, कौशलके १८ राजागणोंने और मल्लगणतंत्र संघके ९ राजाओंने और लिच्छावि संघके ९ राजाओंने मिलकर उस दिन दीपक जलाए थे और हर्ष मनाया था। पावापुरीमें भी राजा हस्तिपालने दीपावली उत्सव किया था। प्रत्येक गृहप्रासाद तडाग आदि दीपकोंके प्रकाशसे खूब चमचमाते नजर आरहे थे। मानो यही व्यक्त कर रहे थे कि "यथार्थ ज्ञानका प्रकाश तो अब संसारमें नहीं है परन्तु

पौद्गलिक प्रकाश अपना विकास दिखा रहा है।" यह दीपावली (दिवाली)का उत्सव आजसे करीब साड़े चौवीस सौ वर्ष पहिले ईसासे पूर्व संवत् ५२७ में भारतवासियों द्वारा परम हर्ष और आनन्दसे मनाया गया था, जो आजतक अपने उसी रूपमें प्रचलित है, यद्यपि उसकी असलियत भुला दी गई है। हरिवंशपुराणके निम्न श्लोक इसी बात बातको अच्छी तरह प्रगट कर देते हैं, अर्थात्:—

ज्वलत्प्रदीपालिकया प्रवृद्धया,
सुरासुरैर्दीपितया प्रदीप्तया।
तदास्म पावानगरी समंततः,
प्रदीपिताकाशतला प्रकाशते॥ १९॥ ३३॥
ततश्च लोकः प्रतिवर्षमादरा,—
त्प्रसिद्ध दीपालिक्यात्र भारते।
समुद्यतः पूजयितुं जिनेश्वरं,
जिनेन्द्रनिर्वाणविभूति भक्तिभाक्॥ २१॥ ६६॥"

अर्थात्—उस समय भगवान महावीरके निर्वाण कल्याणके उत्सवके समय सुर असुरोंने महादेदीप्यमान जहां तहां दीपक जलाये—रोशनी की जिससे कि पावानगरी अति सुहावनी जान पड़ने लगी और दीपकोंके प्रकाशसे समस्त आकाश जगमगा उठा॥१९॥ भगवानके निर्वाण दिनसे लेकर आज तक भी जिनेन्द्र महावीरके निर्वाण कल्याणकी भक्तिसे प्रेरित हो लोग प्रतिवर्ष भरतक्षेत्रमें दिवालीके दिन दीपोंकी पंक्तिसे उनका पूजन स्मरण करते हैं॥ २१॥

भगवानके निर्वाणोपलक्षके शुभ स्मारकमें प्रचलित भारतके सर्वोपरि जातीय त्यौहारकी असलियत लोगोंने किस तरह भुलादी है, उससे भारतवासियोंके आत्मगौरव विस्मृतिका पता हृदयको विह्वल करदेता है। कितने पवित्र उच्च आदर्शके स्मारकमें हर्ष मनाना—दीपक जलाना; और कहां उसी समय आसुरी प्रवृत्तियों (द्यूतरमण आदि)में प्रवृत्त हो जाना! भारतवासियो! अपनेको पहिचानों! अपने आदर्श भगवान महावीरके चारित्रका अनुकरण करो; जिसका कि उत्कट प्रभाव आपके पूर्वजों पर इस प्रकार पड़ा था कि उन्होंने भगवानकी पवित्र स्मृतिमें एक जातीय त्योहार नियत किया था।

जिन विज्ञ पाठकोंने भगवानकी निर्वाणप्राप्तिके शुभस्थानके दर्शन करनेका सौभाग्य नहीं पाया है, उनके लिए मि० जुगमन्दरलाल जैनी० एम० ए० बैरिष्टरादिका निम्नवर्णन पावापुरीका परोक्ष दर्शन करावेगा। आप लिखते हैं कि "सीमित फैलावका छोटासा ग्राम, अधिकांशमें मिट्टीके गृहोंसे पूर्ण पावापुरी अपने साधारण रूपमें प्यारी जगह तो है ही, परंतु धार्मिक संबंध होनेके कारण वह और भी प्यारी है। जैन यात्रियोंके लिए वहां कई धर्मशालाएं हैं। दिगम्बर और श्वेताम्बरियों द्वारा निर्मित करीब ५—६ मंदिर हैं। पुरुष और महिला समाजके बहुतसे यात्री वहां जाते हैं, परन्तु खासकर दिवालीके दिन उनकी संख्या अधिक होती है। इसी पवित्र दिन भगवानने मोक्ष प्राप्त की थी। और इसके पश्चात् मार्च मास तक यही दशा रहती है। उपरान्तमें यात्री घट जाते हैं। मुख्य मंदिर जिसमें भगवान महावीरके पवित्र चरण-चिह्न

विराजमान हैं, कमलपत्रों और अन्य प्रकारकी जलजलता-बछरियोंसे अलंकृत एक तालाबके मध्य अवस्थित है। पानीके मध्य अनेक मछलियां तैरती नजर आती हैं; और उनका रतिपूर्ण तैरना मनोरंजनका एक सलौना दृश्य है। कभी २ एक बड़ी मछली छोटी मछलियोंके गिरोहपर झपटकर उन्हें तितर वितर करके पानीमें भीतर दौड़जानेके लिए बाध्य करती है। इस समय तालाबमें कमल नहीं खिल रहे थे, परन्तु यह अनुमान करना कठिन नहीं है कि कैसा न चित्ताकर्षक दृश्य तलावका होजाता होगा जब श्वेत और रक्तवर्णके कमलदल उसकी सतहको अलंकृतकर देते होंगे, एवं उसकी स्वच्छ तलीमें मछलियँा कमलोंकी जड़ोंके तन्तुओंमें किल्लोलें करतीं तैरतीं दिखाई पड़ती होंगीं। सूर्य्य भी उस समय उस जलबिन्दुको जो मछलियोंके किल्लोलमय नृत्यसे कमलदलपर आन पड़ा हो, अति मनोहर गुलाबी वर्णके मोतीमें परिवर्तित करता नजर आता होगा। हमारे भगवानके पवित्र मंदिर तक पत्थरका पुल वन्धा हुआ है, जिसके द्वारा वहां पहुंचा जाता है। इस मंदिरमें एक छोटी कोठरी है, जिसमें पूर्वकी ओर मुख किए तीन ताक हैं। इन ताकोंके मध्यवाले ताकमें हमारे अंतिम भगवानके पवित्र चरण-चिन्ह अंकित हैं। इस ताकके सीधे हाथवाले ताकमें भगवानके गणधर इन्द्रभूति गौतमकी और उसके दाई ओर दूसरे गणधर सुधर्म्माचार्यकी चरणपादुकाएं प्रतिष्ठित हैं। यह दोनों ही महात्मा भगवान महावीरके जीवनकालमें हुए थे। और भगवानके निर्वाणकालके ६२ वर्ष उपरान्त पावासे ही मोक्षको प्राप्त हुए थे। इन पवित्र चरणचिन्होंके दर्शन करनेसे जिस शांति और शुद्धिका आनन्द मिलता है

वह साक्षात् अनुभवसे ही अन्दाजा जा सक्ता है।"

"....हम आशा करते हैं कि हमारे विद्वान् मित्रगण अपने फालतू समयको अन्यथा व्यर्थ न जाने देंगे, बल्कि पावापुरीकी यात्रा करके भगवानके परोक्ष परन्तु साक्षात् चरणों तले बैठनेका सौभाग्य प्राप्त करेंगे, जिनकी प्रकाशमान उँगलियां आज भी सना-तन मार्गको व्यक्त कर रही हैं और जिनकी हितमितपूर्ण वाणी अब भी व्यथित यात्रीको शांति, सुख और सत्यके पवित्र देशकी ओर पग बढ़ानेको ललचारही है!"

वस्तुतः पावापुरीका साधारण पर मनमोहक सौन्दर्य आत्मामें एक अपूर्व उत्साह भरनेका काम करता है। उसका विशेष अनु-भव और महत्व उन्हीं लोगोंको माल्स हो सक्ता है, जिन्होंने अपनी आत्माका स्वरूप साक्षात् अनुभव द्वारा देख लिया है। उनके निकट—भगवानके पवित्र चरणोंके समीप बैठना मानो स्वर्गीय सुखका अनुभव करना है। वहां बैठना क्या है? बल्कि मुक्तिके द्वारके ताले खोलना है। वहां स्थान ही धन्य है—पवित्र है, जहां प्रभूके चरण चर्चित हैं। और—

उधर आते पग उधार, मस्तकसे नमि लेना!
दरशन कर पवित्र चरणका, स्वातम लखलेना!
है वह पावन ठौर, जहाँ है महिमा दिखती!
उस सम और न ठौर, मही जहाँ सुन्दर दिखती!

(३१)

भगवानका दिव्योपदेश और निर्मल चारित्र।

" History knows no chapters so beautiful and noble as those which tell of the coming of the great prophets and founders of religions to the men of their time......They tell how great new thoughts of eternal things came to men through the human medium of a noble prsonality, how like magnets they drew to the new teacher, the flower of the noble youth of the time, who followed the Master—

" Learned his great language, cought his clear accents,
Made him their pattern to live and to die."

— D. S. Cairns.

मि० कैरन्स उक्त शब्दोंमें किस उत्तमतासे भावको व्यक्त करते हैं कि इतिहासमें कोई भी प्रकरण ऐसे प्यारे और उत्तम नहीं है जैसे कि वह जिनमें उस समयके किसी आचार्य वा धर्मके संस्थापकके आगमनका वर्णन किया गया है! लोग उन महात्माओंकी निर्मल वाणीको सुनकर उनके चरणोंमें चलकर अपनेको कृतार्थ मानते हैं। ऐसे महात्माओंके चारित्र और उपदेशके वर्णन करनेका साहस करना दुस्साहस मात्र है, परन्तु जबतक कि किसी भी मतप्रवर्तककी इन व्यक्तिगत बातोंपर प्रकाश नहीं पड़ता है, तबतक उसका महत्व नजरोंमें इस वजहसे नहीं बढ़ जाता है

कि उसकी मान्यता और भक्ति एक बड़े और गण्यमाण्य मनुष्य समुदायने की थीं। वास्तवमें चारित्र संसारमें एक बड़ी वस्तु है। अस्तु।

भगवान महावीरके चारित्रकी उत्कृष्टता और निर्मलताका दिग्दर्शन कराना कोई साधारण कार्य नहीं है। वे तीर्थंकर थे और अन्तमें साक्षात् चारित्ररूप थे। अर्हंतके छयालीस गुण उनमें विराजमान थे। वे सशरीरी सर्वज्ञ बुद्ध—परमेश थे। परमात्माके सम्पूर्ण गुण उनमें दृश्य थे। उनका उल्लेख करनेको शब्द पर्य्याप्त नहीं हैं। परन्तु उनके पवित्र जीवनपर दृष्टि रख इस विषयमें हम निम्नप्रकार कुछ प्रकाश डालेंगे।

कहा जाता है कि महात्माओंके चारित्रकी उत्कृष्टता प्रकट करनेवालीं तीन बातें हैं; अर्थात् शारीरिक बल, मानसिक उत्तमता, और नैतिक चारित्रकी पवित्रता। अस्तु, हम देख चुके हैं कि भगवान महावीरका शारीरिक बल अनन्त था। उनका शरीर सर्वोपरि उत्कृष्ट और उत्तम था, देखनेमें सुन्दर था और सुवासित था। सात हाथका स्वर्णके वर्णका था जिसके अपरमित बलसे भगवानने मत्त हाथीको पकड़ लिया था। भगवान जीवनपर्यन्त बालब्रह्मचारी रहे थे।

भगवानकी मानसिक उत्कृष्टता इसीसे प्रकट है कि वह जन्मसे ही मति, श्रुति और अवधिज्ञानके धारक थे। और दीक्षाग्रहण करनेके उपरान्त आपको अवशेष मनःपर्यय और केवलज्ञानकी प्राप्ति हो गई थी। योग द्वारा आपने ज्ञान प्राप्त किया था, जो अनन्त यथार्थ और सर्वव्यापक था। आप एक बड़े प्रभावशाली अनुपम वक्ता भी थे। आपके मुखसे सदैव यथार्थ

सत्यके अमृतकी वर्षा होती थी। आपके नैतिकचारित्रके विषयमें कहना होगा कि आप साक्षात् शील संयमकी प्रति--मूर्ति थे। आप एक उत्कृष्ट धर्मप्रचारक थे। धर्मका स्वरूप स्वयं इच्छा बिना ही आप द्वारा वस्तुस्वरूपमें प्रगट होता था। और उपदेशसे उदाहरण विशेष प्रभावक होता है, इसलिए जिस यथार्थ नियम व सिद्धान्तका आप प्रचार करते थे, वह स्वयं आपके विमल चारित्रसे प्रगट हो जाता था अर्थात् जिस धर्म और आचारका आपने निर्दर्शन कराया था, उसपर आप स्वयं चल चुके थे। उसका स्वरूप आपके चारित्रसे दर्शाता था। सहिष्णुता और संतोष भी आपमें अपूर्व था। दुष्ट जीवोंके दुष्ट व्यवहारसे आप किंचित् भी विचलित नहीं होते थे। हम देख चुके हैं कि रुद्रने आपको ध्यानसे विचलित करनेके लिये कितना प्रयत्न न किया था, परन्तु इनकी अपूर्व संतोषवृत्तिके समक्ष उसे नतमस्तक होना पड़ा था। श्रावकावस्थामें आपकी अपने मातापिताओंके प्रति गाढ़ भक्ति थी। और आप एक परम आनन्दकारी सुपुत्र थे, यह इसीसे प्रगट है कि आपने मातापिताकी सम्मतिसे दीक्षातक ग्रहण की थी। इन्हीं जैसे अपूर्व गुणोंके कारण ही भगवान महावीरने परमोत्कृष्ट तीर्थकालकी प्रवृत्ति की और स्वयं विशाल परमात्मपदको प्राप्त हुए थे।

"श्री जिनसेनाचार्यकृत हरिवंशपुराण" (पृष्ट १८) के निम्नवर्णनसे भगवानके चारित्रप्रभावका हमको यथार्थ दृश्य प्रगट हो जाता है। वहां लिखा है कि "जिन महानुभावोंने भगवान महावीरका वचन सुना या उन्हें प्रत्यक्ष देखा उनकी प्रवृत्ति मिथ्या धर्मोंसे सर्वथा हटगई ॥ ९ ॥ मलमूत्र रहित शरीर १, स्वेदका

अभाव (पसीना न आना) २, दूधके समान श्वेत रक्त ३, वज्र-वृषभनाराचसंहनन ४, समचतुरस्रसंस्थान ५, अद्भुतरूप ६, अतिशय सुगंधता ७, एक हजार आठ लक्षणयुक्त शरीर ८, अनंतबल ९, और प्रियहितकर वचन १०; ये दश अतिशय तो भगवानके जन्मकालसे ही थे परंतु केवलज्ञान प्राप्तिके समय निमेष-उन्मेषरहित सुन्दर लोचन १, नख और केशोंकी वृद्धि न होना २, भोजनका अभाव ३, वृद्धावस्था न आना ४, शरीरकी छाया न पडना ५, परमकांतियुक्त एक मुखका चौमुख मालूम पडना ६, दोसौ योजन तक सुभिक्ष होना ७, प्राणियोंको उपसर्ग और दुःख न होना ८, आकाश गमन ९, और समस्त विद्याओंमें प्रवीणता १०, ये दश अतिशय और भी प्रकट हुये। इसलिये भगवानके रूप देखनेसे और वचन सुननेसे समस्त लोगोंको परमानंद होता था “ १०–१५ ॥ ”+

+ इस बातको पुष्ट करनेवाला वर्णन बौद्धोंके ग्रंथ 'मज्झिमनिकाय' (P. T. S. Vol. I, PP. 92-93.)के निम्नांशमें है। उसमें लिखा है कि “जब बुद्ध राजग्रहमें ठहरे हुए थे तब उन्होंने महानामसे कहा कि 'एक दफे कुछ निग्गन्थ इसिगिलीके पास पृथ्वीपर पड़े तपस्या कर रहे थे। एक सायंकालके समय मैं उनके निकट गया और उनसे वहां उस तरह पड़े रहनेका कारण पूछा। उन्होंने उत्तरमें कहा कि उनके नात्तपुत्त भगवानने (जो सर्वज्ञ, सर्वदर्शी थे) उन्हें बतलाया है कि उनने पूर्व जन्ममें पापकर्म किए हैं उनके निवारणके लिए उन्हें तपश्चरण करना चाहिए। उन्हें मन, वचन, कायसे त्यागको अपनाना चाहिए जिससे भविष्यके पापोंसे छुटकारा मिले'' इससे प्रकट है कि किस तरह उस समय भी लोगोंको भगवानके प्रति श्रद्धान था। और स्वयं म० बुद्धको यथार्थ ज्ञान प्राप्त करनेका श्रद्धान भी उन्हींमें मिला था यह हम पहिले देख चुके हैं।

भगवान महावीर वास्तविक उपासनीय आप्तदेव थे। वह सर्वोत्कृष्ट गुरु थे। इसलिए उनके प्रति विनय भी सर्वोच्चतम रूपमें हमारे हृदयमें विद्यमान है। उनकी उपासना और पूजासे हमारा भाव उनका अनुकरण करनेका है। उनका प्रतिबिम्ब हमें उनके जीवनका साक्षात् अनुभव करा देता है। उनके अविचल ध्यानकी शांतिमुद्रामय मूर्त्ति हमारे पथ-प्रदर्शनका काम देती है। उनकी प्रतिबिम्बकी जो हम विनय करते हैं उसका भाव हमारे निकट उसी तरह है जिसतरह अंग्रेज लोक अपने यहाँ लन्दनके ट्रफलगरस्कायरमें अवस्थित एडमिरल नेलसनकी पाषाण-मूर्तिकी विनय करते हैं। यह मूर्तिपूजा नहीं है, सुतरां आदर्शपूजा है। परन्तु हमारे हत्भाग्य हैं कि इनके दिव्योपदेशको प्रगट करनेवाले यथार्थ ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं। जो कुछ भी हमें इनके विषयमें ज्ञान प्राप्त है वह पूज्य आचार्योंकी कृपाका फल है। उन्होंने जो कुछ कथन किया है वह सर्वज्ञ भगवानके कथनानुसार ही किया है, ऐसा उनके द्वारा कथित ग्रन्थोंसे व्यक्त होता है। इनसे भगवानके दिव्योपदेशका साधारण भाव इस तरह प्रकट होता है:-

"समस्त जीवलोक मोहसे अंध होरहा है। जगतमें वे ही जीव धन्य हैं जिन्होंने शीघ्र ही तृष्णारूपी विषवेलको जड़समेत उखाड़कर दूर फेंक दिया है। नाश या पतन अथवा दुःखोंकी तरफ पड़ते हुए जीवकी रक्षा करनेमें न भार्या समर्थ है, न बन्धुवर्ग समर्थ है, कोई समर्थ नहीं है। फिर भी यदि यह शरीरधारी उनमें अपनी आस्थाको शिथिल नहीं करना चाहता है तो उसकी इस मूढ़ प्रकृतिको धिक्कार है। सेवन किए

हुए इंद्रियोंके विषयोंसे तृप्ति नहीं होती, उनसे तो और भी घोर तृषा ही होती है । तृषासे दुःखी हुआ जीव हित और अहितको कुछ नहीं जानता । इसी लिए यह संसार दुःखरूप और आत्माको अहितकर है । यह जीव संसारको कुशलतासे रहित तथा जन्मजरा वृद्धावस्था और मृत्यु स्वभाववाला स्वयं जानता है, प्रत्यक्ष देखता है और सुनता है तो भी यह आत्मा भ्रान्तिसे प्रशममें कभी रत नहीं है । ” (महावीरचरित्र पृष्ठ १९२-१९३.)

जीवको यथार्थ सुखकी वाञ्छा है, इसलिए वह अपने आत्म-स्वरूपका अनुभव करे—अपनी चहुंओरकी परिस्थितियोंका अवलोकन करे । याद रक्खे कि धर्म ही आत्माको हितकर है । विषयवासनामय इन्द्रियजनित क्षणिक सुख जीवको अहितकर है, उसमें लिप्त होनेके कारण आत्मा संसारमें भ्रमण करता हुआ अनेक प्रकारके क्लेश और बाधाओंका अनुभव कररहा है । अनादिकालसे इन पर पदार्थोंमें रत होकर आत्मा कर्म्मोंको अपना रहा है । और इस प्रकार परतंत्रतामें पड़ा हुआ अपनी स्वाभाविक निजाधीन स्वतंत्रताके लिए तड़फड़ा रहा है । वह अपने ही अनुभवसे निश्चय कर ले कि यथार्थमें वह स्वयं शुद्ध आत्मा है, क्योंकि ‘यः अतति गच्छति जानाति सः आत्मा ’ इस व्युत्पत्तिसे जो जाननेवाला है वही आत्मा है । शरीर जाननेवाला नहीं है । आत्मा ही जाननेवाला है । इसलिए आत्मा शरीरसे भिन्न है; जिसमें ज्ञान नहीं है और जो पुद्गलके परमाणुओंसे मिलकर रचा हुआ है ।

धर्म आत्माका स्वभाव है ! इसलिए वह जगतका सार है, सर्व सुखोंका प्रधान हेतु है और परमसुखको प्राप्त करानेवाला है,

संसार परिभ्रमणमें पड़ी हुई संसारी आत्माओंके दुःख पाशोंको हटानेवाला है और उन्हें सच्चे मार्गमें लगानेवाला है। सम्यक्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र सच्चा मोक्षका मार्ग है। "आत्मा आप ही अपनेको संसारमें अथवा आप ही अपनेको निर्वाणमें ले जाता है। इस लिए निश्चयसे आत्माका गुरु आत्मा है दूसरा कोई नहीं है।' और यही आत्मा अपनी यथार्थ अवस्थामें शुद्धबुद्ध निर्विकल्प अव्याबाधसुख और शांतिसे पूर्ण है। उसमें सम्पूर्ण जगतका अनन्तज्ञान विद्यमान है।' सुतरां यह अपने अनुभवमें चारित्र-द्वारा ले आया जा सक्ता है इसलिए निजात्माके स्वभावमें ही रमण करना योग्य है। सर्व वाह्यविकल्पोंका इससे कुछ सम्बन्ध नहीं है। किंतु संसारी भीरुआत्मा सहसा अपने कर्मजनित मोहको शरीरसे हटा नहीं सक्ती इसी लिए उसे चाहिए कि सर्वज्ञ कथित तत्त्वोंमें पूर्ण श्रद्धा रक्खे, उनका ज्ञान प्राप्त करे और आत्मोन्नतिके कारणभूत श्रावकके व्रतोंका पालन करे, जिससे उसकी आत्मा अपने निजत्वको प्राप्त होनेमें अग्रसर होवे।

मनुष्य शरीरमें जो आत्मा है, वह कर्मोंकी कालिमासे कलंकित है। जिस प्रकार खानसे निकले हुए स्वर्णमें उसके स्वर्णमय गुण प्रकट नहीं हो सके; उसी प्रकार यह संसारी आत्मा जो अनादिकालसे अपनी अशुद्धावस्थामें है, अपने परमात्मगुणोंको प्रकट नहीं कर सक्ती। यह इस अशुद्धावस्थाके कारण संसारके मध्य देव, मनुष्य, नरक और तिर्यञ्च नामक चार गतियोंमें भ्रमण कर रही है—नाना दुःख सह रही है। क्रोध, मान, माया और लोभके वशीभूत हो अपने स्वाभाविक गुणोंके ऊपर उत्तरोत्तर मैल

चढ़ाती जारही है। वह बाह्य बातोंमें पगीहुई परपदार्थोंको अपना रही है, इसलिए वह बहिरात्मा है। जब काललब्धिकी शुभप्राप्तिसे इस वहिरात्माको अपना भान होजाता है और वह जान जाती है कि मैं अपने पौद्गलिक शरीरसे नितान्त विभिन्न हूं; मेरा पौद्गलिक पदार्थोंमें कुछ भी संबंध नहीं है; मैं तो एक विनिर्मल, शुद्ध स्वभावकाधारी परमसुखी आत्मा हूं; तब वह इस भेदविज्ञानको पाकर अन्तरात्मा होजाती है। अन्तरात्म बुद्धिको प्राप्तकरके जब वह आत्मा अपने भेदविज्ञानके निर्मल ज्ञानको उत्तरोत्तर बढ़ाती जाती है, और निर्विकल्प ध्यान करती है तब ही "क्षपकश्रेणीमें आरूढ़ होकर चारित्रमोहका नाश करती हुई, बारहवें क्षीणमोह गुणस्थानमें पहुंच जाती है। वहां कुछ ठहर एकत्त्व वितर्क अविचार शुक्लध्यानके वलसे स्वयं ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अंतराय कर्मोंका नाश करके सयोगकेवली परमात्मा होजाती है। तब उस अवस्थामें उन्हें सवज्ञ वीतराग हितोपदेशी आप्तवक्ता या अरहन्त कहते हैं। फिर आयु पर्यन्त उनके विहार व धर्मोपदेशसे संसारी जीवोंका अज्ञान मिटता है। पश्चात् वही अर्हन्त शेष चार अघातियोंसे छूटकर सिद्ध परमात्मा होजाते हैं। इन्हींको सकल और निकल परमात्मा तथा जिनेन्द्र कहते हैं।" यही सिद्धात्मा लोकके शिखिर पर अवस्थित दूसरे प्रकारके जीव हैं। इस प्रकार दोनों प्रकारके जीव अनादिनिधन अकृत्रिम हैं, और अपनी शुद्धावस्थामें सर्वदर्शी और सर्वानन्दपूर्ण हैं, एवं अपरिमति वल वीर्य्य संयुक्त हैं। उनकी उत्पत्ति पुद्गलसे नहीं है। वे परमोत्कृष्ट चेतना स्वरूप हैं, अमूर्तीक हैं, इन्द्रियजनित नहीं है और पूर्ण निराकार भी नहीं हैं,

क्योंकि उनकी सत्ता सिद्ध है। परन्तु संसारी जीव सदैवसे शरीर पुद्गलसे सम्बंधित है इसलिए अपने स्वाभाविक गुण अनन्तज्ञान, अनन्तवल और अनन्त सुखके उपभोगसे वंचित है।

जो संसारी आत्माऐं चार गतियों देव, मनुप्य, नारकी और पशुमें भ्रमणकर रहीं हैं, उनके संसारी जीवनकी रक्षाके लिए दश प्राण हैं— तीन बलप्राण, पांच इन्द्रिय प्राण, एक आयुप्राण और एक उच्छ्वास प्राण। कायबल, वचनवल और मनोबल; तीन बलप्राण हैं। पांच इन्द्रिय प्राण इस प्रकार हैं अर्थात् स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द। आयुप्राण जीवनकी उमर व्यक्त करता है। और उच्छ्वासप्राण श्वासोस्वासकी क्रिया है। जिन संसारी जीवोंके एक बल प्राण, एक इन्द्रिय प्राण, एक २ आयु और उच्छ्वासप्राण होते हैं वे स्थावर जीव कहलाते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति स्थावर जीव हैं। अवशेषमें क्रमवार प्राणोंको रखनेवाले त्रस जीव कहलाते हैं। यह सैनी अर्थात् ज्ञानवान और असैनी अर्थात् ज्ञान जिनका मन्द पड़ा हुआ है ऐसे दो प्रकारके होते हैं।

जीवात्माके साथ जो पौद्गलिक संवन्ध है वह निर्जीव पदार्थ है, अजीव तत्व है, चेतना रहित है, और पांच प्रकारका है (१) पुद्गल (२) धर्म (३) अधर्म (४) आकाश और (५) काल। अनादिनिधन अकृत्रिम संसारका कार्य इन पांच पौद्गलिक द्रव्यों और छठी (६) जीव द्रव्यके संयोगसे होता है। पुद्गलद्रव्य संसारकी श्रष्टिकी जड़ है। यह स्पर्श, रस, गंध, वर्णमय है जिनका शुद्धात्म द्रव्यमें अभाव है, पुद्गल परमाणुओं और स्कन्धोंमें विभक्त हैं। आकाश जीवादि पदार्थोंको स्थान देनेके लिए आवश्यक है, तो

काल भी उतना ही चलाव वढ़ावके लिए आवश्यक है। धर्म, अधर्म आत्माको चलनेमें व अवकाश ग्रहण करनेमें क्रमशः सहकारी हैं।

जीवात्मा सदैवसे कर्ममलसे मिश्रितावस्थामें है, जिस प्रकार आक्सीजन और नाइट्रोजेन गैसें मिश्रितावस्थामें जलरूप हैं। आत्माकी इस मिश्रितावस्थामें हर समय हलनचलन उत्पन्न होती रहती है। हर समय उसमें कर्ममल आता और जाता रहता है—कर्मोके आगमनको आस्रव कहते हैं। आस्रवके उदयरूपमें आत्मा पुद्गलपरमाणुओं कार्माणवर्गणाओंको स्वतः ही आकर्षित करने लगता है, और इसके विविध कषायोंवश ये परमाणु आत्मासे मिल जाते हैं, जिससे आत्माके निजगुण ढंक जाते हैं और वंध बन्द जाता है। अनादिसे ही इन कर्मोके आश्रव और वन्धसे दूषित होनेके कारण जीवात्मा अनादिसे ही जन्ममरण धारणकर भ्रमण करता फिर रहा है। यह कर्मबंध आत्मा और पुद्गलके मेलसे होते हैं। और इन्हींसे जीव अपनी स्वाभाविक पूर्णता और स्वतंत्रतासे हाथ धो बैठता है। इस प्रकार वंधयुक्त कर्म जंजीरोंसे जकड़ी हुई आत्मा उस चिड़ियाके सदृश है जिसके पंख सी दिए गए हों, जिसके कारण वह उड़ नहीं सक्ती है। आत्मा वा जीव वास्तवमें चिड़ियाकी तरह स्वतंत्र है। परन्तु पुद्गलके सम्बन्धके कारण अपने पंख कटे हुए सा समझता है और अपने स्वाभाविक सुख व स्वतंत्रताका उपभोग नहीं कर सक्ता है। आत्मामें कर्म वर्गणाऐं आस्रवित होकर कालस्थितिके लिए मिल जाकर ठहर जातीं हैं। इस लिए आश्रवसे वन्ध होता है। निर्वाण अथवा मोक्ष प्राप्त करनेके पहिले इन कितने ही प्रकारके बंधनोंको तोड़ना पड़ता है।

पश्चात् आत्मामें कर्ममलको एकत्रित होनेसे रोकनेवाला आस्रवका प्रतिकारक संवर होता है। 'प्रत्यक्षतः जबतक आत्मासे कर्मबन्धकी पुद्गलवर्गणाऐं दूर नहीं कर दी जांयगी, तबतक मुक्ति प्राप्त नहीं होसक्ती है। अतः संवर अर्थात् हर समय आत्मामें आनेवाली कर्मवर्गणाओंको आस्रवित न होने देना मुक्ति प्राप्त करनेके मार्गमें प्रथम पादुकाकेरूपमें है। अस्तु, जब पुद्गलवर्गणाओंका आश्रव होना रुक जाता है, तब दूसरी श्रेणीमें उन पूर्वसंचित कर्मवर्गणाओंको एक एक कर निकालना रह जाता है। यही दूसरी श्रेणी निर्जरा तत्व है। जब समस्त कर्मबंध तोड़ दिए जाते हैं और आत्माका पुद्गलसे किसी प्रकारका सम्बन्ध नहीं रहता तब आत्मा अपने स्वाभाविक गुण स्वतंत्रता, सुख और केवलज्ञानका अनुभव करती है; अर्थात् मोक्षको प्राप्त कर लेती है।'

इस प्रकार पुद्गल और मूर्तीक पदार्थोंसे वेष्टित संसारके जीव चेतन पदार्थ हैं। इनमें पूर्णपने और सर्वज्ञताकी शक्ति विद्यमान है। ये शक्तियां उन्हें अपने सम्यक्त्वसे प्राप्त होती हैं। इन जीवोंके अनन्त दर्शन और अनन्त सुख संयुक्त पूर्णपनेका अभाव स्वोपार्जित कर्मोदयके कारण हुआ है अर्थात् इन जीवोंने स्वतः ही पर पदार्थोंको अपनाया है, जिसके कारण वे अपने ही कृत्योंवश इन कर्मरूपी पुद्गलवर्गणाओंसे बांधे गए हैं और अपने यथार्थ स्वरूपसे विमुख हैं। अतः अब केवल यही आवश्यक है कि जीव अगाड़ी अन्य पुद्गल वर्गणाओंका समावेश न होने दे, और जो पूर्वसंचित बंधस्वरूप सत्तामें हैं उनको विध्वंश करदे। जिस समय यह किया उसी समय आत्माकी स्वाभाविक सर्वज्ञता और पूर्णपना

प्राप्त हो जांयगे, और स्वतंत्रता, अतींद्रियता और आनन्दका उपभोग होने लगेगा। इस समुचित प्रणालीका ढंग वैज्ञानिकरूपमें कार्य कारणके सिद्धान्तपर निर्भर है। अतः यथार्थ तत्व केवल सात हैं: (१) जीव, (२) अजीव, (३) आस्रव, (४) बंध, (५) संवर, (६) निर्जरा और (७) मोक्ष।

शुद्ध निश्चयरूपमें आत्मा ही परमात्मा है जैसे प्रारंभमें पहिले कह चुके हैं। अतएव प्रत्येक द्रब्यकी विविध अवस्थाओंके स्वरूप और शक्तिको समझनेके लिए द्रव्यार्थिक शुद्ध निश्चयनय और पर्यायार्थिक अर्थात् व्यवहार नय दृष्टियां है। वस्तुकी यथार्थ स्थितिके पुर्त तक पहुंचनेके लिए स्याद्वादका यथार्थ भाव समझना चाहिए।

'मोह समस्त पापोंकी जड़ है। इससे राग और द्वेषका जन्म होता है। यह फिर आत्मासे उत्तरोत्तर अन्य पापोंको कराते हैं और पापोंसे कर्मबन्ध होता है इसलिए पापोंसे बचनेके लिए इच्छाका निरोध करना चाहिए, रागद्वेषको जलांजलि देना चाहिए। सम्यकचारित्रका पालन करनेके लिए (१) हिंसा, (२) झूठ, (३) चोरी, (४) कुशील, (५) और परिग्रहका त्याग करना योग्य है। यह चारित्र दो प्रकारका है, (१) सकलचारित्र, (२) और विकलचारित्र। इनमेंसे सकलचारित्रके महाव्रतोंका पूर्णरूपेण पालन मुनियों द्वारा होता है, जिन्होंने सांसारिक वस्तुओंका ममत्व त्याग दिया है। विकलचारित्रके अणुव्रतोंका एकदेश पालन सांसारिक कार्योंमें व्यस्त गृहस्थोंद्वारा होता है।

श्रावक महाव्रत धारण करनेके लिए क्रमसे श्रेणी श्रेणी

अपने चारित्रको उज्ज्वल बनाता जाता है। इनमें ही व्रतोंकी पालना होती है। यह व्रत बारह हैं जो तीन विभागोंमें विभक्त हैं, अर्थात् (१) अणुव्रत (२) गुणव्रत (३) शिक्षाव्रत। अणुव्रत पांच हैं। प्रथम अहिंसाणुव्रत अर्थात् किसी भी एक इन्द्री या अधिक प्राणोंवाले जीवको कृत, कारित, अनुमोदना द्वारा संकल्पसे मन, वचन कायकी अपेक्षा दुःख न देना (२) सत्याणुव्रत अर्थात् स्वयं स्थूल असत्य न बोलना और न दूसरोंसे असत्य बुलवाना और न ऐसा सत्य ही बोलना जिससे किसीके प्राणोंको दुःख हो। (३) अचौर्याणुव्रत अर्थात् परकी वस्तुको ग्रहण न करना अथवा दूसरेको नहीं देना। (४)शीलाणुव्रत अर्थात् परस्त्री व पुरुषोंसे विषयभोग मन, वचन, काय द्वारा न करना और (२) परिग्रह परिमाणाणुव्रत अर्थात् गृहस्थको अपनी इच्छाको सीमित करनेके लिए सांसारिक वस्तुओं सम्पत्ति, वस्त्र, अनाज आदिके रखनेकी सीमा बांध लेना। मुनि इन्हीं व्रतोंको पूर्णरूपमें पालते हैं। वे जीवके किसी प्राणको किसी तरह भी दुःख नहीं देते हैं। और इसी प्रकार शेप व्रतोंका पूर्ण पालन करते हैं।

श्रावकके लिए फिर तीन गुणव्रतोंका पालन है। अर्थात् (१) दिग्व्रत (२) अनर्थदण्डव्रत (३) और भोगोपभोग परिणामव्रत। इनके पालनसे अणुव्रतोंका पालन महत्वपूर्ण सुविधामय होजाता है। अन्तमें श्रावकके अवशेष शिक्षाव्रतोंका पालन और करना पड़ता है, अर्थात् सामायिक, देशावकाशिक, प्रोपधोपवास और वैयावृत। प्रत्येक दिवस निजात्माके स्वभावका मननपूर्वक ध्यान करना सामायिक है। सत्यसिद्धान्त जिनवाणीका अध्ययन करना, कृतपापोंके लिए पश्चाताप करना आदि सामा-

यिकके अङ्ग हैं। देशावश्यक व्रत अपने गमनागमन स्थानको नियत कर लेना है। श्रावक प्रत्येक सप्ताहमें एक दिन निर्जल उपवास करके प्रोषधोपवास व्रतका पालन करता है। वैय्यावृतका पालन करके श्रावक अन्य जीवोंकी सहायता करता है। इस सेवाव्रतके चाररूप हैं: (१) भोजन (२), औषधि, (३) शास्त्र, (४) और अभय (प्राणदान)। परोपकार भावसे तृषित–भुखित जीवोंकी सहायता करना योग्य है। *

श्रावकके चारित्रकी ११ प्रतिमाएं हैं। श्रावक जितनी २ आत्मोन्नति करता जाता है, उतना ही उतना व्रतोंका पालन करना भी बढ़ता जाता है। प्रथम प्रतिमाके धारी दार्शनिक श्रावकको जिन भगवान द्वारा प्रतिपादित यथार्थ धर्ममें पूर्ण श्रद्धा होती है। और वह मोक्षमार्गपर चलनेका अभिलाषी होता है। वह संसारमें अपनी गृहस्थीके साथ रहता हुआ नियमित सीमासे सांसारिक भोगोंका उपभोग करता है और क्रमशः सीडी दर सीडी चढ़ते हुए संसारसे मोह कम करते हुए वही श्रावक ११वीं

* भगवानके बताए हुए इन व्रतोंका पालन यदि समुचित रीत्या संसारमें किया जाने लगे तो उसके सर्व दुःख क्रन्दननाद काफूर हो जांय। प्रत्येक देशके व्यक्ति तब एक सच्चे धर्मरत स्वाधीन और समभावी नागरिक होसकें और सर्व प्राणियोंके स्वत्वोंकी रक्षा समरूपमें कर सकें। सर्वराष्ट्र एक दूसरेको कष्ट पहुंचानेके स्थानमें सहायता करने लगे और मानव समाजकी उन्नति हो उसके सुदिन सामने आ जावें। भारतीयों और खासकर जैनियोंको अपने प्राचीन महापुरुषके उपदेशका पालन करना चाहिए और उसे सर्वमें प्रगट करना चाहिय।

प्रतिमामें पहुंचकर ग्रहस्थाश्रमका त्याग करदेता है और वनमें रहकर साधुधर्मका अभ्यास करने लगता है। इस समय वह गुरुके निकट दीक्षा लेता है, तपश्चरण करता है, भिक्षावृत्तिसे उदरपोषण करता है और केवल एक लंगोटी पहिनता है। अर्थात् वह अब मुनिधर्मके दरवाजेपर पहुंच जाता है, और फिर महाव्रतोंका पालन करनेसे मुनि हो जाता है। अतएव क्रमवार संसारसे ममत्व हटाकर आत्म-मुमुक्षु जीवोंको निर्ग्रन्थरूप धारण करना योग्य है। और अपने स्वाभाविक गुणोंको-परमसुखको प्राप्त करना अभीष्ट है। इसलिए जिन्हें स्वातंत्र्यमें मजा है उन्हें तो तुच्छसे भी तुच्छ वस्तुकी परतंत्रताकी आवश्यक्ता नहीं है। ऐसोंके लिए शरम कोई चीज नहीं है। अतएव आत्मस्वातंत्र्यके प्रेमियोंको वस्त्रोंके झगड़ोंको छोड़कर प्राकृतिक नग्नरूप-सत्यरूप धारण करना चाहिए। पर्वतपर स्वतंत्रतासे निर्भय घूमनेवाले सिंहोंको वस्त्रकी जिस प्रकार आवश्यक्ता नहीं है, उनके लिए वस्त्रका ध्यान ही निर्बलता है, उसी प्रकार आत्म स्वातंत्र्य-पर्वतपर भ्रमण करनेवाले मनुष्योंको भी वस्त्रकी कोई आवश्यक्ता नहीं है। स्वाधीन चेताओंके लिए तो स्वाभाविक नग्नवृत्ति ही है।

"जिन भगवान न तो आज्ञा करते हैं और न प्रार्थना। आज्ञा, प्रार्थना और भय यह तीनों बलाएं उनसे दूर हैं। इसलिए भ्रममें पड़कर लोग भगवानके यथार्थ उपदेशको + समझनेमें गल्ती

\+ भगवान महावीरके पवित्र दिव्योपदेशको एक अजैन विद्वान मि० किशोरलाल घनश्यामलाल मशरूवालाने जिस उचित एवं उन्नत प्रकारसे समझा है वह हम पाठकोंके अवलोकनार्थ प्रकट करते हैं।

करते हैं और ऐशोआराम हीको वे लोग मनुष्यत्व समझ बैठते हैं। कई मनुष्योंने तो आराम ही को मुक्ति माना है। तथैव नीति अनीति, धर्म अधर्मकी कक्षाऐं बनाई हैं, उनके द्वारा आराम–सुखको प्राप्तव्य ठहराकर लौकिक शास्त्रोंकी रचनाकर डाली है और मनुष्योंको इन बंधनोंकी शीतल छायामें साहस,

आप लिखते हैं कि "जृम्भक ग्रामसे भगवान महावीरने अपना उपदेश आरम्भ किया। (आपने कहा) सर्व धर्मोका मूल दया है। परन्तु दयाके पूर्ण उत्कर्षके लिए क्षमा, नम्रता, सरलता, पवित्रता, संयम, संतोष, सत्य, तप, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह, ये दश धर्म सेवन करना चाहिए। ....शान्त, दान्त, व्रत नियममें सावधान और विश्ववत्सल मोक्षार्थी मनुष्य निष्कपटरूपमें जो २ क्रिया करता है उनसे गुणकी वृद्धि होती है। जिस पुरुपकी श्रद्धा पवित्र है उसे शुभ और अशुभ दोनों ही वस्तुऐं शुभ विचारके कारण शुभ रूप फल प्रदान करती हैं।....हे विचारशील पुरुष, जन्मके और जराके दुःखोंको देख। जिस प्रकार तुझे सुख प्रिय है उसी प्रकार सर्व जीवोंको भी है, यह विचारकर किसी भी जीवको मार मत और न दूसरोंसे मरवा। लोगोंके दुःखोंको जाननेवाले सर्वज्ञानी पुरुषोंने मुनियों और गृहस्थों, रागियों और त्यागियों, एव भोगियों और योगियोंके प्रति यह धर्म कहा है 'किसी भी जीवको मारना नहीं, उनपर हुकूमत चलाना नहीं, उनको पराधीन करना नहीं, और हैरान भी करना नहीं।' पराक्रमी पुरुष संकट पड़नेपर भी दयाको छोडते नहीं।...हे मुनि, अंदरमें युद्ध कर, दूसरे बाहरी युद्धकी क्या आवश्यक्ता है? युद्धकी सामिग्री मिलना अति कठिन है।....विवेक हो तो ग्राममें रहते हुए भी धर्म है और वनमें रहते हुए भी धर्म है। विवेक न होवे तो दोनों स्थानोंका रहना अधर्म रूप है।" —देखो 'बुद्ध अने महावीर' पृष्ठ ८८-९१

आनन्द, भयरहित कंगाल जीवनमें रहना सिखाया है। प्रायः मनुष्य ऐसों हीके बीचमें उत्पन्न हुए और ऐसोंहीके विचाररूपी अन्नसे पले हैं। इसलिए इन बन्धनोंको तोड़नेमें वे डरते हैं। परन्तु, लौकिक नीति और लौकिक धर्म तोड़ने-इसका संहार करने और पदार्थोंका सत्यस्वरूप प्रगटकर उससे लोगोंको भड़का हिंम्मतवान बनानेके लिए ही जिन भगवानका उपदेश है। वह प्रत्येक पदार्थको प्रकाशमें लाता है। इससे अन्धकारमें रहनेवाले उसपर यथा-शक्य प्रहार करते हैं। और इसीलिए वह उपदेश आर्योंकी अपेक्षा अनार्योंको भी होता है कि वे सत्यस्वरूप समझें और भड़कें।"

अस्तु, भगवान महावीरका दिव्योपदेश परम विशाल था, उसका कुछ दिग्दर्शन संसारमें प्रसिद्ध अतुल जैन साहित्यसे अब भी प्राप्त है। उपर्युक्त व्याख्यान रूप जो साधारण दिग्दर्शन हैं; वह मात्र उसकी भूमिका कही जा सक्ती है।

(३२)

निर्वाण प्राप्ति-कालनिर्णय।

"पणछस्सयवस्सं पणमासजुदं गमिय वीर णिव्वुइदो।
सगराजो तो कक्की चदुणवतियमहियसगमासं॥"

उक्त गाथाद्वारा त्रैलोक्यसार ग्रंथमें जैनाचार्य श्रीमद् नेमिचन्द्रजी प्रगट करते हैं कि 'महावीर भगवानके निर्वाणके ६०५ वर्ष और पांच महींने पीछे शकराजा हुआ और उसके ३९४ वर्ष पीछे कल्कि हुआ।' इससे यह प्रगट होता है कि शक संवतसे ६०५ वर्ष पहिले भगवान महावीरने मोक्षलाभ किया था।

शक संवतका प्रारंभ सन् ७८ ई० से होता है। इसलिए भगवान महावीरको निर्वाणकी प्राप्ति ईसासे पूर्व ५२७वें वर्षमें हुई थी; जैसा कि सम्पूर्ण जैन सम्प्रदाय आजकल मानती है।

इसी मतकी पुष्टि अन्यग्रन्थ भी करते हैं। आर्यविद्या सुधाकरमें उल्लेख है कि राजा विक्रमादित्यसे ४७० वर्ष पहिले भगवान महावीरको मोक्षलाभ हुआ था। यथा—

ततः कलिनात्रखंडे भारते विक्रमात्पुरा।
खमुन्यं वोधि विनते वर्षे विराह्वयो नरः ॥ १ ॥
प्राचारज्जैनधर्मं वोद्धधर्मं समप्रभम्।

राजा विक्रमादित्यका संवत ईसासे पूर्व ५७ वर्षसे प्रचलित होता है! इस प्रकार भी भगवानके मोक्षलाभका समय वही ५२७ बैठता है।

इससे भी प्रकट प्रमाण इसकी पुष्टिका दिगम्बर आम्नायकी सरस्वती गच्छकी पट्टावली हैं, जिनका उल्लेख हॉर्नलने Indian Antiquary ol XX. P. 341 and Vol. XXI P. 75 पर किया है। पट्टावलीकी भूमिकामें लिखा है कि:—

(२०) वहुरि श्री वीर स्वामीकूं मुक्ति गयें पीछैं च्यारसैसत्तर ४७० वर्ष गयें पीछैं श्रीमन्महाराज विक्रम राजाका जन्म भया।....

इससे भी भगवानके निर्वाणकी तिथि ईसासे पूर्व ५२७ की सिद्ध होती है। और पट्टावली 'अ' की भूमिकाकी निम्न गाथा भी इसी वातको व्यक्त करती है (१३)....सत्तरि चदुसदजुत्तो तिणकाला विक्कमो हवई जम्मो।

इन सब प्रमाणोंसे जो कि 'Life of Mahavira'में दिए हुए हैं, वीरनिर्वाणाब्द ईसासे पूर्व ५२७ वें वर्षसे प्रारम्भ होता प्रमाणित होता है। और उसमें अगाड़ी लिखा है कि कल्पसूत्र, महावीरपुराण आदि ग्रन्थोंसे प्रकट है कि भगवान महावीर ७२ वर्ष पर्यन्त जीवित रहे थे। जिनमेंसे ३० वर्ष वे श्रावकके रूपमें रहे थे और अवशेष ४२ वर्षोंमें १२ वर्ष मुनिरूपमें और ३० वर्ष तीर्थङ्कर रूपमें इस प्रकार भगवानका जन्मकाल ईसासे पूर्व ५९९ का सिद्ध होता है। और भगवानका समय ईसासे पूर्व ५९९ से ५२७ प्रगट होता है। किन्तु अब कुछएक विद्वान इस कालसे सहमत नहीं हैं। उनके निकट सन् ई०से ५४६-४ पहिले महावीर भगवानको मोक्षलाभ हुआ प्रकट होता है परन्तु उनका यह मत किसी बलवान प्रमाणके आधार पर नहीं हैं। इसलिए निर्वाण प्राप्तिका प्रचलित संवत् २४५० ही मानना युक्तिसंगत है।

उधर म० बुद्धके मृत्युकालको डॉ० जे० एफ० फ्लीटने खूब मनन करके ता० १३ अक्टूबर ईसासे पूर्व ४८२में निश्चित किया है। और भगवान महावीरका निर्वाण म० बुद्धकी मृत्युके पहिले हो चुका था। इसलिए ५२७ वर्ष ईसवी सनसे पूर्व भगवान महावीरका निर्वाण काल ठीक जंचता है। श्री जिनसेनाचार्यने हरिवंशपुराणमें स्पष्ट कहा है कि शक संवत् ६०५ से पहिले अर्थात् ५२७ वर्ष खीष्टाब्दसे पूर्व महावीरस्वामीने मोक्षलाभ किया था।

(३३)

भगवानके संघकी अंतिम दशा और श्वेताम्बर आम्नायकी उत्पत्ति ।

"...A schism was parpetrated, which, at one particular era atleast, that in which Buddhism fell and the modern saiva system of Hinduism was established, made India a field of contention to opposing religious sects, and with the extermination of that religion, which has been dominent during the period of its greatest glory, occasioned the loss of those historical documents, which recorded the largeness and expeoits of the sovereigns of a hostile faith."

:— Rev : J. Stevenson. D. D.

डॉ० स्टीवेन्सन साहब उक्त शब्दोंमें ठीक ही कहते हैं कि आपसमें एक ऐसा मनोमालिन्य बढ़ रहा था, जिसने भारतवर्षमें कमसे कम उस समयमें जब कि बौद्ध धर्मका ह्रास होरहा था और साम्प्रतके शैव हिन्दू धर्मकी नींव जमाई जारही थी, परस्पर प्रतिस्पर्धक धार्मिक मतोंको एक दूसरेके प्रति लड़ने झगड़नेमें व्यस्त कर दिया था और जिसकी कृपासे जो अपने अभ्युदय कालमें प्रख्यात धर्म था उसका अन्त होगया, एवं साथमें उन ऐतिहासिक प्रमाणोंका नाश होगया जिनसे प्रतिपक्षी धर्मकी सत्कीर्तियों पर प्रकाश पड़ता था। वास्तवमें इस धार्मिक वैमनस्यके कारण प्राचीन

भारतकी यथार्थ स्थितिका पता लगाना कठिन हो रहा है। सम्राट् अशोककी हजारों गिरिलिपियोंमेंसे आज केवल नाममात्रकी संख्यामें वे अवशेष हैं। जैन धर्मके अतुल प्राचीन साहित्यको हिंदू धर्मके प्रख्यात आचार्य शङ्कराचार्यने जल गर्भकरके सब विदेशी यवन आक्रमणकों ने उन्हें अग्निदेवीको समर्पित करके, साथ ही मूषकों व क्रमिकोंने अपनी कृपा करके हमको बिलकुल ही अज्ञानान्धकारमें डाल दिया है। परन्तु जो कुछ भीसामग्री उस जमानेकी उपलब्ध है उससे हमें पता चलता है कि जैनधर्मके बाह्य शरीरमें एवं हिंदू और बौद्धधर्मोंमें पूर्णरूपान्तर इन बीचकी शताब्दियोंने लाकर खड़े कर दिये हैं।

हिन्दू धर्म तो सदैव समयानुसार अपना रंग पलटता रहा है, और इस जमानेमें उसने अपनी खासी उन्नति करली थी। वेदान्तका प्रादुर्भाव इसी जमानेमें हुआ प्रतीत होता है जैसा कि डॉ० स्टीवेन्सन साहब 'कल्पसूत्र' की भूमिका (पृष्ठ २६–२७) में कहते हैं कि "जैनी हिन्दू धर्मके सांख्य, न्याय, चार्वाक और वैशेषिक दर्शनोंसे विशेष परिचित होते हुए और उनका उल्लेख करते हुए, वेदान्तका उल्लेख नहीं करते हैं। यह भी उन अनेक कारणोंमेंसे एक है जो मुझे विश्वास दिलाते हैं कि संभवतः समग्र उपनिषद् और पुराण बौद्धधर्मके ह्रासके उपरान्त संकिलित हुए थे।"

एवं न्याय, सांख्य, वैशेषिक आदि सर्व ही हिन्दू ग्रन्थ जैनधर्मकी उत्पत्तिके पश्चात् क्रमवार उत्पन्न हुए हैं। इससे भी प्रगट है कि हिन्दू धर्मपर समय२ अन्य धर्मोंका प्रभाव पड़ता रहा है जैसा कि पूर्वमें लोकमान्य तिलककी सम्मतिके उल्लेखसे प्रगट किया जा चुका है। देशके दूसरे प्रसिद्धनेता ला० लाजपतराय अपनी पुस्तक 'भारतवर्षका इतिहास' के पृष्ठ १३२ पर लिखते

हैं कि "हिन्दू धर्मपर बुद्ध धर्मकी अपेक्षा जैनधर्मका अधिक प्रभाव पड़ा है और भारतमें बौद्धोंकी अपेक्षा जैनोंकी संख्या बहुत अधिक है।" इसी बातको पुष्ट करते हुए सत्याग्रह आश्रम साबरमतीके गुजराती विद्वान मि० के० जी० मशरुवाला लिखते हैं कि "इन (महावीरजी) के धर्मके परिणामसे वैदिक धर्ममें भी 'अहिंसा' परम धर्म माना गया, और शाकाहारका सिद्धान्त अधिकांशमें हिन्दू जनताने स्वीकार किया।" (देखो, 'बुद्ध अने महावीर' पृष्ट ९२.) साथ ही दिगम्बर जैन साधुओंके चारित्रका प्रभाव भी हिन्दू सन्यासियों पर पड़ा प्रतीत होता है; क्योंकि फ्रेंचइंडियामें रहे हुए एक जज और फ्रेंच लेखक मि० लुई जैकोलियट साहबने अपनी एक हिन्दू ग्रन्थ "अग्रोनचड-परिकचै" (Agrouchade Parikchai) के आधार पर लिखित "दी ऑकल्ट साइन्स इन इंडिया" नामक पुस्तकमें ऐसी बातोंका वर्णन किया है, जिनसे प्रगट होता है कि हिन्दू सन्यासियोंने जैन मुनियोंका अनुकरण किया था; जैसे उसमें लिखा है कि "सन्यासी नग्न रहते थे" (पत्र ७१) "सन्यासियोंको जहां वह अपना पग रक्खें वहांका ध्यान करके उसको पवित्र करें, और अपने पीनेके पानीको उसे साफ कर लेना चाहिए जिससे जीवोंकी हिंसा न हो (पत्र ७४)।" "योगीको आहार लेते समय बैठना न चाहिए (पत्र ८३)।" यह सर्व नियम जैनाचारके नियमोंमें गर्भित हैं।

बौद्धधर्मके विषयमें भी कहा गया है कि तव और अबके बाह्याभ्यन्तर बौद्ध धर्ममें जमीन आस्मानका अन्तर पड़गया है। बाह्यमें तो हम जानते हैं कि उनमें शाखाऐं पड़ गई हैं,

परन्तु आभ्यन्तरिक अवस्थाके सम्बन्धमें भी यही हालत है। जैसे कि डॉ० ओल्डन्बर्गका कहना है कि बौद्धोंके तिशरण सिद्धान्त बुद्धकी मृत्युके पश्चात् मान लिया गया है। और यह ज्ञात ही है कि प्रारम्भमें बौद्धधर्म एक सैद्धान्तिक धर्म नहीं था। आजीवकोंके सम्बन्धमें भी हम देख चुके हैं कि उनके यहां भी मक्खाली गोशालकी मृत्युके पश्चात् अन्य सिद्धान्त और देवी देवताओंकी मान्यता प्रारम्भ कर दी गई थी। इस जमानेके पहिले प्राचीन जमानेमें सर्वरूपेण सर्वबातोंमें स्वतंत्रता थी जैसे कि हम पहिले देख चुके हैं। और जिसके विषयमें डॉ० स्टीवेन्सन कहते हैं कि "यदि उस प्राचीन जमानेमें कोई जैन वा बौद्ध संगठन नहीं था तो ब्राह्मण धर्मका भी नहीं था, अतः सत्य यह प्रतीत होता है कि इस उल्लिखित समयमें लोगोंके मध्य सर्व प्रकारके विचारों और आचारोंको स्थान मिलता था।"

अन्य प्राचीन धर्मोंके विषयमें तो हम देख चुके, परन्तु अब देखना चाहिये कि उस प्राचीन जमानेमें एवं उसके पश्चात् जैनधर्मकी क्या अवस्था रही थी? जैनधर्मके तत्व वैज्ञानिक रीत्या सत्य हैं। और उनमें संशोधन किसी प्रकारका कभी भी नहीं किया जा सक्ता, क्योंकि यदि ऐसा किया जाय तो उनकी वह वैज्ञानिक लड़ी टूट जाय, जो आज हमको प्राप्त हैं। इसलिए जैनधर्म अपने असली और अखण्डरूपमें सदैवसे है और सदैव रहेगा, क्योंकि वह स्वयं सत्य है। हां! यह अवश्य संभव है कि उसके बाह्य शरीरमें कुछ परिवर्तन कभी२ होजाय। भगवान महावीरके पहिले भी जैनधर्मकी यही हालत थी तब भी इसके बाह्य शरीरमें अवश्य

शिथिलता आ गई थी क्योंकि आजीवक सम्प्रदाय उसी प्राचीन धर्मकी एक शाखा कही जासक्ती है। पार्श्वनाथके निर्ग्रन्थ श्रमणोंका प्रभाव इस समय कम हो गया था और यज्ञकाण्डादिका जोर था। इसलिए भगवान महावीरको पुनः अपने तीर्थकालकी प्रवृत्ति करना पड़ी थी। जिसके भी वाह्य शरीरमें उनके मृत्युके दीर्घकाल पश्चात प्रगट मतभेद हो गया था, ऐसा प्रतीत होता है। यह भी प्रगट है कि क्रमशः चलकर उसके आचार नियमादिमें विशेष संशोधन समयके प्रभावानुसार अन्य हिंदू, बौद्ध, आजीवक आदि धर्मोंके सदृश कर लिया गया था। जैसे कि पं० नाथूरामजी प्रेमीका कहना है कि "जैन धर्मने गत ढाईहजार वर्षोंमें न जाने कितने दुःख सुख सहे हैं, कितनी कठिनाइयां पार की हैं और कितने संकटोंसे वचकर अपना अस्तित्व कायम रक्खा है, अतः यह सम्भव नहीं कि इन सुखदुःखके समयोंमें इसके संचालकोंने इसकी रक्षाके लिए इसका थोड़ा बहुत रूप न वदला हो। क्रिया-काण्डोंकी विपुलता, यक्ष, यक्षिणी, क्षेत्रपाल, पद्मावती आदि सकड़ों देवदेवियोंकी मान्यता, आहवनीय आदि अग्नियोंकी पूजा, सन्ध्या, तर्पण, आचमन आदि वातें मेरा विश्वास है कि मूल जैनधर्ममें न थीं। ये पीछेसे शामिल की गई हैं।"

अतः यह प्रकट है कि जनधर्म अपने यथार्थरूपमें अविचल रहा है, परन्तु उसकी वाहरी वातोंमें जरूर तवमें और अवमें भेद है। प्रख्यात जैन विद्वान् मि० चम्पतरायजी जैनका मत भी इस विषयमें इस प्रकार है कि "प्राचीन और अर्वाचीन जैन धर्ममें कोई भी भेद नहीं है क्योंकि वह विज्ञान (Science) है। हां!

कर्मोंसे छुटकारा पानेके लिए विविध आचार नियमोंके पालन करनेमें कुछ भेद हो सक्ता है, क्योंकि समयकी तत्कालीन आवश्यकानुसार एक बात उस समय आवश्यक होती है; तो दूसरे समयमें वही बात अनावश्यक हो जाती है।"

इसी लिए जैनशास्त्रोंके विविध आचार नियमोंमें कहीं कहीं जरा अन्तर प्रतीत होता है। भगवान महावीरका संघ पश्चात्में पृथक् पृथक् विभागमें विभक्त होगया था। इसके मुख्यता दो विभाग उल्लेखनीय हैं (१) दिगम्बर (२) और श्वेताम्बर। दिगम्बरोंके विषयमें हम पहिले ही देख चुके हैं कि जैनधर्मके आदि प्रचारक भगवान ऋषभदेवने दिगम्बर निर्ग्रन्थ धर्मका उपदेश दिया था, जैसा कि हिन्दू शास्त्र भी व्यक्त करते हैं और वह धर्म उसी रूपमें अन्तिमतीर्थङ्कर भगवान महावीरके निर्वाण लाभोपरान्त तक चला आया था। यह कहना कि पार्श्वनाथ भगवानने वस्त्र धारण किए थे, और उनकी शिष्यपरम्परा भी वैसा करती थी, बिल्कुल मिथ्या है। यदि ऐसा होता तो हिन्दू शास्त्रोंमें उनका उल्लेख अवश्य होना चाहिए था और बौद्धशास्त्र तो अवश्य ही इस बातको प्रगट करते; क्योंकि उनमें निगन्थ नातपुत्र भगवान महावीरका वर्णन प्रतिस्पर्द्धारूपमें है; इसलिए वे भगवानके सनातन मार्गसे विमुख होनेका उल्लेख जरूर करते। ऐसा न होनेके कारण वे इस विषयमें कुछ भी न लिख सके*। स्वयं श्वेताम्बर ग्रन्थ

* बौद्धग्रन्थोंमें जैन मुनियोंके लिये "निग्गन्थ" शब्दका व्यवहार किया गया है। और उन्हें जैन श्रावकोंसे पृथक् समझनेके लिये उनके अगाड़ी 'नग्न' शब्दका व्यवहार किया है। जैसे विसाखा वत्थू, धम्मप-

सूयगडांग (Suyagadang. II. 76)में भगवान पार्श्वनाथके शिष्यों-को 'निगन्थ समण कुमारपुत'के नामसे विख्यात किया है। इसमें निगन्थ शब्दसे साफ प्रगट है कि वे तिलतुष मात्र परिग्रह रहित मुनि होते थे। उन्होंने उस शरमपर विजय प्राप्त कर ली थी, जिसके छुपानेके लिए उन्हें वस्त्र धारण करनेकी आवश्यक्ता पड़ती। 'निगन्थ' शब्दके शाब्दिक भावसे यह प्रमाणित है कि वे दिगम्बर भेषमें रहते थे। जो श्वेताम्बर कथानक इस विषयमें है, वह दिगंबर श्वेताम्बर भेद होनेके पश्चातका है, इसलिए यथार्थ नहीं है। तिसपर स्वयं श्वेताम्बर ग्रन्थोंमें साधुके लिए नग्नावस्था आवश्यक बतलाई गई है। उनमें २२ परीषहोंके अन्तर्गत अचेलक या

दत्थकथा (P. T. S.) Vol. I, pt. II, p. p. 384 foll. में अनेक स्थानों पर 'नग्न' (naked) शब्द आया है। अर्थात् Naked ascetics "Dialogues of the Buddha" pt. III. P 14. में भी एक जैनमुनि कण्हार-मापुकको नग्न लिखा है। ऐसे ही अन्य स्थलों पर भी लेख हैं। इसी प्रकार हिन्दू ग्रन्थोंमें भी जैनमुनियोंको नग्न ही व्यक्त किया गया है। यथा महाभारतके आदिपर्वमें 'क्षपणक' का उल्लेख है। और शब्द 'क्षपणक' के अर्थ मि० मोनियर विलियम्सकी संस्कृत डिक्शनरीमें (पृष्ट ३२६, सन् १८९९) यह लिखे हैं कि "क्षपणक एक धार्मिक सन्यासी है, खासकर एक जैनसाधु, जो कोई वस्त्र नहीं पहिनता है।" वराहमिहिरसंहितामें लिखा है कि "शाक्य तथा नंगे जैनी परम दयालु और शान्त हृदयवाले देवताकी पूजा करते हैं।" (देखो मि० दत्तका "भारतवर्षकी प्राचीन सभ्यताका इतिहास" हिं० अनुवाद पृष्ट १७१) ऋक्संहितामें भी जैनमुनियोंको नग्न बताया है यथा "मुनयः वातवसनाः।" इसके अतिरिक्त प्राचीनकालमें (इससे पूर्वकी शताब्दियोंमें) जब ग्रीक लोग आए तो उन्हें नग्न जैनमुनि ही

नग्न तथा शीत, उष्णा, डंसमशक परीषहकही हैं जो साधुके वस्त्र-रहित नग्न होनेपर ही संभव होसक्ती हैं। श्वेताम्बर ग्रन्थ प्रवचन सारोद्धार (पत्र २६९) और आचारांग सूत्र (तृतीय उद्देश्य पत्र ९७) में मुनियोंको नग्न रहना आवश्यक बतलाया है और जैन मुनियोंका उल्लेख बौद्ध ग्रन्थोंमें भी सदैव 'निगन्थ'के नामसे आया है। स्वयं वस्तुस्वभाव दृष्टिसे देखनेसे हमको ज्ञात होता है कि नग्नावस्थाको आवश्यक समझकर फिर साधु अवस्थामें वस्त्र धारण नहीं किए जा सक्के। इसलिए मानना होगा कि दिगंबर साधु ही पहिलेसे प्रचलित थे। और श्वेताम्बर साधुओंकी उत्पत्ति उपरान्तमें हुई थी।

श्वेताम्बर सम्प्रदायके कल्पसूत्रसे विदित होता है कि भगवान महावीरने दीक्षा लेनेपर एक महीनेसे कुछ अधिक समय तक देव-

---

सर्वत्र मिले थे, जिनको उन्होंने Gymnosophits कहा था। साथमें विद्वानोंकी निम्न सम्मतियां भी इसी बातकी पुष्टि करती हैं कि पहिले जैनमुनि दिगम्बर वेषमें होते थेः-मि० डब्ल्यू० डब्ल्यू० हन्टर साहब अपनी "Indian Empire" नामक पुस्तकके पृष्ठ २०६ में लिखते हैं कि "दक्षिणी बौद्धोंके शास्त्रोंमें नग्न जैनमुनियों और बौद्धोंके बीच सम्वाद होनेकी बात लिखी है।" एनसाइक्लो-पीडिया बृटेनिका जिल्द ३५ छपी १९११ में लिखा है कि "श्वेताम्बर लोग थोड़े कालसे बहुत करके ईसाकी ५ वीं सदीसे प्रगट हुए हैं। दिगम्बर लोग वास्तवमें वे ही निर्ग्रन्थ हैं जिनका वर्णन बौद्धोंकी पाली पितकोंमें हैं। महावीरजी व उनके शिष्योंमें नग्न भ्रमण करना एक बाहिरी प्रसिद्ध बात थी। इस क्रियाके विरुद्धमें गौतम बुद्धने अपने शिष्योंको खास तौरसे चिताया था। मेगस्थनीज़ने, जो चन्द्रगुप्तके समयमें आए, जैनसूफी शब्द निर्ग्रन्थोंके लिए ही व्यवहार किया है।" रायल एसियाटिक सोसायटीके जर्नल जनवरी सन् १८५५ में स्टीवेन्सन साहब कहते हैंः-"इन तीर्थंकरोंमें

दूष्य वस्त्र धारण किए थे, इसके बाद उन्होंने उसका भी त्यागकर दिया था, अर्थात् पिछली अवस्थामें वे नग्न रहे थे, परन्तु उसका यह कथन मिथ्या है, क्योंकि हम ऊपर सिद्धकर चुके हैं कि दिगम्बर भेष प्राचीन है। उधर स्वयं कल्पसूत्रमें स्वीकार भी किया है कि पीछे वे अचेलक (वस्त्ररहित) होगए थे। "भगवानके समयवर्ती आजीवक आदि (वल्कि प्राचीन आजीवक भी) सम्प्रदायके साधु भी नग्न ही रहते थे। पीछे जब दिगम्बरी-वृत्ति साधुओंके लिए कठिन प्रतीत होने लगी होगी और इसलिए देशकालानुसार उनके लिए वस्त्र रखनेका विधान किया गया होगा, तव यह देवदूष्यकी कल्पना की गई होगी । भगवान रहते थे नग्न, पर लोगोंको वस्त्र सहित ही दिखलाई देते थे, श्वेतांवर सम्प्रदायके इस अतिशयका फलितार्थ यही है कि भगवान् नग्न

दो वड़ी खास वात पाइ जातीं हैं तथा जो बातें जनियोंकी सबसे प्राचीन पुस्तकों-पुराने इतिहाससे ठीक २ मिलती हैं वे ये हैं कि एक ता उनमें दिगम्बर मुनियोंका होना और दूसरे पशु मांसका सर्वथा निपेध " इन दोनोंमेंसे कोई बात भी प्राचीनकालके ब्राह्मणों और बौद्धोंमें नहीं पाई जाती हैं । क्योंकि दिगम्बर समाज प्राचीनकालसे अवतक बराबर चली आरही है । इससे मैं यही तात्पर्य निकालता हूं कि पश्चिनीय भारतमें जहां दिगम्बर जैनधर्म अब भी फैला है जो जैन सूफी (Gymnosophists) यूनानियोंको मिले थे वे जैन थे ।" दिगम्बर श्वेतांवरका उल्लेख करते हुए मि० आर० सी० दत्त साहब लिखते हैं कि "मगधके लोग श्वेतवस्त्र पहिनने लगे थे, परन्तु कर्नाटक-वाले अवतक भी नंगे रहनेकी प्राचीन रीतिको पकडे हुए थे ।" (देखो "भारतवर्षकी प्राचीन सभ्यताका इतिहास ") एक अन्य विद्वानका इस विषयमें मत है कि " महावीरजीने यह अच्छी तरह जान लिया था कि एक पूर्ण साधुके लिए सर्व आकाङ्क्षाओं, खासकर लज्जापर विजय

रहते थे" (देखो जैन हितैषी भाग १३) अतः भगवान अपने दीक्षा कालके प्रारम्भसे ही परमहंस–नग्न–दिगम्बर रहे थे, यह प्रकट है। मि० विमलचरण लॉ० एम० ए० अपनी पूर्वोल्लिखित पुस्तकमें जहां भगवान महावीरके निर्वाण प्राप्तिके पश्चात् बौद्ध ग्रन्थके आधारसे संघमें मतभेद होना लिखते हैं, वहां वह यही लिखते हैं कि "इन जैनोंमें साधु और श्रावक दोनों थे, क्योंकि हम देखते हैं कि साधुओंके इन झगड़ोंके कारण 'नात्तपुत्तके गृहस्थ अनुयायी जो श्वेतवस्त्र पहिनते थे, वे इन निग्रन्थोंपर दुःखित, क्षुब्ध और क्रुद्ध थे। इससे प्रकट है कि तबके गृहस्थ उसी प्रकार श्वेत वस्त्र पहिनते थे, जिस प्रकारकि आजकलकी श्वेताम्बर सम्प्रदाय।" और मुनिगण नग्न दिगम्बर भेषमें रहते थे। इसलिए जब भगवान महावीरके शिष्य मुनिगण दिगंबर भेषमें रहते

प्राप्त करना आवश्यक है।......वस्त्रोंके झगड़ोंसे परे होनेके कारण अन्य बहुतेरे झंझट छुट जाते हैं–खासकर उनके धोनेके लिए जलकी आवश्यक्ता नहीं रहती। हमारा भलाई और बुराईका ज्ञान, हमारी नग्नपनेकी जानकारी ही में मुक्तिसे दूर रखती है। उसे प्राप्त करनेके लिए हमें अवश्य ही नग्नताको स्वीकार करना पड़ेगा। जैन निर्ग्रंथ भलाई बुराईसे परे हैं। इसलिए उन्हें वस्त्रोंकी आवश्यक्ता नहीं।" (See the Heart of Jainism. P. 35.) एक श्वेताम्बर विद्वान मि० बाहरके निम्न वाक्य भी कुछ २ इसी बातको व्यक्त करते प्रकट होते है, "Gradually the manners and customs of the church changed and the original practice of going abroad naked was abondoned. The ascetics began to wear the "white robe." अतएव इन सब बातोंसे यह प्रत्यक्ष प्रकट है कि जैन मुनियोंका प्राचीन रूप "दिगम्बर" ही हैं।

थे तब उनके गुरु-आप्त देव तो अवश्य ही उसी नग्न दिगंबर पावन भेषमें रहते थे यह प्रमाणित है, और जो स्वयं श्वेताम्बर ग्रंथके कथनसे भी व्यक्त है। अस्तु, अब हम श्वेताम्बर आम्नायकी उत्पत्तिके विषयमें प्रकाश डालेंगे।

सबसे पहिले हमें देवसेनाचार्यके दर्शनसार ग्रन्थसे इस विषयमें इस प्रकार विवरण मिलता है; अर्थात् "विक्रमादित्यकी मृत्युके १३६ वर्ष बाद सौराष्ट्र देशके वल्लभीपुरमें श्वेताम्बर संघ उत्पन्न हुआ। श्री भद्रबाहुगणिके शिप्य शान्ति नामके आचार्य थे, उनका 'जिनचन्द्र' नामका एक शिथिलाचारी और दुष्ट शिप्य था, उसने यह मत चलाया कि स्त्रियोंको उसी भवमें स्त्री पर्याय ही से मोक्ष प्राप्त होसक्ती है, केवलज्ञानी भोजन करते हैं तथा उन्हें रोग भी होता है, वस्त्र धारण करनेवाला भी मुनि मोक्ष प्राप्त करता है, महावीर भगवानके गर्भका संचार हुवा था, अर्थात् वे पहिले ब्राह्मणीके गर्भमें आए, पीछे क्षत्रायणीके गर्भमें चले गए, जैनमुद्राके अतिरिक्त अन्य मुद्राओं या वेषोंसे भी मुक्ति हो सक्ती है और प्रासुक भोजन सर्वत्र हरकिसीके यहां करलेना चाहिए। इसी प्रकार और भी आगम विरुद्ध बातोंसे दूषित मिथ्या शास्त्र रचकर वह पहिले नरकको गया।"

(देखो जैनहितैषी भाग १३ अंक ५-६ पृष्ठ २५२-२५३.)

अन्यत्र श्वेताम्बर सम्प्रदायकी उत्पत्तिका इतिहास देवसेनसूरि कृत भावसंग्रहमें इसप्रकार दिया है। "विक्रमराजाकी मृत्युके १३६ वर्ष बाद सोरठ देशकी वल्लभी नगरीमें श्वेताम्बर संघ उत्पन्न हुआ। (उसकी कथा इस प्रकार है) उज्जयनी नगरीमें भद्रबाहु नामके

आचार्य थे । वे निमित्तज्ञानके जाननेवाले थे, इसीलिए उन्होंने संघको बुलाकर कहा कि एक बड़ा भारी बारह वर्षोंमें समाप्त होनेवाला दुर्भिक्ष होगा, इसलिए सबको अपने अपने संघके साथ और देशोंको चले जाना चाहिए। यह सुनकर समस्त गणधर अपने अपने संघको लेकर वहांसे उन उन देशोंकी ओर विहार कर गए, जहां सुभिक्ष था । उनमें एक शांति नामके आचार्य भी थे, जो अपने अनेक शिष्योंके सहित चलकर सोरठ देशकी वल्लभी नगरीमें पहुंचे, परन्तु उनके पहुंचनेके कुछ ही समय बाद वहांपर भारी अकाल पड़गया । भूखमरे लोग दूसरोंका पेट फाड़ फाड़कर और उनका खाया हुआ भात निकाल निकालकर खा जाने लगे । इस निमित्तको पाकर—दुर्भिक्षकी परिस्थितिके कारण—सबने कम्बल, दण्ड, तूम्बा, पात्र, आवरण (संथारा) और सफेद वस्त्र धारण कर लिए । ऋषियोंका (सिंहावृत्तिरूप) आचरण छोड़ दिया और दीनवृत्तिसे भिक्षा ग्रहण करना,-बैठ करके याचना करके और स्वेच्छापूर्वक वस्तीमें जाकर भोजन करना शुरू कर दिया । उन्हें इस प्रकार आचरण करते हुए कितना ही समय बीत गया । जब सुभिक्ष होगया, अन्नका कष्ट मिट गया, तब शांति आचार्यने संघको बुलाकर कहा, कि अब इस कुत्सित आचरणको छोड़ दो, और अपनी निंदा, गर्हा करके फिरसे मुनियोंका श्रेष्ठ आचरण ग्रहण करलो । इन वचनोंको सुनकर उनके एक प्रधान शिष्यने कहा कि अब उस अतिशय दुर्धर आचरणको कौन धारण कर सक्ता है ? उपवास, भोजनका न मिलना, तरह तरहके दुस्सह अन्तराय, एक स्थान, वस्त्रोंका अभाव, मौन, ब्रह्मचर्य, भूमि-

पर सोना, हर दो महीनोंमें केशोंका लोंच करना और असहनीय बाईस परीषह आदि बड़े ही कठिन आचरण हैं। इस समय हम लोगोंने जो आचरण ग्रहण कर रक्खा है, वह इस लोकमें भी सुखका कर्ता है। इस दुःषमा कालमें हम उसे नहीं छोड़ सके। तब शांत्याचार्यने कहा कि यह चारित्रसे भ्रष्ट जीवन अच्छा नहीं, यह जैन मार्गको दूषित करता है। जिनेन्द्र भगवानने निर्ग्रन्थ प्रवचनको ही श्रेष्ठ कहा है उसे छोड़कर अन्यकी प्रवृत्ति करना मिथ्यात्व है। इस पर उस शिष्यने रुष्ट होकर अपने बड़े डंडेसे गुरुके सिरमें आघात किया, जिससे शांत्याचार्यकी मृत्यु होगई और वे मरकर व्यन्तर देव हुए। उसके बाद वह शिष्य संघका स्वामी बन गया और प्रकटरूपमें सेवड़ा या श्वेताम्बर होगया। वह लोगोंको धर्मका उपदेश देने लगा और कहने लगा कि सग्रन्थ या सपरिग्रह अवस्थामें निर्वाण-की प्राप्ति होसक्ती है। अपने अपने ग्रहण किए हुए पाखण्डोंके सदृश उसने और उसके अनुयायियोंने शास्त्रोंकी रचना की, उनका व्याख्यान किया और लोगोंमें उसी प्रकारके आचरणकी प्रवृत्ति चलादी वे निर्ग्रंथ मार्गको दूषित वतलाकर उसकी निंदा और अपनी प्रशंसा करने लगे।.......अब वह जो शांति आचार्यका जीव व्यंतरदेव हुआ था, सो उपद्रव करने लगा और कहने लगा कि, तुम लोग जैन धर्मको पाकर मिथ्यात्व मार्गपर मत चलो इससे इन सबको बड़ा भय हुआ और वे उसकी सम्पूर्ण द्रव्योंसे संयुक्त अष्ट प्रकारकी पूजा करने लगे। वह जिनचंद्रकी रची हुई या चलाई हुई उस व्यंतर देवकी पूजा आज भी की जाती है। आज

भी वह बलि पूजा सबसे पहिले उसके नामसे दी जाती है। वह श्वेताम्बर संघका पूज्य कुलदेव कहा जाता है। यह मार्ग भ्रष्ट श्वेताम्बरोंकी उत्पत्ति कही।......."

"भावसंग्रह विक्रमकी दशवीं शताब्दिका बना हुआ ग्रन्थ है, प्राचीन है, अतएव हमने उस परसे श्वेताम्बर सम्प्रदायकी उत्पत्तिकी इस कथाको यहां उद्धृत करना उचित समझा।"

"भट्टारक रत्ननंदिने भद्रबाहुचरित्रका अधिकांश इसी कथाको पल्लवित करके लिखा है। इसमें कोई संदेह नहीं कि उनकी कथाका मूल यही है। परन्तु उन्होंने अपने ग्रन्थमें इस कथामें जो परिवर्तन किया है, वह बड़ा ही विलक्षण है। उनके परिवर्तन किये हुए कथा भागका संक्षिप्त स्वरूप यह है—'भद्रबाहु स्वामीकी भविष्यद्वाणी होनेपर १२ हजार साधु उनके साथ दक्षिणकी ओर विहार कर गए, परन्तु रामल्य, स्थूलाचार्य और स्थूलभद्र आदि मुनि श्रावकोंके आग्रहसे उज्जयिनीमें रह गए। कुछ ही समयमें घोर दुर्भिक्ष पड़ा और वे सब शिथिलाचारी होगए। उधर दक्षिणमें भद्रबाहुस्वामीका शरीरान्त होगया। सुभिक्ष होनेपर उनके शिष्य विशाखाचार्य आदि लौटकर उज्जयिनीमें आये। उस समय स्थूलाचार्यने अपने साथियोंको एकत्र करके कहा कि शिथिलाचार छोड़ दो; पर अन्य साधुओंने उनके उपदेशको न माना और क्रोधित होकर उन्हें मार डाला। स्थूलाचार्य व्यन्तर हुए। उपद्रव करनेपर वे कुलदेव मानकर पूजे गए। इन शिथिलाचारियोंसे 'अर्द्धफालक' (आधे कपड़ेवाले) सम्प्रदायका जन्म हुआ। इसके बहुत समय बाद उज्जयिनीमें चंद्रकीर्ति राजा हुआ। उसकी कन्या वल्लभीपुरके

राजाको ब्याही गई। चंद्रलेखाने अर्धफालक साधुओंके पास विद्याध्ययन किया था, इसलिए वह उनकी भक्त थी। एक वार उसने अपने पतिसे उक्त साधुओंको अपने यहां बुलानेके लिए कहा। राजाने बुलानेकी आज्ञा दे दी। वे आये और उनका खूब धूमधामसे स्वागत किया गया। पर राजाको उनका वेष अच्छा न मालूम हुआ। वे रहते तो थे नग्न, पर ऊपर वस्त्र रखते थे। रानीने अपने पतिके हृदयका भाव ताड़कर साधुओंके पास श्वेत-वस्त्र पहिननेके लिए भेज दिए। साधुओंने भी उन्हें स्वीकारकर लिया। उस दिनसे वे सब साधु श्वेतांवर कहलाने लगे। इनमें जो साधु प्रधान था उसका नाम जिनचन्द्र था।"

यह उपर्युक्त वर्णन जैनहितैषी भाग १३ अंक ९-१० के पृष्ठ ३९८-४०० पर वर्णित है। और इस पर सम्पादक महोदयकी विवेचना है कि "अव इस वातका विचार करना चाहिए कि भावसंग्रहकी कथामें इतना परिवर्तन क्यों किया गया। हमारी समझमें इसका कारण भद्रवाहुका और श्वेताम्वर सम्प्रदायकी उत्पत्तिका समय है। भावसंग्रहके कर्त्ताने भद्रवाहुको केवल निमित्तज्ञानी लिखा है, पर रत्ननंदि उन्हें पंचम श्रुतकेवली लिखते हैं। दिगम्बर ग्रंथोंके अनुसार भद्रबाहु श्रुतकेवलीका शरीरान्त वीरनिर्वाण संवत् १६२ में हुआ है और श्वेताम्बरोंकी उत्पत्ति वीर नि० सं० ६०३ (विक्रम संवत् १३६) में हुई है। दोनोंके वीचमें कोई साढे चारसौ वर्षका अन्तर है। रत्ननन्दिजीको इसे पूरा करनेकी चिन्ता हुई पर और कोई उपाय न था, इस कारण उन्होंने भद्रबाहुके समयमें दुर्भिक्षके कारण जो मत चला था, उसको

श्वेताम्बर न कहकर अर्धफालक कह दिया और उसके बहुत वर्षों बाद (४९० वर्षके बाद) इसी 'अर्ध-फालक' सम्प्रदायके साधु जिनचन्द्रके सम्बन्धकी एक कथा और गढ़ दी और उसके द्वारा श्वेताम्बर मतको चला हुआ बतला दिया। श्वेताम्बर मत जिनचंद्रके द्वारा वल्लभीमें प्रकट हुआ था, अतएव यह आवश्यक हुआ कि दुर्भिक्षके समय जो मत चला, उसका स्थान कोई दूसरा बतलाया जाय और उसके चलानेवाले भी कोई और करार दिए जांय। इसी कारण अर्धफालककी उत्पत्ति उज्जयिनीमें बतलाई गई और उसके प्रवर्तकोंके लिए स्थूलभद्र आदि नाम चुन लिये गये। स्थूलभद्रकी श्वेताम्बर सम्प्रदायमें उतनी ही प्रसिद्धि है जितनी दिगंबर संप्रदायमें भगवान कुन्दकुन्दकी। इस कारण यह नाम ज्योंका त्यों उठा लिया गया और दूसरे दो नाम नये ले लिए गए। वास्तवमें 'अर्धफालक' नामका कोई भी संप्रदाय नहीं हुआ। भद्रबाहुचरित्रके पहिलेके किसी भी ग्रन्थमें इसका उल्लेख नहीं मिलता।"

इस प्रकार हमें दि० जैन ग्रंथोंसे श्वेतांवर संप्रदायकी उत्पत्तिका वर्णन मिलता है। जिससे प्रगट है कि स्त्री मुक्ति आदिमें मतभेद होनेके कारण उनकी उत्पत्ति हुई थी। परन्तु, जो समय दिया गया है वह ठीक नहीं बैठता इसी लिए रत्ननंदिजीने उसको युक्तिसंगत बनानेको पूर्ण खुलासा प्रगट किया था। यह कहना कि 'अर्धफालक' सम्प्रदाय कोई हुआ ही नहीं, युक्तिसंगत नहीं है क्योंकि विशेष संभाव्य यही है कि पूर्वके आचार्योंने प्रारम्भमें जबसे मतभेद खड़ा हुआ तबसे ही श्वेताम्बर संघ उत्पन्न हुआ लिखा और इतिहासकी ओर विशेष लक्ष्य न होते हुए उन्होंने समय वह दिया

जिसमें श्वेताम्वर मत विल्कुल पृथक् स्थापित होगया था। रत्ननंदि आचार्यको यह ऐतिहासिक गणनाका फर्क नजर पड़ा होगा तव उन्होंने उस प्रारंभिक समयमें जितना मतभेद पड़ा था उसका उल्लेख भी कर दिया। इसलिए दि० ग्रन्थोंका उपर्युक्त वर्णन अधिकांशमें यथार्थ प्रगट होता है। किन्तु श्वेतांवर सम्प्रदायकी ओरसे भी एक ऐसा ही समय दिगम्वरोंकी उत्पत्तिके विषयमें कहा जाता है और उसके प्रमाणमें यह गाथा दी जाती है:—

" छव्वास सहस्सेहिं नवुत्तरेहिं सिद्धिं गयस्स वीरस्स।
तो वोडियाण दिट्ठी रहवीरपुरे समुप्पन्ना॥

परंतु उनका इस प्रकार श्वेतांवर सम्प्रदायसे दिगंवरोंकी उत्पत्ति वतलाना नितान्त मिथ्या है, क्योंकि हम पहिले देख चुके हैं कि जैनधर्मके आदि प्रवर्तक भगवान ऋषभदेवसे लेकर अंतिम भगवान महावीरके उपरान्त तक जैन साधु नग्न दिगम्बर वेषमें (निग्रन्थ) रहा करते थे। तिसपर श्वेतांवरियोंका उक्त प्रमाणभूत गाथा किसी दिगंवर ग्रन्थके एक गाथेका रूपान्तर प्रतीत होता है, क्योंकि स्वयं श्वेताम्वराचार्य जिनेश्वरसूरिने अपने 'प्रमा—लक्षण' नामक तर्कग्रन्थके अन्तमें श्वेताम्वरोंको आधुनिक वतानेवाले दिगम्वरोंकी ओरसे उपस्थित की जानेवाली इस गाथाका उल्लेख किया है:—

छव्वास सएहिं न उत्तरैहिं तइया सिद्धिं गवस्स वीरस्स।
कंवलियाणं दिट्ठी वलही पुरिए समुप्पण्णा॥

यह गाथा श्वेतांबरोंकी प्रमाणभूत उक्त गाथासे विल्कुल मिलती जुलती है। इसलिए यह प्रकट होता है कि श्वेतांबरोंने

दिगम्बरोंके उत्तरमें यह गाथा पेश की थी, परन्तु वह यह भूल गए कि यह स्वयं उनके एक दूसरे आचार्यके कथनसे बाधित होती है। अतएव इस तरह भी प्रमाणित है कि इस समय दिगम्बरियोंकी उत्पत्ति न होकर श्वेताम्बरोंकी उत्पत्ति हुई थी। और दिगंबर वेष तो जैन धर्ममें जैन धर्म इतना सनातन—प्राचीन है, इस व्याख्याकी पुष्टिमें डॉ० जे० स्टीवेन्सन साहबके निम्न वाक्य भी उपयुक्त हैं:—

"It is much more likely however, from what is said above, that the Swetambar party originated about that time (a century before A. D.) and not the Digambar." (See the Preface to Kalpa Sutra by Rev: J. Stevenson. D. D. P. XV.)

अर्थात् उपर्युक्त वर्णनसे यह विशेषतया प्रतीत होता है कि इस समय (ईसवी सन् से एक शताब्दि पहिले) श्वेताम्बर सम्प्रदायकी उत्पत्ति हुई थी, दिगम्बरियोंकी नहीं।

उधर वीर—संघके मतभेदका उल्लेख बौद्ध ग्रन्थोंमें भी मिलता है। जैसे कि पूर्वमें मि० लॉ की पुस्तकके अनुसार उल्लेख किया है। मि० लॉ उसके पश्चात् कहते हैं कि "जैन संघमें जो भगवानकी निर्वाण प्राप्तिके बाद मतभेद पड़ा था, उससे म० बुद्ध और उनके मुख्य शिष्य सारीपुत्तने अपने धर्मका प्रचार करनेका विशेष लाभ उठाया प्रतीत होता है। 'पासादिक सुत्तंत' से ज्ञात होता है कि पावाके चन्द नामक व्यक्तिने मल्लदेशके सामगाममें स्थित आनन्दको महान् तीर्थङ्कर महावीरके शरीरान्त होनेकी खबर दी थी। आनन्दने इस घटनाके महत्वको झट अनु-

भव कर लिया और कहा " मित्रचन्द, यह समाचार 'तथागतके' समक्ष लानेके उपयुक्त हैं । अस्तु, हमें उनके पास चलकर यह खबर देना चाहिए ।" वे बुद्धके पास दौड़े गए, जिन्होंने एक दीर्घ उपदेश दिया । (See Dialogues of the Buddha. Pt. III. P. 112. & Kshatriya clans in Buddhist India. P. 176.)

इस वर्णनसे प्रकट है कि म० बुद्धके जीवनकालमें और भगवान महावीरकी निर्वाण प्राप्तिके उपरान्त ही संघमें मतभेद पड़ गया था । परन्तु वह नितान्त मिथ्या प्रतीत होता है । क्योंकि यदि ऐसा होता तो वहींसे दिगम्बर और श्वेताम्बर गुर्वावली (शिष्य—परम्परा) में भेद पड़ना चाहिए था । परन्तु हम देखते हैं कि भगवान महावीरके निर्वाणके बाद गौतमस्वामी, सुधर्मस्वामी और जम्बूस्वामी, इन तीन केवलज्ञानियों तक दोनों सम्प्रदायोंमें एकता है । इसके आगे जो श्रुतकेवली हुए हैं, वे दिगम्बर संप्रदायमें दूसरे हैं और श्वेताम्बरमें दूसरे । आगे भद्रबाहुको अवश्य ही दोनों सम्प्रदाय मानते हैं । इसलिए यह प्रमाणित होता है कि भगवान वीरकी निर्वाणप्राप्तिके कुछ काल पश्चात् ही मतभेद उपस्थित नहीं होगया था ।

प्रो० जेकोबीने जो इस विषयमें लिखा है कि " यह बहुत संभव है कि जैन संघका प्रथक् प्रथक् होजाना क्रमवार हुआ था । दोनों ही सम्प्रदायोंमें एक दूसरेसे दूर रहते हुए, व्यक्तिगत उन्नति होती जाती थी । और वे अपने आपसी मतभेदसे ईसाकी प्रथम शताब्दिके अन्तमें भिन्न हुए थे । " (See Hastings,

Encyclopaedia of Religion and Ethics, Vol. VII, P. P 465 & 466. and South Indian Jainism. Pt. I. P. 25).

इसीप्रकारका एक संशयात्मक मत 'जैनहितैषी' भाग १३ पृष्ट २६५–२६६ पर विशेष गवेषणाके साथ प्रतिपादित किया गया है, और निर्णय स्वरूपमें कहा गया है कि "श्वेताम्बर सम्प्रदायके आगम या सूत्र ग्रन्थ वीर नि० सं० ९८० (विक्रम सं० ५१०) के लगभग वल्लभीपुरमें देवर्धिगणि क्षमाश्रमणकी अध्यक्षतामें संगृहीत होकर लिखे गये हैं, और जितने दिगम्बर एवं श्वेताम्बर ग्रन्थ उपलब्ध हैं; और जो निश्चय पूर्वक साम्प्रदायिक कहे जा सके हैं, वे प्रायः इस समयसे बहुत पहिलेके नहीं हैं। अतएव यदि यह मान लिया जाय कि विक्रम सं० ४१०के सौ पचास वर्ष पहिले ही ये दोनों मतभेद सुनिश्चित और सुनियमित हुए होंगे, तो हमारी समझमें असंगत न होगा। इसके पहिले भी भेद रहा होगा परन्तु वह स्पष्ट और सुश्रृंखलित न हुआ होगा। श्वेतांबर जिन बातोंको मानते होंगे उनके लिए प्रमाण मांगे जाते होंगे, और तब उन्हें आगमोंको साधुओंकी अस्पष्ट यादगारीपरसे संग्रह करके लिपिबद्ध करनेकी आवश्यक्ता प्रतीत हुई होगी। इधर उक्त संग्रहमें सुश्रृंखलता प्रौढता आदिकी कमी, पूर्वापर विरोध और अपने विचारोंसे विरुद्ध कथन पाकर दिगंबरोंने उनको माननेसे इन्कार कर दिया होगा, अपने सिद्धान्तोंको स्वतंत्ररूपसे लिपिबद्ध करना निश्चित किया होगा।"
परन्तु यह दोनों ही मत प्रमाणभूत यथार्थ निश्चय नहीं माने जा

सके और सारभूत कारणके अभावमें इस विषयके दिगम्बर कथानकोंपर अविश्वास नहीं किया जासक्ता है। हाँ! यह अवश्य है कि दिगंबर कथानकोंसे श्वेतांबर संप्रदायकी उत्पत्तिके समयमें किसी प्रकार संशय प्रकट होजाता है तो भी बहुतसे आधुनिक विद्वान इस समयको निश्चित करते हैं जैसे कि मि० एम. एस. रामास्वामी ऐयंगर एम. ए. अपनी 'South Indian Jainism' नामक पुस्तकके पृष्ठ २९ पर इस पृथक् होनेके समयको अनुमानतः सन् ८२ ई० लिखते हैं।

बौद्ध ग्रन्थके उपर्युल्लिखित वर्णनकी कि भगवानके निर्वाण प्राप्तिके उपरान्त ही वीर संघमें मतभेद खड़ा होगया था असत्योक्ति इस तरह भी प्रमाणित होती है, क्योंकि एक अन्य बौद्ध ग्रन्थ "माज्झिम निकाय" भाग २ पृष्ठ १४३ पर निम्न उल्लेख है:—

"एकम् समयम् भगवा शक्केसु विहारति सामगामे। तेन खो, पण समयेण निग्गन्थो नातपुत्तो पावायम् अधुना कालकतो होति। तस्स कालकिरियाय भिन्न निग्गन्थ द्वेधिकजाता, भन्डन जाता कलह जाता विवादापन्ना यण्णमण्णम् मुखसत्तीहि वितुदन्ता विहारिन्ता।"

इससे यह प्रगट नहीं होता कि म० बुद्धके जीवनकालमें ही, जिनकी मृत्युके पहिले भगवानको मोक्षलाभ होगया था, जैन संघमें दो भेद होगए थे। यहांपर बतलाया गया है कि म० बुद्धने सामगामको जाते हुए मार्गमें स्वयं भगवान महावीरका निर्वाण होते पावामें देखा था। इसमें आनन्दकी खबर पहुंचाने और म० बुद्धके उपदेश देनेका कोई उल्लेख नहीं है। इससे प्रगट है कि भगवानकी निर्वाण प्राप्तिके साथ ही संघमें मतभेद

उपस्थित नहीं हुआ था। बल्कि एक दीर्घकाल पश्चात् भगवानका पावन संघ दिगंबर और श्वेताम्बर संप्रदायोंमें विभक्त होगया था। बौद्धग्रन्थोंमें साधारण रीतिपर लिख दिया गया है कि भगवानके निर्वाण लाभके पश्चात् संघ प्रथक् प्रथक् होगया इससे यह भाव प्रतीत नहीं होता है कि फौरन ही फूट होकर दो सम्प्रदाय होगए। अन्तमें डॉ० हॉर्नल साहब (Dr. Hoernle) ने इस विषयको निम्नप्रकार साफ शब्दोंमें प्रगट कर दिया है:—

"महावीरस्वामीकी निर्वाणप्राप्ति पश्चात् दूसरी शताब्दिमें, अनुमानतः ईसासे पहिले ३१०में, मगधदेश (वर्तमान बिहार) में एक बारह वर्षका दीर्घ दुष्काल पड़ा था। उस समय उस देशके अधिपति मौर्य्यवंशके चन्द्रगुप्त थे। और भद्रबाहु उस समय तक अखण्ड जैनधर्मके नायक थे। दुष्कालके दुष्प्रभावके कारण भद्रबाहु अपने कुछ मनुष्योंके साथ दक्षिण भारतके कर्णाटक प्रदेशकी ओर प्रस्थान कर गए थे। संघके जो अवशेष मनुष्य मगधमें रहे थे, उनके नायक स्थूलभद्र हुए। दुष्कालके अन्तके निकट, भद्रबाहुके परोक्षमें, पाटलीपुत्र (पटना) में एक सम्मेलन सम्मिलित हुआ था; जिसमें जैन धर्मके ११ अङ्ग और १४ पूर्व नामक पवित्र ग्रन्थ संग्रहीत हुए थे, जो उपरांतमें १२ वाँ अंग कहलाये।* जो जो कठिनाईयाँ दुष्कालमें सामने आईं, उनसे जैनियोंके आचार पालनमें भी फरक पड़ गया। मुनियोंकी वेष भूषाके विषयमें यह नियम था कि वे बिल्कुल नग्न रहें, यद्यपि नीचेके चारित्र धारण करने-वाले साधुओंके लिए कुछ वस्त्रोंके रखनेका नियम होना प्रतीत

* ये श्वेताम्बर आम्नायके आगम ग्रंथ हैं।

होता है। वे मुनिगण जो पीछे रह गए थे, दुष्कालके कष्टोंके कारण अपने नग्न व्रतको त्यागनेको वाध्य हुए थे और श्वेत वस्त्रोंको धारण करने लगे थे। दूसरी ओर, अपनी धर्मवत्सलताके कारण जो मुनिगण नग्न आचार नियमका त्यागन नहीं करके विदेश विहार करगए थे, उन्होंने यह नियम सम्पूर्ण संघके लिए अनिवार्य्य रक्खा। सुकाल और सुखशांतिके पुनरागमन पर जब वे मुनिगण, जो विहार कर गए थे, लौटकर उस देशमें आए तबतक वह आचारविभिन्नता इस कालान्तरमें पूर्ण स्थापित हो गई थी, जिससे कि उसकी उपेक्षा नहीं की जा सक्ती थी। विहारसे लौटे हुए मुनिसंप्रदायने उन पतित (उनके निकट) मुनियोंसे समपनेका व्यवहार नहीं रक्खा जो पीछे रह गए थे। इस प्रकार दिगम्बर और श्वेताम्बर संप्रदायोंके विभागकी जड़ पड़गई थी।" प्रख्यात योरुपीय विद्वानके उक्त कथनसे श्वेतांवर संघकी उत्पत्ति विषयक दिगंवर जैन कथानककी सत्यता झलक जाती है। और श्वेतांवर संघकी उत्पत्ति महावीर भगवानके निर्वाण लाभके दीर्घ कालोपरान्त हुई थी, एवं दिगंवर संप्रदाय सनातन है यह प्रमाणित हो जाता है।+

+ इस बातके प्रकट करनेसे मात्र हमारा भाव वास्तविक ऐतिहासिकताको प्रत्यक्षमें लानेका है। इसलिए सान्प्रदायिक विद्वेषका वर्धक कारण यह न समझा जाय, यहीअभीष्ट है। ऐतिहासिक दृष्टिको लक्ष्यकर ही इस पुस्तकमें सर्वत्र अन्य धर्म्मों वा मतोंकी समालोचना की गई है। महात्मा बुद्धका वर्णन भी उसी दृष्टिसे है। अतएव हम आशा करते हैं कि हमारे पाठक ' व नके चरित्रसे 'विश्वप्रेम' और 'सत्य' का पाठ ही ग्रहण करेंगे।

अस्तु, अब हम श्वेताम्बर सम्प्रदायके ग्रन्थोंमें जो भगवान महावीरके जीवन संबंधमें मतभेद हैं उनपर विवेचन करेंगे। परन्तु ऐसा करनेके पहिले हम यह व्यक्त करदेना चाहते हैं कि "यह ध्यानमें रहे कि श्वेताम्बर सम्प्रदायके सूत्रग्रन्थ सुधर्मस्वामी और भद्रबाहुस्वामी आदिके रचे हुए बतलाए जाते हैं; परन्तु, वे देवर्धिगणि क्षमाश्रमणके समयमें वीर नि० संवत ९८० के लगभग पुस्तकारूढ़ किए गए थे। इसलिए यह दृढ़तापूर्वक नहीं कहा जा सक्ता कि यह सुधर्मस्वामी आदिकी यथातथ्य रचना है और इसमें समयानुसार कुछ परिवर्तन नहीं किया गया है। सबकी भाषा जुदी जुदी तरहकी है। रचनाशैलीमें भी अन्तर है और एक आगमसे दूसरे आगमकी बहुतसी बातें मिलतीं नहीं। जैसे समवायांग सूत्रमें आचारांग सूत्रके अध्यायोंकी जो संख्या और क्रम दिया है वह वर्तमान आचारांग सूत्रमें नहीं है। कल्पसूत्र श्रुतकेवली भद्रबाहुका बनाया हुआ कहलाता है; परन्तु उसमें जो स्थविरावली या गुरुपरंपरा दी है, वह भद्रबाहुसे लगभग आठसौ वर्ष पीछे तककी दी हुई है !"* भगवती सूत्रके भी बहुतसे कथन स्वयं उसीके वर्णनोंसे पूर्वापर विरोधित हैं जैसे डॉ० बी. एस. बारुआ. एम. ए. डी. लिट. अपनी The Ajivakas (Pt. I) नामक पुस्तकके पृष्ठ १२ पर व्यक्त करते हैं। अस्तु, प्रगट है कि श्वेतांबर संप्रदायके आगम या सूत्र ग्रन्थ भगवानके समयके निश्चित प्रमाण नहीं माने जासक्ते।

भगवानके समयके असली आगम सूत्र क्रमकर लुप्त हो गए

* देखो जैन हितैषी भाग १३ अंक ४ पृष्ठ १४५

थे; जो कि साधुओं द्वारा कण्ठस्थ रक्खे जाते थे। जैसे २ साधु-ओंकी स्मरण शक्ति कमजोर पड़ती गई वैसे २ ही आगम सूत्रोंका लोप होता गया। और उक्त ग्रन्थ पीछेसे किसी अंगधारी मुनिकी स्मृतिसे लिपिवद्ध कर लिए गए। वहुत संभव है कि देवार्धगणि क्षमा श्रमणने ही लिपिवद्ध करते समय इनकी रचना उक्त प्रकार की होगी। और यह भी ध्यानमें रखनेकी वात है कि उस समय भारतीय विविध धर्म सम्प्रदायोंमें आपसमें खूव प्रतिस्पर्द्धा चल रही थी। इसलिए उस समयके गति प्रवाहके प्रभावसे यह ग्रन्थ अछूते न वचे होंगे। उनमें प्रतिपक्षी सम्प्रदायोंके ऊपर वाक्-वांण जरूर छोड़े गए होंगे।

अस्तु, सवसे पहिले श्वेताम्वर सम्प्रदायने भगवान महावीरके चरित्रमें भगवानके गर्भापहरणकी वात लिखी है कि सुनन्दा ब्राह्मणीके गर्भमेंसे भगवान त्रिशला क्षत्रियाणीके गर्भमें पहुंचा दिए गए परंतु जिस समय कल्पसूत्र संभवता रचा गया था (विक्रम संवत्के वहुत वर्षों वाद) उस समय ब्राह्मणोंसे जैनियोंकी प्रतिस्पर्धा खूव चढ़ीवढ़ी थी। इसलिए जैनाचार्यने अपने ग्रन्थमें ब्राह्मणोंकी प्रतिस्पर्धाके कारण इस कथाकी उत्पत्ति की जैसे कि प्रो० जैकोवीने भी व्यक्त किया है और जो स्वाभाविक थी, क्योंकि भगवान महावीरस्वामीके जन्मकालके पहिलेसे ब्राह्मण द्वेषभरी दृष्टिसे देखे जाने लगे थे, जैसा कि हम पहिले देख चुके हैं। इसका कारण यही था कि स्वयं ब्राह्मणोंने भी अपनी प्रधानताको आस्मान पर चढ़ा दिया था और अन्य वर्णोंको वे विल्कुल हीन दृष्टिसे देखते थे जैसे कि मनुस्मृतिके निम्न श्लोकोंसे व्यक्त है:—

'ब्राह्मणं दशवर्षंतु शतवर्षंतु भूमिपम्।
पितापुत्रौ विजानीयाद् ब्राह्मणस्तु तयोः पिता ॥ १३९ ॥'

"ब्राह्मणो जायमानो हि पृथि व्यामधि जायते।
ईश्वरः सर्वभूतानां धर्म-कोशस्य गुप्तये ॥ १ ॥ ९९ ॥"

सर्वस्वं ब्राह्मणस्येदं यत्किञ्चिज्जगती गतम्।
श्रेष्टनाभि जनेनेदं सर्वं वै ब्राह्मणोऽर्हति ॥ १ ॥ १०० ॥

स्वमेव ब्राह्मणो भुङ्क्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च।
आनृ शंस्याद् ब्राह्मणस्य भुञ्जते हीतरे जनाः ॥ १ ॥ १०१ ॥

इस दशामें प्राकृतिकरीत्या ही ब्राह्मणोंके इस गर्वको हटानेके लिए उक्त प्रकारकी कथाकी उत्पति की गई थी, ऐसा प्रत्यक्ष प्रतीत है। भगवान महावीरके जीवनमें गर्भापहरणकी कोई भी वास्तविक घटना घटित नहीं हुई थी।

दूसरी मुख्य बात श्वेतांबर ग्रन्थोंकी यह है कि वह भगवान महावीरको बालब्रह्मचारी व्यक्त नहीं करते हैं। वे कहते हैं कि भगवानके नंदिवर्धन नामके एक भाई और सुदर्शना नामकी एक बहिन थी। यशोदा नामकी राजकन्याके साथ उनका विवाह हुआ था, और उससे उनके प्रियदर्शना नामकी एक कन्या हुई थी। यह ऐसा मतभेद नहीं है जो किसी खास सिद्धान्तके कारण हुआ हो। दिगम्बर सम्प्रदाय अपने अन्यान्य तीर्थंकरोंको विवाहित और सन्तानवान मानता है। अस्तु, यदि भगवान महावीरका विवाह आदि हुआ होता तो वह अवश्य लिखते। दूसरी तरह यदि भगवानकी स्त्री पुत्री आदि मान लिए जांय, तो बहुत संभव था कि

उनका उल्लेख कहीं न कहीं बौद्ध ग्रन्थोंमें मिलता । जिस प्रकार भगवान महावीरके अन्यान्य भक्तोंका उल्लेख बौद्ध ग्रन्थोंमें मिलता है, वैसा इनका भी उल्लेख मिलना चाहिए था; क्योंकि स्त्री, पुत्री आदि भी भगवानके परम भक्त होते । परन्तु, बौद्ध ग्रन्थोंमें इनका उल्लेख कहीं भी नहीं है । इसलिए भगवान बालब्रह्मचारी रहे थे यही प्रतीत होता है ।

मेरी समझमें भगवान महावीरके जीवनकी बहुतसी घटनाओंको श्वेताम्बराचार्य जैन धर्मके इस युगकालीन आदि प्रचारक भगवान ऋषभदेवकी जीवन घटनाओं सदृश बनाना चाहते थे । इसी लिए उन्होंने ऐसा वर्णन किया जो आदि जिनकी जीवन घटनाओंसे मिलता है, और कुछ नितान्त मौलिक भी है, क्योंकि वह यह व्यक्त करना चाहते प्रतीत होते हैं कि भगवान महावीरने अपने धर्मका निरूपण भगवान ऋषभदेवके समान किया था। और श्वेतांबर गण भगवान पार्श्वनाथके श्रमणोंके समान आचरण करनेवाला है जिनको कि वह अपनी दृष्टिसे वस्त्रधारी मुनि समझता है; यद्यपि वे यथार्थमें नग्न 'निग्गन्थ' ही थे, जैसे कि पहले प्रगट करचुके हैं । और इसी आशयका एक संवाद उत्तराध्ययन परिच्छेद २३ में अंकित है, जहां भगवान पार्श्वनाथके शिष्य केसी और भगवान महावीरके प्रधान गणधर गौतममें दिगम्बर वेषपर समझौता हुआ प्रगट है; परन्तु इसमें वास्तविक तथ्य बिल्कुल ही प्रगट नहीं होता ।

अस्तु, हम देख चुके कि भगवान महावीरके निर्वाण लाभ करने पश्चात् एक दीर्घकालोपरांत जैन संघमें मतभेद खड़ा होगया।

और क्रमकर उसमें फूट पड़ गई। और अलग २ सम्प्रदाय कायम होगए जैसे कि दिगम्बर कथानकोंसे प्रगट है। भगवानके समयके यथार्थ आगम सूत्र लुप्त हो गए। उनकी पूर्ति श्वेताम्बर आचार्योंने अपनी कृतिसे की जिसमें वह सफल नहीं हुए। भगवानके धर्ममें वाह्यभेद बहुत पड़ गया। और उनके अनुयायी आज उनके आदर्श सार्वभौमिक प्रेमको भूल गए—अहिंसा धर्मका नाम मात्र पालन करनेवाले रह गए।

---

(३४)

वीर संघका प्रभाव और पश्चात्‌के प्रसिद्ध जैन राजा।

"India had innumberable Kings; what religi ons they professed can be gathered only from the shastras, and the Jain Shastras describe many Jain Kings, persons of flesh ond blood, who reigned over the various Kingdoms in Behar, Malwa, Deccan, etc. And there have been Jain Kings, Generals, and soldiers not only mythical but historical as well."

— An Ahinsaist in "The Jain Ahinsa."

हमारे अबतकके वर्णनसे यह प्रकट है कि भगवान महावीरके तीर्थकी प्रवृत्ति होते ही, उसका उत्कट प्रभाव सर्वव्यापक होगया था। भारतमें उस समयके प्रख्यात प्रभावशाली राजाओंने उसकी

शरण ली थी। सत्य ज्ञानकी पिपासी आत्माओंने सर्व वर्णोंमेंसे आकर भगवानकी सुधागिरा और भक्तिरसका पान करके अपनी तृप्ति की थी। क्षत्री, ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र, आर्य, अनार्य्य, पशु पक्षी, देवादि सबोंने सच्चे सुखका भान पलिया था।

'यही कारण प्रतीत होता है कि कुछ विद्वान् जैनधर्मके अनुयायियोंको "हिन्दू डिस्सेंटर" अर्थात् हिन्दू धर्मच्युत भिन्न मतानुयायी कहते हैं और जैनधर्मको वर्णव्यवस्थाका लोप करनेवाला प्रगट करते हैं परन्तु यह विल्कुल मिथ्या है। हाँ। यह अवश्य है कि भगवान महावीरके समयमें जैनियोंने नीच वर्णोंके प्रति दुर्व्यवहारको हटा दिया था, जैसा कि ब्राह्मणोंकी प्रधानतामें उनपर किया जाता था; और उनका मनुष्योचित सम्मान किया था। वर्णव्यवस्थाकी रक्षाका ध्यान उनको अवश्य था, जिसके कारण यद्यपि प्रत्येक वर्ण और जातिके मनुष्योंको जैनधर्ममें आनेका मार्ग खुला हुआ था, परन्तु नीच जातियोंके मनुष्योंमें मुनिधर्म जैसे उच्च आदर्शमय जीवनको धारण करनेकी योग्यता न होनेके कारण वे मुनि नहीं होते थे।' (Cf: portion concerning it on page 8 of the "South Indian Jainism" by M. S. Ramaswami Ayyangar. M. A.)

अस्तु, यह प्रगट है कि वर्णव्यवस्थाकी रक्षा करते हुए जैन संघमें सब ही प्रकारके मनुष्योंने आश्रय पाया था।

यूनानदेशवासी जो भारतवर्षके सीमाप्रान्त पर बस गए थे, वह भी जैनधर्मके परम भक्त हुए थे। मि० विमलचरण लॉ० एम० ए० अपनी पुस्तक The Historical Gleaningsके पृष्ठ ७८

पर लिखते हैं कि "करीब ईसासे पहिलेकी दूसरी शताब्दिमें जब यूनानी लोगोंने अधिकांश पश्चिमीय भारतपर आधिपत्य जमा लिया था तब जैनधर्मका प्रचार उनके मध्य होगया था। और इस धर्मके नायककी मान्यता भी उनके मध्य अधिक थी, जैसे कि बौद्धग्रन्थ 'मिलिन्द पन्हो'के एक कथानकसे विदित है। उस कथानकमें कहा गया है कि ५०० योंङ्कायों अर्थात् यूनानियोंने राजा मिलिन्द (मेनेन्डर) से निगन्थ नातपुत्त (महावीर)के पास चलनेको कहा और अपने मन्तव्योंको उनके निकट प्रकट करनेके लिए एवं अपनी शङ्काओंको निवृत्त करनेको भी कहा।" इससे यह भी प्रकट है कि राजा मिलिन्द भी संभवतः भगवान महावीरके भक्त थे। अस्तु।

उस समयके अन्य प्रसिद्ध मतप्रवर्तक भी इस अनुपम सौम्य सान्तवनादायक प्रभावसे वंचित नहीं रहे थे। 'जिनेन्द्रके दर्शनसे बुद्धदेवको उस ज्ञानकी प्राप्तिकी तीव्र इच्छा हुई थी, जिसके विषयमें उन्होंने बड़े चमकते हुए शब्दोंमें कहा है कि वह सर्वव्यापी श्रेष्ठ आर्यज्ञानका महान् और विविक्त दर्शन है जो मनुष्यकी समझमें नहीं आसक्ता।' *

सर्व भारतवर्षमें भगवान महावीरके पवित्र, पावन, शान्ति-उत्पादक तीर्थका प्रचार होगया था। कृतज्ञ भारतने भी भगवानके इस परमोपकारके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करने हेतु उनके निर्वाणोपलक्षमें एक जातीय त्यौहार कायम कर दिया। भारतकी सन्तानको साक्षात् ऐक्यका पाठ पढ़ा दिया। और जतलादिया कि यथार्थ

* देखो वैरिष्टर चम्पतरायजीका "गौड़-खंडन" पृष्ठ ६.

सत्यपर किसी खास सम्प्रदाय, जाति या व्यक्तिका अधिकार नहीं है। सत्यकी प्रत्यक्ष मूर्त्ति सर्व प्राणीसमुदायकी समान सम्पत्ति है, उसकी उपासना हर कोई करसक्ता है।

तत्कालीन जनतामें इस दिव्योपकारका इतना असर था कि उन्होंने उसी समयसे भगवानके निर्वाण कालसे एक अब्द भी आरंभ करदिया, जो अवतक चालू है। वीर निर्वाणाब्द ८४ जैसे प्राचीनकालका एक शिलालेख आज भी हमारी उक्त व्याख्याकी पुष्टि करनेको अवशेष है। जैनमित्र वर्ष १२ अंक ११ पृष्ठ १६२ पर इस लेखका उल्लेख है। इसके विषयमें लिखा है कि "अजमेर जिलेमें वडला ग्राम है, वहां एक खरल मिला है अर्थात् एक स्तम्भ भाग एक फकीरके पास मिला है जिसमें वह कुछ कूटा करता था। इसपर प्राकृत भाषाका लेख है, जिसपर ४ लायनमें यह लेख है:—

वीराय भगवत
चतुरासी निवस्से
साला मालिणीये
रंणि विद्र मिज्झमिके।

अजमेर अजायबघरके क्यूरेटर रायबहादुर पंडित गौरीशंकरने इसे वीर संवत् ८४ का निश्चय किया है। मिज्झमिका अर्थात् माध्यमिका नामकी एक नगरी मेवाड़में है। शेष कुछ अक्षरोंका भाव आप नहीं लगासके।"

परन्तु उसकी भाषा लिपिके अक्षरोंसे उन्होंने इसका उक्त समय निश्चित किया है। बहुत संभव है कि इस शिलालेखका

सम्बन्ध राजा मिलिन्दसे हो, जो बौद्धग्रन्थके कथनानुसार जैनधर्मानुयायी प्रगट होते हैं। अस्तु, अब्द चलानेके साथ ही साथ उस जमानेके राजाओं और सेठोंने भगवान महावीर और आदि जिन श्री ऋषभदेवके स्मारकमें सिक्के भी चलाए थे, ऐसा प्रतीत होता है। मि० सी० जे० ब्राउन एम० ए०ने अपनी पुस्तक The Coins of India की प्रथम प्लेटमें सिक्कोंकी प्रतिमूर्तियोंमें ऐसी कई दीं हैं जिनमें ऐसे धार्मिक चिन्ह हैं जो जैनधर्मसे सम्बन्ध रखते हैं। हम यहां उनमेंसे केवल दोको नं० २ और नं० ५को लेकर इस बातको प्रकट करेंगे कि उन सिक्कोंपरके धार्मिक चिन्ह भगवान महावीर और आदि जिन ऋषभनाथकी पवित्र स्मृतिको प्रकट करते हैं। मि० ब्राउन इन सिक्कोंको ईसासे पहिले ६००–३०० में ढले और प्रचिलित व्यक्त करते हैं और इनके विषयमें कहते हैं कि:—

" Much further detailed Study of these coins will be needed before anything can be definitely stated about the circumstances in which they were minted. " (Page 15.)

इससे प्रकट है कि अभीतक आप इन सिक्कोंके ढलनेके कारणोंको निश्चित नहीं करसके हैं। अस्तु, अब हम उक्त सिक्कोंके चिन्होंका वर्णन करके यह प्रकट करेंगे कि यह सिक्के भगवान महावीरके पवित्र स्मारकमें चालू हुए थे। उस समयकी एवं उससे पूर्वकी धार्मिक घटनाओंको प्रगट करनेवाले धर्मचिन्ह उन घटनाओंकी पवित्र स्मृति बनाए रखनेके लिए लेलिए गए थे। उनसे इसके सिवाय धार्मिक प्रचारका भाव नहीं निकाला जा सक्ता। जिस यथार्थ रीतिमें उस धर्म प्रधान जमानेमें धार्मिक घटनाएं

घटित हुई थीं, ठीक उसी रीतिको प्रकट करनेवाले भावमय चिन्होंको लेलिया गया प्रतीत होता है, और इससे यह प्रकट हो जाता है कि उस समय जैन तीर्थङ्करोंकी विशेष प्रभावना जन-साधारणके हृदयोंमें घर किए हुए थी।

मि० ब्राउनकी उक्त पुस्तकमें प्लेट नं० १ की कुंजी (Key to Plate 1) में नं० २ और नं० ९ के सिक्कोंका इस प्रकार वर्णन दिया हुआ है–

२. चौकोण Punch-marked सिक्का। चांदी।

सीधीतरफः–वैल, सूर्य आदि। उल्टीतरफः–कई अप्रकट चिन्ह।

९. तक्षशिला; Double diecoin तांवा। तौल १८० ग्रेन।

सीधीतरफः–हाथी और उसके ऊपर चैत्य।

उल्टी तरफः–ताकमें, वाम ओर खड़ा हुआ सिंह जिसके ऊपर स्वस्तिका, वाममें चैत्य।

नं० २में वैल सूर्य्यादि चिन्ह बतलाए हैं; परन्तु ध्यानसे देखनेसे उसमें वैल और सूर्य्यके ऊपर बिगड़ा हुआ स्वस्तिका और एक गोलाकार जिसके मध्यमें विन्दु है, प्रकट होता है। अव यह देखना है कि इन चिन्होंसे जैनधर्मका क्या संवन्ध है। यह याद रहे कि यह सिक्का भगवान ऋषभनाथके स्मारकमें प्रचलित हुआ प्रतीत होता है। परन्तु प्रतिबिम्बके अविनयके डरसे वह न रक्खी गई; और उसके स्थानपर तत्सम्बन्धी धार्मिक चिन्ह रक्खे गए। हम जानचुके हैं कि भगवान ऋषभनाथकी प्रतिबिम्बका चिन्ह बैल है और बैलसे भाव गुप्त भाषामें धर्मसे है। सूर्य्यका अर्थ उसी भाषामें केवलज्ञानावस्थासे है। (See The Practical Path p. 192)

स्वस्तिकासे प्रकट जैनभाव हम पहिले दर्शाचुके हैं। गोलाकारके मध्यविन्दुसे भाव संसारी आत्मासे होगा। इस प्रकार हमको इन चिन्होंसे यह भाव मिल जाता है कि वृषभ चिन्हकी प्रतिविम्ब भगवान ऋषभदेवकी है। इसलिए ऋषभदेव (बैल) जो केवलज्ञानके धारक (सूर्य्य) थे वह बतला चुके हैं कि आत्मा और पुद्गलका मेल है, जिसके कारण जीव चर्तुगतिमें भ्रमण कररहा है (स्वस्तिका) और लोक (गोलाकार) के मध्य भ्रमण करनेवाले जीवकी आत्मा उसमें मौजूद है (विन्दु)। उल्टी तरफके अप्रकट चिन्हों द्वारा इस अवस्थासे छूटनेका उपाय बतलानेवाली घटनाका उल्लेख किया गया होगा। अस्तु, इन चिन्होंका भगवान ऋषभदेवके जीवनसे इस प्रकार साञ्जमस्य बैठ जाना हमको विश्वास दिलाता है कि भगवान ऋषभदेवके स्मारकमें यह सिक्का ईसासे पूर्व ६००—५००में ढाला गया था जब जैनधर्मका प्रभाव भगवान महावीरके तीर्थमें खूब फैल रहा था।

नं० ९ के सिक्केके चिन्होंका सम्बन्ध भगवान महावीरसे है। उसमें एक तरफ हाथी और तीन दरवाजोंका चैत्य (Three-arched) है। हाथी भगवानकी माताको स्वप्नमें सर्व प्रथम दिखाई दिया था, जिसका भाव था कि तीर्थंकरका जन्म होनेवाला है, जो संयुक्त रत्नत्रय मार्ग (Three-arched Chaitya) को प्रकट करेंगे। दक्षिणका पाण्डय राजवंश जैनधर्मानुयायी था। उनके सिक्कोंपर भी हाथीका चिन्ह है। (See the Coins of India P. 62) इससे यही प्रकट है कि हाथीका चिह्न जैनधर्मसे संबंध रखता है। इस सिक्केके दूसरी ओर ताकमें सिंह, स्वस्तिका

और चैत्य बतलाया गया है। चैत्य वैसा ही तीन महरावोंका संयुक्त तिदरा है; परन्तु इसके ऊपर अर्धचन्द्राकार अवश्य है। यह साफ प्रकट कररहा है कि यह तिदरा बौद्धोंका चैत्य नहीं है। बल्कि इसके कुछ अधिक माने हैं; क्योंकि अर्धचन्द्राकार चिन्ह इसके ठीक ऊपर है। इन चिन्होंका यथार्थ भाव इस प्रकार युक्ति-संगत प्रतीत होता है और वह भगवान महावीरके तीर्थंकरपनेकी घटनाका उद्योतन करता है। अर्थात् ताक भगवान महावीरके सम-वशरणको प्रगट करता है। उसमें जो सिंह है वह इस बातको जाहिर कर रहा है कि तीर्थंकर भगवानने जन्म ले लिया है और उनका तीर्थ प्रवृत रहा है। उनका दिव्योपदेश होरहा है क्योंकि हमको मालूम है कि सिंह भगवान महावीरकी प्रतिविम्बका चिन्ह है। अस्तु, प्रतिविम्बके स्थानपर उनका चिन्ह रक्खा गया, जिससे अविनय न हो और भाव प्रकट होजाय। भगवानने अपने दिव्योपदेशसे यह प्रकट कर दिया कि जीव और पुद्गलका संबंध है जिसके कारण जीव चतुर्गतिके दुःख उठा रहा है (स्वस्तिका)। इस दुःखसे छुटकारा पानेका मार्ग तीन दरवाजोंकी जुड़ी हुई तिद-रीमें (रत्नत्रय मार्ग) होकर है। उस मार्ग पर चलनेसे जीवके दुःखका अन्त होता जाता है। और वह उस मार्गको पूर्ण करके अपने निजाधाम मोक्ष देश (अर्धचन्द्राकार)में पहुंच जाता है। जैनशास्त्रोंमें मोक्षस्थान अर्धचन्द्राकार बतलाया गया है। इस प्रकार इस सिक्केका भी भाव नं० २ के सिक्केकी भांति है। और इसका ऐकीकरण भगवान् महावीरकी जीवन घटनाओंसे होजाता है। अतः यह सिक्का भगवान महावीरकी पवित्र स्मृतिमें भगवान ऋष-

भदेवके स्मारकमें नं० २ सिक्केको ढालनेवाले व्यक्ति द्वारा ही ढाला गया था ऐसा प्रतीत होता है। इनके अतिरिक्त इसी प्लेटका नं० ३ और प्लेट नं० ३ का नं० ९ के सिक्के भी भगवान महावीरके स्मारकरूपमें चले प्रतीत होते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवान महावीरके जीवनंकालमें जैन धर्मका अपूर्व प्रभाव प्रत्येक प्राणीके हृदयमें घर करगया था। वह ज़माना 'जैनकाल' कहा जासक्ता है। उनके पवित्र स्मारकमें सिक्कों, अब्द, त्यौंहारका चलन उनके इस दिव्य प्रभावका खास उदाहरण है। पीछे जब उनके निर्वाणके उपरान्त संघमें मत-भेद खड़ा होगया, तब उस समयकी दूसरी मुख्य सम्प्रदाय बौद्धका प्रचार हुआ होगा। परन्तु अब उसका नाम ही इस पवित्र देशमें अवशेष है। जैन धर्मका अस्तित्व दुःख सहनेपर भी आज भारतमें विद्यमान है, क्योंकि वह साक्षात् सत्य है।

भगवान महावीरके दिव्य तीर्थका प्रभाव और प्रवाह भारत-वर्षमें ही सीमित नहीं रहा था। जैन सम्राट् चन्द्रगुप्तके जमानेमें सिकन्दरने भारतपर आक्रमण किया था। अपने देशको लौटते हुए सिकन्दर जैन मुनियोंको अपने साथ ले गया था। साथ ही यूनानसे लोग जैनधर्मका अध्ययन करने भारतवर्षमें आए थे, जैसे कि "Historical Gleanings" नामक पुस्तकमें कहा है कि "ग्रीक फिलासफर पैर्रहो (Pyrrho) ईसासे पूर्वकी ४ थी शताब्दिमें यहां आया था और उसने जैन साधुओं (Gymnosophists) से विद्याध्ययन किया था।" (Page 42) इसके अतिरिक्त हम पहिले ही देख चुके हैं रोम, नारवे जैसे सुदूर देशोंमें

भी जैनधर्मका प्रचार हुआ था। जैनधर्म भारतवर्षमें ही सीमित नहीं रहा था। भगवान महावीरके धर्मके प्रचारके विषयमें सर हेनरी रोलिन्सन साहब अपनी "प्रोसीडिंग्स ऑफ दी रोयल ज्योगराफीकल सोसाइटी, सेप्टेम्बर १८८५ में और अपनी पुस्तक "सेन्टरल ऐशिया" (पृष्ठ २४६)में इस बातकी ओर ध्यान आकर्षित करते हैं कि "बोक (Balk) में जो नया विहार और इंटोंके अन्य खंडहर निकले हैं वह वहांपर काश्यपोंके अस्तित्वको प्रकट करते हैं। महावीरस्वामीका गोत्र काश्यप था। और इनके अनुयायी भी कभी२ काश्यपोंके नामसे विख्यात हुए थे। यह भी ध्यान देनेकी बात है कि भौगोलिक नाम 'कैसपिया' (Caspia) काश्यपके सदृश है। अतः यह बिल्कुल संभव है कि जैनधर्मका प्रचार केसपिया, रूमानिया और समरकंद, बॉक आदिके नगरोंमें रहा था।" (See Jain Gazette Vol: III No. 5 P. 13) मुसलमानोंके पवित्र स्थान 'जजीरुल अरब'में भी संभवता जैन साधुओंका प्रभाव पड़ा था; क्योंकि अभी हालमें जो एक जीवनी हजरत मुहम्मदकी अंग्रेजीमें प्रगट हुई है उसमें लिखा है कि 'हजरत मुहम्मदके पेदा होनेके पहिले अरबमें नंगे मनुष्य भी रहा करते थे।' अस्तु, इन सब वर्णनोंसे प्रकट है कि जैनधर्मका ईसाकी पूर्वकी शताब्दियोंमें प्रभावशाली अस्तित्व रहा है। और उसके अनुयायी प्रख्यात मनुष्य थे, जिनकी कीर्ति आज भी भारतीय इतिहासके मध्य स्वर्णाक्षरोंमें चमक रही है। उसकी हालत वर्तमानके जैनियोंके धर्म सदृश ह्रासजनक न थी।

भगवान महावीरके पश्चात् भारतवर्षके राजाओंमें मुख्य राजा

जिन्होंने जैनधर्मको अपनाया था, इस प्रकार थे—अजातशत्रु, चंद्रगुप्त मौर्य, अशोक, सम्प्रति, खारवेल, अमोघवर्ष, कुमारपाल और दक्षिण देशके पाण्डया, चोल, गंग आदि वंशोंके प्रख्यात राजा जैन थे। उनमें एक प्रख्यात् जैन राजाके मंत्री चामुण्डराय जैनधर्मानुयायी सिद्धांत चक्रवर्ति श्रीमद् नेमचंद्राचार्यके शिष्य थे। यह बड़े प्रख्यात् योद्धा और सेनापति थे। क्षात्रधर्ममें अपूर्वता रखनेवाले एक अन्य जैन योद्धा वह थे, जिन्होंने पृथ्वीराजके एक शत्रुकी सेनाके अध्यक्षपनेका भार अपने सिर लिया था। मेवाड़के सच्चे भक्त, वैश्यकुलदिवाकर भामाशाहका नाम किसीसे छिपा नहीं है। यह ओसवाल जैन थे। अपनी अतुल सम्पत्तिको राणा प्रतापके चरणोंमें समर्पितकर यवनोंसे पददलित न होने देकर देशकी लाज इन्होंने ही बचाई थी। अस्तु, भगवानके उपरान्त संघके प्रख्यात पुरुषोंका एक अलग ही इतिहास बन सक्ता है। इसलिए यहांपर केवल तीन प्राचीन जैन राजाओंका थोड़ासा वर्णन मात्र करेंगे।

अजातशत्रुके पश्चात् प्रख्यात सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य जैन राजा हुए थे। वे सन् ई०से ३२२ वर्ष पहिले गद्दी पर बैठे थे। २४ वर्ष तक सुनीतिपूर्वक अपूर्व राज्य करके उन्होंने सन् ई०से २९८ वर्ष पहिले राज्य छोड़ा था, परन्तु उनके शीघ्र मरणका जिक्र नहीं है। इससे जैनशास्त्रोंका यह कहना कि चन्द्रगुप्त जैन साधु हुए ठीक है। और वे श्रुतकेवली भद्रबाहुके पीछे १२ वर्ष तक जीते रहे। और ६२ वर्षकी अवस्थामें मृत्युको प्राप्त हुए थे।

आपके राज्यका सुप्रबन्ध और उसके फलस्वरूप सुख सम्पन्नता इतिहासमें विख्यात है। उनके प्रख्यात मंत्री चाणिक्य ब्राह्मण

थे। राज्यप्रणालीका ढंग वर्तमानकी सभ्य गर्वन्मेन्टों जैसा था। म्यूनिसिपल कारपोरेशन आदि प्रजासत्तात्मक संस्थाऐं थीं। पुलिस भी थी। प्रजाके कष्टोंकी जांच रखनेके लिए गुप्तचर विभाग भी था। विशाल सेना भी थी जिसके उत्साहसे आपने समग्र भारत-पर आधिपत्य जमा लिया था। शिल्प, चित्रकारी आदि विद्याओं और कलाओंकी भी खूब उन्नति थी। पाटलिपुत्र (पटना) जहांपर कि इनकी राजधानी थी, की खुदाईमें जो सुन्दर गृह आदि निकले हैं, उनसे उस समयकी कारीगरीका अन्दाजा लगाया जा सक्ता है।

चन्द्रगुप्तका वाहुवल इतना बढ़ा चढ़ा था कि प्रख्यात् इन्डो-ग्रीक राजा सेल्यूकसको इनसे संधि करने पड़ी थी। प्राचीन भारतीय सेनामें जलसेनाका कहीं उल्लेख नहीं मिलता है; परन्तु चंद्रगुप्त मौर्यके राज्यकी ओरसे एक जलसेना भी रहती थी जिसका प्रवन्ध जलसेना विभाग किया करता था। मेगस्थनीज और चाणिक्य अर्थशास्त्र इस बातकी पुष्टि करते हैं। अस्तु, चंद्र-गुप्त मौर्यका राज्यकाल एक आदर्श राज्य था।

ऐसे आदर्श सम्राटका राज्यधर्म भी आदर्श था। चन्द्रगुप्त मौर्य जैन धर्मानुयायी थे। मि० विन्सेन्ट स्मिथके निम्नवाक्य इस बातको साफ व्यक्त करते हैं। यद्यपि इसके उपरान्त प्रकट प्रमाणों द्वारा प्रकतन विमर्श विचक्षण रायवहादुर आर० नरसिंहाचर एम० ए० एम० आर० ए० एस०ने अंग्रेजी जैनगजटके भाग १८ अंक ८-९-१०-११-१२ में पूर्णरूपेण चन्द्रगुप्त मौर्यको जैन प्रकट किया है। मि० स्मिथ लिखते हैं:—

"चंद्रगुप्त मौर्य्यके अपूर्व राज्यका अंत जिस प्रकार हुआ

उसका प्रकट प्रमाण जैन कथानक है। जैनी इस प्रख्यात सम्राटको राजा बिम्बसारकी भांति सदैव जैन प्रकट करते हैं। और कोई भी ऐसा पूर्ण कारण उपलब्ध नहीं है, जिससे उनका यह विश्वास मिथ्या स्वीकृत हो। मगधमें पश्चात्के शैसुंगों, नंदों और मौर्य्यके राज्यकालमें अवश्य ही जैनधर्म पूर्ण प्रभावका भोक्ता रहा था। यह व्याख्या कि चंद्रगुप्तको राज्यकी प्राप्ति एक विद्वान ब्राह्मण द्वारा हुई थी, जैनधर्मको राज्यधर्म माननेमें किसी प्रकार बाधक नहीं है। मुद्राराक्षस नाटकमें एक जैन राक्षस नामक मंत्रीका मित्र प्रकट किया गया है, जिस (मंत्री)ने पहिले नंदकी सेवा की थी पश्चात्में नए सम्राटकी। एकवार इस व्याख्याके स्वीकृत होजानेसे कि चंद्रगुप्त जैन थे यह बात प्रमाणित होजाती है कि उन्होंने राज्यको छोड़कर जैन साधुवृत्ति द्वारा स्वर्गको प्राप्त किया था। यह कथानक इस प्रकार है कि जब जैन साधु (श्रुतकेवली) भद्रबाहुने उत्तरीय भारतमें एक बारह वर्षके अकालके आगमनको सूचित किया और जब यह पूर्व वाणी घटित होने लगी, तब साधुने १२००० जैनोंके साथ दक्षिणके सुभिक्षमय स्थानोंकी ओर प्रस्थान किया। सम्राट् चन्द्रगुप्तने राज्यसिंहासन छोड़कर इसी संघका साथ दिया जो मैसोरमें श्रवणबेलगोलकी ओर जा रहा था, जहां भद्रबाहु मृत्युको प्राप्त हुए। पूर्व सम्राट् चन्द्रगुप्त इनके पश्चात् १२ वर्ष जीवित रहे। और उपवास करके मृत्युको प्राप्त हुए। इस व्याख्याकी पुष्टि श्रवणबेलगोलके मन्दिर आदि; और ईसाकी सातवीं शताब्दिके शिलालेख; तथैव १०वीं शताब्दिके ग्रन्थ करते हैं। यह प्रमाण सारभूत नहीं गिने जासक्ते, परन्तु खूब मननके पश्चात् मैं कथानककी मुख्य

बातोंको सत्य माननेके लिए बाध्य हुआ हूं । यह निश्चय होना कि जब सन् ई० से पहिले ३२२ वर्षमें चन्द्रगुप्त सिंहासनारूढ़ हुए तब वे नितान्त युवा और अनविज्ञ थे, प्रकट करता है कि जब २४ वर्ष उपरान्त उन्होंने राज्य छोड़ा तब उनकी उमर ५० वर्षके करीब थी। इतनी कम उमरमें इनका लोप होजाना साक्षी देता है कि उन्होंने राज्यभार छोड़ दिया था। राजाओंके ऐसे ही अन्य त्यागोंका उल्लेख उपलब्ध है, और १२ वर्षका अकाल भी विश्वास करने योग्य है। इसलिए जैन कथानक सत्य है। और कोई अन्यथा वर्णन उपलब्ध नहीं है।"

इस प्रकार प्राचीन भारतीय सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य्य अन्तमें श्रुतकेवली भद्रबाहुके निकट जैनमुनि होगए थे। उनके चरणचिन्ह श्रवणवेलगोलके एक मंदिरमें अङ्कित हैं। और उनका बनवाया हुआ एक मंदिर भी वहांपर विद्यमान है। इसी विषयमें मि० थामस साहेब अपनी पुस्तक "जैनीजम ऑर दी अर्ली फैथ ऑफ अशोक" में लिखते हैं कि राजा चन्द्रगुप्त जैन थे। तथा मेगस्थनीजने लिखा है कि राजा चंद्रगुप्त जैनमुनि श्रमणोंका भक्त था जो ब्राह्मणोंके विरोधी थे। राजा चंद्रगुप्तके पीछेके राजा भी जैनी थे। राजा अशोक भी पहिले जैन थे, फिर बौद्ध हुए। आइने अकबरीमें अबुलफजलने लिखा है कि राजा अशोकने जैनधर्म काश्मीरमें फैलाया था। राजतरिंगणीमें भी यह बात लिखी है।

अशोकका वह शिलालेख जो दिहलीमें दिहली दरवाजे बाहर कोटलाके ऊंचे स्थानपर अवस्थित खंभेपर अंकित है, अशोकको जैनी प्रकट करता है अर्थात् यह शिलालेख उस समय लिखा गया

था जब राजा अशोक जैनधर्मको माननेवाला था। अपने राज्यका-लके २९ साल तक यह जैनी रहा। जैनधर्मभूषण श्रीमान ब्रह्म-चारी शीतलप्रसादजीने जैनमित्र वर्ष २२ अंक ४३ के ६६५ पृष्टपर इस शिलालेखकी नकल दी है। और उसके ऐसे वाक्योंकी टीका की है जिनसे जैनधर्म झलकता है। जैसे नं० २में अपासि-नवे शब्द है अपस्रवत्वम्=जिसमें आश्रव (कर्मोंका आना) न हो। यह धर्मका विशेषण है। आश्रव शब्द जैनियोंका मुख्य शब्द है। नं० ३का उपदेश बिल्कुल जैनमत सदृश है। कषायोंमें फंसनेको आश्रव शब्द दो दफे आया है।

इस विषयमें डॉ० कर्नसाहब अपनी सम्मति इस प्रकार देते हैं कि "जो स्तंभोंपर लेख है उनसे राजा अशोकने अपनी प्रजाके लिए अपने बड़े राज्यमें, जो विहारसे गान्धार और हिमालयसे कारोमंडल एवं पाण्डय देश तक था, क्या किया सो प्रगट होता है। योग्य समय और स्थानपर अशोक जिस धर्मको वह मानता था, उसके अनुसार नम्रभावसे वह वर्णन करता है; किंतु बुद्धमतका भाव उसकी राज्य प्रणालीमें कुछ नहीं पाया जासक्ता। अपने राज्यके बहुत प्रारम्भसे वह एक अच्छा राजा था। पशु रक्षा परकी जो उसकी शिक्षाएं हैं वे बौद्धोंकी अपेक्षा जैनियोंके विचारोंसे अधिकतर मिलती हैं।"

अस्तु, इस वर्णनसे हमें राजा अशोकके विशाल राज्यका और उसका प्रजाके प्रति प्रेमपूर्ण देखभालका पता चल जाता। और मालूम होजाता है कि प्रारम्भमें २९ सालतक उन्होंने अपने राज्यका प्रबंध अपने धर्म जैनधर्मके नियमोंके अनुसार किया था

गिरनारजीमें जो अशोकका शिलालेख है उससे सच्चा दयाधर्म टपक रहा है। राजा अशोकका राज्य कितना विस्तृत था सो प्रगट है। ग्रीसमें भी उसकी आज्ञा प्रचलित थी। पवित्र अहिंसा धर्मका प्रचार अशोकने सुदूर देशोंमें किया था। जैनधर्मके सान्तवनादायक मिष्ट उपदेश सबको बताए थे। अवशेषमें सम्राट खारवेलका वर्णन इस प्रकार है—

उड़ीसा प्रान्तके 'खण्डगिरी' पर्वतपर, जो कि कटकके पास भुवनेश्वरसे ४—५ मीलकी दूरीपर है 'हाथीगुफा' नामका एक प्राचीन सुरम्य स्थान है, जहां एक प्राचीन शिलालेख पुराने गौरवको अपनी गोदमें लिए हुए है। लेखकी लिपि उतरीब्राह्मी है, जिसका समय बूल्हरसाहबके मतानुसार ईसासे प्राय: १६० वर्ष पूर्व है। इसी लेखसे सम्राट् खारवेलके जीवनपर प्रकाश पड़ता है। मि० के० पी० जैसवाल प्रभृत विद्वानोंने इसका अध्ययन करके उल्था प्रकट किया है। उससे जाना जाता है कि राजा अशोकके पीछे कलिङ्ग देशमें राजा खारवेल बड़े प्रतापी जैन सम्राट् हुए। राजा खारवेलका जन्म सन् ई०से १९७ वर्ष पूर्व अर्थात् राजा अशोककी मृत्युके ४० वर्ष पीछे हुआ था। इसके पिताका नाम राजा चेतराज था। १३ वें वर्षमें उन्होंने युवराजपद पाया। २९ वें वर्षमें यह राजा हुए। उस समय कलिङ्ग देशमें जैनधर्मका पूर्ण प्रचार था। राज्यपरिवार भी इसी मतका अनुयायी था। तोशाली इनकी राज्यधानी थी जिसे इन्होंने पुनर्निर्माण कराई। अनेक उद्यान ठीक कराए। कृषिके लिए नहरें खुदाई। इसके प्रजाहितैषी कार्यसे इसकी ३९ लाख प्रजा बहुत प्रसन्न हुई। मूर्षिक राज्य जो कलि-

गके पश्चिममें पैथान (प्रस्थान) और गोडवानाके मध्यमें है उसको वश किया। तथा कई देशोंमें प्रजातंत्रात्मक राज्य था उनको भी अपने आधिपत्यमें लिया। चार वर्षमें यह दक्षिण भारतका सार्वभौम सम्राट् हो गया।

खारवेलका राज्य अन्याय एवं निरंकुशतापूर्ण न था। राजा स्वच्छंद नहीं होता था। उसकी शक्ति मंत्रिमंडल द्वारा परिमित होती थी। पौरमें राजधानीके व जानपदमें ग्रामोंके प्रतिनिधि रहते थे। इसने इन संस्थाओंके अधिकारोंमें वृद्धि की थी। इस समय उत्तर भारतमें पुष्पमित्र पाटलीपुत्रमें राज्य करता था। मगधदेशका राजा नन्द ३०० वर्ष पूर्व कलिंगपर आक्रमण करके जैनियोंके प्रथम तीर्थङ्कर श्री ऋषभदेवकी मूर्तिको ले गया था। इस मूर्तिका उद्धार करनेके लिए खारवेलने पुष्पमित्रपर चढ़ाई की। अंतमें पुष्पमित्रने खारवेलका महत्व स्वीकार कर लिया। दोनोंमें संधि हो गई, और श्री ऋषभदेवकी मूर्ति कलिंगमें पुनः आगई। इससे प्रतीत होता है कि राजा खारवेल गृहस्थवर्गका कैसा उत्तम रक्षक था। दक्षिणके पाण्डय राज्यने भी खारवेलका प्रभुत्व स्वीकार कर लिया था। तेरहवें वर्षके अनुमान इसने बहुतसे धार्मिक कृत्य किए। कुमारी पर्वतपर अर्हत मंदिरका जीर्णोद्धार कराया व पत्थरका दूसरा भवन बनवाया। इसके धर्मकार्योंसे प्रसन्न होकर प्रजाने उन्हें क्षेमराज, वर्द्धराज, भिक्षुराज व धर्मराजकी उपाधिसे विभूषित किया। शिलालेखमें १३ वर्ष राज्यकालका वर्णन है। इसके आगेका नहीं; परन्तु उसकी प्रधान राजमहषी धृष्टिका उत्कीर्ण कराया हुआ स्वर्गपुरी अथवा मंचपुरी नामका दूसरा शिलालेख

है, उससे विदित होता है कि उसने ३०–४० वर्ष और राज्य किया। जिन राजाओंको खारवेलने जीता उनका राज्य नहीं छीना, किन्तु उनके नाम सम्मानके साथ शिलालेखमें लिखाए। इस दृष्टिसे खारवेल मनुष्यता और राजाओंके सम्मानके कारण अशोकसे अधिक उच्च है। इसने शिल्पकी वहुत वृद्धि की। अनेक राजप्रसाद, देवमंदिर व सार्वजनिक भवनोंका निर्माण कराया। इसमें धार्मिक सहनशीलता भी थी। प्राचीन भारतने प्राचीन यूनान और रोमके समान भिन्न धर्मावलंवियोंके साथ कभी भी अत्याचार नहीं किया। खारवेल जैन धर्मके अनुयायी थे पर ब्राह्मणोंका भी किसी खास अवसर पर सन्मान करते थे–दान भी देते थे। (देखो जैनमित्र वर्ष २२ अंक ३४ पत्र ५२१)

इस प्रकार भगवान महावीरके तीर्थका अपूर्व प्रभाव प्रकट होता है, और भगवानके भक्तोंमें कुछ विशेष विख्यात् राजाओंका दिग्दर्शन प्राप्त होता है। अव हम भगवान महावीरके पवित्र जीवनसे जो शिक्षाऐं मिलती हैं, उनका उल्लेख करते हैं।

(३५)

जीवनसे प्राप्त प्रगट शिक्षाएँ और उपसंहार।

" सन्त्येव कौतुक शतानि जगत्सु किंतु,
विस्मापकं तदलमेतदिह द्वयं नः।
पीत्त्वाऽमृतं यदि वमन्ति विसृष्ट पुण्याः,
सं प्राप्य संयमनिधिं यदि च त्यजन्ति॥ "

—आत्मानुशासन।

श्रीमान् गुणभद्राचार्य उक्त श्लोकमें कहते हैं कि " जगमें आश्चर्यकारी बहुतसी बातें हैं; व सदा होती रहती हैं, परन्तु हम उन्हें देखकर भी आश्चर्य नहीं मानते और असली आश्चर्य उनमें है ही नहीं। वस्तुओंका जो परिवर्तन कारण पाकर होनेवाला है, वह होगा ही। उसमें आश्चर्य किस बातका? हाँ! ये दो बातें हमको आश्चर्ययुक्त जान पड़ती हैं। कौनसी? एक तो यह कि अति दुर्लभ अमृतको पीकर उसे उगल देना; दूसरी यह कि संयमकी निधि पाकर उसे छोड़ देना। जो ऐसा करते हैं वे भाग्यहीन समझना चाहिए।"

मनुष्य जन्म एक आदर्श जन्म है, यदि उसका सदुपयोग किया जाय। इसीसे मनुष्य साधारणतया जीवित प्राणियोंमें सर्वोत्कृष्ट माना गया है। 'अशर्फुलमखलूकात' बतलाया गया है। Noblest Creature in the world जतलाया गया है।

इसलिए मनुष्यने साक्षात् अमृतको पा लिया है। अब उसका कर्तव्य है कि उसका सदुपयोग करनेके लिए संयमका आश्रय ले और अपने जीवनको सार्थक बनावे, स्वस्वरूपामृतका पान करे, बाह्य दिखावटी बातोंमें न फंसे, इन्द्रियोंकी विषयपूर्तिमें अपने जीवनके अमूल्य दिवस नष्ट न करदे, अपनी इच्छाओंको सीमित करता चले, और जो बातें अपनेको प्रिय समझे, वही दूसरे प्राणियोंके लिए भी—चाहे वे कितनी भी नीच अवस्थामें क्यों न हों—प्रिय समझे। इसलिए पशुओंकी हत्या न करे। उन्हें और अपने साथी भाईयोंको यथाशक्ति मन, वचन, काय द्वारा कष्ट न दे, उनके जीवनको कष्टमय न बनाए। यदि होसके तो उनके कष्टोंको दूर हटानेका प्रयत्न करे। सदैव अपनी आत्मोन्नतिका ध्यान रक्खे। अपनी आत्मामें ही अपूर्व सुख, शांति, और वीर्य्यके भण्डारको खोजनेका प्रयत्न करे। अपनी आत्माको विना जाने और समझे कोई भी मनुप्य सत्पथ—संयमका अनुसरण नहीं करसक्ता। इसलिए अपनी आत्माका ध्यान रक्खे। भगवान् महावीरके जीवनका साधारण अक्स हमारे हृदयपर उक्त प्रकार पड़ता है। अनुपम नर जन्म पाकर उसको सफल बनाना हमारा परमोपादेय कर्तव्य झलकता है। अस्तु।

"नरजन्म अनूपम पाय अहो, अब ही परमादनको हरिये।
सरवज्ञ अराग अदोषितको; धर्मामृतपान सदा करिये॥
अपने घटको पट खोल सुनो, अनुभौ रसरंग हिये धरिये।
भवि वृन्द यही परमारथकी, करनी करि भौ तरनी तरिये॥"

अन्यथा अमृतको पाकर विषयवासनाकी कींचड़में वेहद

फंसकर अपने पैर धोनेमें ही उसे व्यर्थकर दीजिए; और विवेकी पुरुषोंको इस अनूठी बातपर आश्चर्य करने दीजिए। परन्तु नहीं, पाठक जानते होंगे कि महान् आत्माओंका जीवनप्रकाश हमें अज्ञानान्धकारमेंसे निकाल सक्ता है इसलिए उनके जीवनसे प्राप्त मुख्य शिक्षाओंका अवश्य ही अवलम्बन करना चाहिए। अंग्रेज कवि भी इन महात्माओंके विषयमें यही कहता है:—

> " *Through Such Souls alone*
> *God stooping shows sufficient of His Light*
> *For us in the dark to rise by.* "

भगवान महावीरके पवित्र पावन जीवनसे प्राप्त साधारण शिक्षाका उल्लेख पहिले किया जाचुका है। परन्तु उससे विशेष रूपमें उपयुक्तरीत्या मि० जुगमन्दरलाल जैनी एम० ए० आदि ने उनका दिग्दर्शन 'Life of Mahavira' की भूमिकामें निम्न प्रकार कराया है—

वे लिखते हैं कि " भगवान महावीरके जीवनमें सर्व प्रथम मुख्य बात यह थी कि उनके हृदयमें समस्त वस्तुओंके कारणको जाननेकी अदम्य इच्छा थी। अध्ययन, दर्शन, मनन और तपद्वारा, जो तत्कालीन भारतके एक सच्चे सत्यखोजीके जीवनके मुख्य अंग थे, उनके प्रयत्नोंने उन्हें उनकी उस इच्छाकी पूर्ण पूर्ति की। उन्हें निर्वाणकी प्राप्ति हुई। ज्ञानोपार्जनका मार्ग बड़ा नीरस है। उसमें पगपगपर विविध संशयात्मक विषयोंका समागम होता है। परन्तु हमारे अंतिम तीर्थङ्करका साहसी हृदय और विचक्षण नेत्र इन सब कठिनाइयोंपर विजयी हुए थे। और वह ज्ञान एवं प्रकाशके

सनातन स्थानको प्राप्त हुए थे ।" इसलिए भगवानके जीवनकी इस मुख्यतामें हमें यह शिक्षा मिलती है कि " पुस्तकावलोकन, अनुशीलन और मनन द्वारा ज्ञानके उपार्जनमें दत्तचित्त रहना चाहिए ।" यदि मनुष्य अपने जीवनके इस कर्तव्यको जान जाएं; और वाह्य संसारसे अपना सम्बन्ध पहिचान लें तो मानवजातिके दुःख बहुत अंशोंमें घट जांय ! और जीवन सुखपूर्ण व्यतीत होसके ।

"दूसरी मुख्य बात भगवान महावीरके हृदयकी अनुपम उदारता है । प्राचीन भूतकालमें इन्होंने जो धार्मिक हलचल पैदा की थी कि जिसमें सर्व जाति और पांतिके एवं सर्व प्रकारकी सभ्यताके मनुष्य सम्मिलित हुए थे, उससे उनका जैनधर्मको उच्च उदारभावमें लेना प्रकट होता है । जैनधर्म कभी भी संकीर्ण न था जैसा कि वह अब है । राजा, रानी, योद्धा, ब्राह्मण, शूद्र आदि सबहीने भगवानके दिव्योपदेशसे लाभ उठाया था । प्रारंभिक बौद्ध धर्मकी भांति जैनधर्मने भी सामान्य जनता (Masses)के दुःखपाशोंको दूर किया था, जो पाखण्डी साधुओं द्वारा त्रसित किए जा रहे थे, परन्तु विस्मय है कि थोड़े ही काल पश्चात् स्वयं जैनधर्मानुयायियोंमें क्रियाकाण्ड और मिथ्या अज्ञानका समावेश होगया । ऐहिक बातोंमें ही धर्म माने जाने लगा है । मामूली आचार पालनेमें ही धर्मपालनकी इतिश्री होजाती है । इसकी इतनी मान्यता बढ़गई है कि यथार्थ सिद्धांत दृष्टिसे ओझल होगए हैं । जो लोग सामान्य जनसमाजके लिए केवल मामूली बातोंको ही उपयोगी बताकर इनका समर्थन करते हैं, वह इस सामान्य जनसमाजको उसके समयसे बहुत पीछे घसीटते व्यक्त करते हैं,

और उन्हें उनकी मुक्तिका यथार्थ मार्ग समझनेके अयोग्य प्रगट करते हैं। हालमें उस सिद्धांतकी सम्पूर्ण स्वतंत्रता मिलनी चाहिए, जो सिद्धांत जैनधर्मके अस्तित्वको कायम रख सकें। इस वातकी वर्तमानकी जैन समाजको विशेष आवश्यक्ता है। और यदि भगवान महावीरके जीवनसे इस विषयमें ज्ञान न मिले तो मैं समझूंगा कि आप अपनी भूलसे वस्तुस्थितिको नहीं जान सक्के।"

"इस जीवनसे तीसरी शिक्षा हमें समयानुसार परिवर्तनके लिए तत्पर रहनेकी मिलती है। संसारमें जाहिरासे ज्यादा लकीरके फकीर होनेके भाव फैलरहे हैं। हमारे विचारोंसे हमारे कार्य्य जल्दी बदल जाते हैं। यही कारण है कि हम नाम मात्रमें श्री तीर्थङ्कर भगवानके उपदेशोंको अपनाते हैं, जब कि हम जानते हैं कि हमारे वास्तविक कार्य इस उपदेशसे कोसों दूर हैं, परन्तु जैनी, अन्य भारतीयोंके साथ, यह भूल गए हैं कि विल्कुल लकीरके फकीर बने रहनेसे नाशके दृश्य नजर आते हैं और सुधार उन्नतिका मूल है। भगवान महावीरके समयमें कठिन तपश्चरणकी आवश्यक्ता थी। उन्होंने उसका आवश्यक प्रचार किया था।" अस्तु, हमें भी योग्य सुधारके लिए सदैव तैयार रहना चाहिए।

चौथी मुख्य वात भगवान महावीरके जीवनकी यह है कि "आपने स्त्रियोंको विशेष स्वतंत्रता प्रदान की थी। सैद्धांतिक रीत्या जैनधर्मने स्त्रियोंके धार्मिक स्वत्वोंकी समानताको स्वीकार किया है। केवल इसके कि दिगम्बर दृष्टिसे स्त्रियां स्त्रीयोनिसे निर्वाणको प्राप्त नहीं हो सक्तीं, परन्तु अमलमें स्त्रियोंका सन्मान इतना नहीं है—वह मनुष्यसे हीन गिनी जाती हैं, परन्तु यथार्थमें उनको

अपनी मान्सिक और शारीरिक उन्नति करनेके अवसर ही नहीं दिए जाते। अस्तु, भगवान महावीरके भक्तोंका कर्तव्य है कि वह स्त्रियोंकी दशा उन्नत बनानेके लिए दृढ़प्रयत्न हों। इससे स्त्रियोंमें उछूंखलता आजानेका भय भयमात्र है।"

पांचवी और अंतिम "बात उन नवयुवकोंके हितकी है जो धीरे २ ऊंचे उठना चाहते हैं, और सत्कीर्तिका मुकुट अपने शीश पर रखना चाहते हैं। ऐसोंके लिए अंतिम तीर्थङ्कर भगवानका चरित्र यह सिखाता है कि जीवनके एक मुख्य उद्देश्यको प्राप्त करनेके लिए जीजानसे दृढ़ प्रयत्न होना चाहिए। उद्देश्यहीन जीवनसे बढ़कर दुःख और पापमय जीवन शायद ही कोई है। हमारे हजारों नवयुवकोंके हृदय शुभ्र उत्साहसे परिपूर्ण हैं, परन्तु उनकी भावनाऐं अनेक हैं। जीवनके एक मुख्य उद्देश्यको न देखनेके कारण बहुतेरोंके उत्तम जीवन नष्ट होजाते हैं। अस्तु, इस कमताईको हटाना हमारा धैर्य्ययुक्त कर्तव्य है। भगवान महावीरने ज्ञानज्योतिके दर्शन किए थे। वह उसीके उपार्जनमें लग गए और अन्तमें निर्वाणको प्राप्त हुए। जैन शास्त्र व्यक्त करते हैं कि आज हम इस भूमिसे निर्वाणको प्राप्त नहीं कर सके, परन्तु यदि हम इस ओर दृढ़प्रयत्न हों, तो क्या यह संभव नहीं है कि हम उस देशको—विदेहको प्राप्त कर लें, जहां अब भी केवली भगवान विद्यमान हैं; और जहाँसे अब भी जीव मुक्त होते हैं।"

अस्तु, वस्तुस्थितिका ध्यान धरकर हमको भगवानके दिव्य जीवनसे अपनी आत्माका उपकार करनेका भाव सीखनेका अपूर्व पाठ मिलता है। भगवानके निर्मल चारित्रसे अपनी और परकी

आत्माओंके कल्याणकारी कार्योंके करनेमें कर्तव्यशील होना हमारा कर्तव्य झलकता है। संसारमें बढ़े हुए त्रासको हटानेके प्रयत्न करना सार्वभौमिक धर्म प्रकट होता है। मानव समाजमें चहुं ओर दुःख-दर्दके क्रन्दननाद होरहे हैं। त्राहि त्राहि मच रही है। उसे भगवानके पावन चरित्रसे अपने स्वरूपका भान लेना चाहिए। और आपसी विद्वेष और स्वार्थवासनाओंको हृदयसे दूर हटाना चाहिए। सारे संसारके जीव अपने समान हैं; उनके स्वत्व भी और जीवन कर्तव्य भी हमारे समान हैं; इसलिए उनसे प्रेम पूर्ण सहयोग करना मनुष्योंका कर्तव्य है। भगवान महावीरके पवित्र जीवन और दिव्योपदेशसे हमें उत्कृष्ट साम्यभावकी शिक्षा मिलती है; जिसका मिलना स्वाभाविक है क्योंकि भगवान महावीर अपने मानव जीवनमें ही परमात्म पदको पाचुके थे। उनकी शिक्षासे हमें 'विश्वप्रेम' का पाठ मिलना अनिवार्य्य है। किसी भी धर्म, किसी भी जाति, किसी भी योनिका जीव क्यों न हो वह हमारी घृणा और द्वेषका पात्र नहीं है। भगवानका उपदेश हमको सर्वसे मैत्री करने और सर्वको अपनी उन्नति करनेको समान अवसर प्राप्त करनेमें सहायक होनेकी शिक्षा देता है। वह आपसी धार्मिक, साम्प्रदायिक वा अन्य प्रकारके विद्रोहको मानव हृदयसे दूर हटा देता है। भगवान महावीरके समयमें इस भारतवर्षमें सैकड़ों विविध पन्थ प्रचलित थे और वह आपसी ऐंचातानीमें व्यस्त थे। भगवानने अपने उपदेशसे इस स्थितिको दूर कर दिया और जनताको यथार्थ सत्यका भान करा दिया, जिसे कि उसने भुला दिया था। उन्होंने विविध मतानुयायियोंके मन्तव्योंकी यथार्थता

प्रगट कर दी। जतला दिया कि किसी भी मतके मन्तव्य अन्यथा नहीं हो सक्ते, यद्यपि अपेक्षाकृत ही यह संभव है। उदाहरण रूपमें आस्तिक कहता है परमात्मा है और नास्तिक कहता है कि परमात्मा नहीं हैं। प्रगटरूपमें अवश्य ही दोनोंमें भेद है—विरोध है। परन्तु भगवानकी वाणी—सर्वज्ञ वक्तव्य इस विरोधको दूर करता है। वहां वतलाया गया है कि दोनोंका कहना ठीक है। परमात्मा है भी आर नहीं भी। नयविवक्षाका भेद है। स्याद्वाद सिद्धान्त आपसी विरोधको हटानेके लिये अमोघ अस्त्र है, और इसका निरूपण फिरसे भगवान महावीरने अपने दिव्योपदेशसे प्रगट किया था। इस सिद्धान्तका महत्व जैन शास्त्रोंके अध्ययनसे प्रगट होसक्ता है। इसी सिद्धांतको लक्ष्य करके सम्राट् अशोकने भी अपनी एक गिरिलिपिमे इस वातका इस प्रकार उपदेश दिया कि—

" भिन्न २ पन्थोंमें भिन्न २ प्रकारके पुण्य समझे जाते हैं, परन्तु उन सवका एक ही आधार है और वह आधार सुशीलता और सम्भाषणमें शांतिका होना है। इस कारण किसीको अपने पन्थकी प्रशंसा और दूसरोंके पन्थकी निन्दा नहीं करनी चाहिए। किसीको यह नहीं चाहिए कि दूसरोंको विना कारण हल्का समझें; परन्तु यह चाहिए कि उनका सव अवसरों पर उचित सत्कार करें। इस प्रकार यत्न करनेसे मनुष्य दूसरोंकी सेवा करते हुए भी अपने पन्थकी उन्नतिकर सक्ते हैं। इसके विरुद्ध यत्न करनेसे मनुष्य अपने पन्थकी सेवा नहीं करता और दूसरोंके साथ भी बुरा व्यवहार करता है। तथापि जो कोई अपने पन्थमें भक्ति रखनेके कारण अन्यकी निन्दा करता है, वह अपने पन्थमें केवल कुठार मारता हैं।"

(देखो भारतकी प्राचीन सभ्यताका इतिहास पृष्ट १३ भाग ३)।

इसलिए भगवानके दिव्योपदेशसे साम्यभावको अपनाकर हमें उसके महत्वको दिगन्तव्यापी बनानेके लिए आपसी द्वेषोंको गौण करके उनको भूला करके भगवानकी सुधासम वाणीका पान प्रत्येक पिपासी आत्माको कराना चाहिए, और विश्वप्रेमके सुभग रज्जुमें बंधकर मानवोन्नतिमें अग्रसर होना चाहिए जरा २ से मतभेदको द्वेषमें परिणित करनेके स्थानमें उनके मूल कारणको ढूंढ़ना लाभकारी है। अतएव प्रत्येकको भगवानके जीवनसे यथेच्छ लाभ प्राप्त होसक्ता है यह प्रगट है। जिस सार्वभौमिक साम्यभावकी आवश्यकता आज संसारको है उसका पाठ भगवानके दिव्योपदेशसे मिल रहा है। मात्र समझनेवालोंकी दिशाभूल है। उसको दूर करना ही 'वीरभक्तों'का सच्चा कर्तव्य है। अस्तु।

अन्तमें पाठको! स्वपर कल्याणकारक, परम हितैषी, सर्वज्ञ परमात्मा 'वीर' जिनका स्मरण हृदयमें करते हुए पवित्रात्माके निम्न शब्दोंका उल्लेख करके आपसे विदा होते हैं, परन्तु एक दूसरेसे अलग होनेके पहिले आइए भगवानके दिव्य प्रकाशको प्राप्त करनेकी भावना भालें। अस्तु, एवम् भवतु।

स्वर्गासीन आत्मा जब अपने पौद्गलिक शरीरमें थी, तब सुप्रसिद्ध श्रीयुत शिवव्रतलालजी वर्म्मन् एम० ए० संपादक "साधू" "सरस्वतीभंडार" इत्यादिके रूपमें अपने पवित्र उद्गार इस प्रकार प्रकट कर गई—

"गए दोनों जहान नज़रसे गुज़र।
तेरे हुस्नका कोई वशर न मिला"

"यह (भगवान महावीर) जैनियोंके आचार्य गुरु थे। पाक दिल, पाक ख्याल, मुजस्सम पाकी व पाकी जड़ी थे।....हम इनके नामपर, इनके कामपर, और इनकी वेनजीर नफ्सकुशी (इन्द्रियनिरोध) व रियाजतकी मिसालपर जिस कदर नाज़ (अभिमान) करें वजा (योग्य) है।

हम अपने इन बुजुर्गोंकी इज्जत करना सीखें!........इनके गुणोंको देखें, उनकी पवित्र सूरतोंका दर्शन करें, उनके भावोंको प्यारकी निगाहसे देखें क्योंकि यह धर्मकर्मकी झलकती हुई चमकती दमकती मूर्ति है।........उनका दिल विशाल था। वह एकवेपायां कनार समन्दर था, जिसमें मनुष्यप्रेमकी लहरें जोरशोरसे उठती रहतीं थीं; और सिर्फ मनुष्य ही क्यों उन्होंने संसारके प्राणीमात्रकी भलाईके लिये सबका त्याग किया; जानदारोंका खून बहाना रोकनेके लिये अपनी जिन्दगीका अपूर्व उपयोग लगा दिया! यह अहिंसाकी परमज्योतिवाली मूर्तियाँ हैं। वेदोंकी श्रुति " अहिंसा परमो धर्मः " कुछ इन्हीं पवित्र महान पुरुषोंके जीवनमें सूरत इखत्यार करतीं हुईं नजर आती हैं। ये दुनियांके जबरदस्त रिफार्मर, जबरदस्त उपकारी और बड़े ऊंचे दर्जेके उपदेशक और प्रचारक हो गुजरे हैं।

यह हमारी कौमी तवारीख (इतिहास)के कीमती रत्न हैं। हम कहाँ और किनमें धर्मात्मा प्राणियोंकी खोज करते हैं? इनहीको देखें! इनसे बहतर (उत्तम) साहवे कमाल हमको और कहां मिलेंगे! इनमें त्याग था, इनमें वैराग्य था, इनमें धर्मका कमाल था? यह इन्सानी कमजोरियोंसे बहुत ही ऊँचे थे। इनका खिताब " जिन " हैं;

जिन्होंने मोह मायाको और मन और मानको जीत लिया था। यह " तीर्थंकर " हैं। इनमें बनावट नहीं थी, दिखावट नहीं थी, जो बात थी साफ साफ थी। ये (२४ तीर्थंकर) बहलासानी (अनौपम) शखसीयतें हो गुज़री हैं; जिनको जिसमानी कमजोरियों व ऐबोंके छिपानेके लिए किसी जाहिरी पोशाककी जरूरत लाहक नहीं हुई; क्योंकि उन्होंने तप करके, जप करके, योगका साधन करके अपने आपको मुकम्मिल और पूर्ण बना लिया था।"
इसलिए:—

" जो अपनो हित चाहत है जिय, तौ यह सीख हिये अवधारो।
कर्मज भाव तजो सब ही निज, आतमको अनुभौरस गारो॥
वीर जिनचंदसों नेह करो नित, आनँदकंद दशा विस्तारो।
मूढ़ लखै नहिं गूढ़ कथा यह, 'गोकुल गांवको पैंडोहि न्यारो॥"

—वन्दे-वीरम्—

-इति-शुभम्-

परिशिष्ट नं० १

भगवान महावीर और महात्मा गांधी ।

भारतप्राण महात्मा मोहनदास कर्मचंद गांधीजीने जो शब्द भगवान महावीरके सम्बन्धमें ' महावीर जयंती ' के अवसरपर अहमदावादमें कहे थे वह उपयोगी जानकर हम यहां उद्धृत करते हैं। आपने कहा था किः—

" मैं आप लोगोंसे विश्वास पूर्वक यह बात कहूंगा कि महावीरस्वामीका नाम इस समय यदि किसी भी सिद्धान्तके लिए पूजा जाता हो, तो वह अहिंसा है। मैंने अपनी शक्तिके अनुसार संसारके जुदा जुदा धर्मोंका अध्ययन किया है और जो जो सिद्धान्त मुझे योग्य मालूम हुए हैं उनका आचरण भी मैं करता रहा हूं। मैं अपनेको एक पक्का सनातन हिंदू मानता हूं; परन्तु मैं नहीं समझता कि जैन दर्शन दूसरे दर्शनोंकी अपेक्षा हल्का है अथवा उसकी गणना हिन्दू धर्ममें न हो सके; और इसी लिए मैं मानता हूं कि जो सच्चा हिन्दू है वह जैन है और जो सच्चा जैन है वह हिन्दू है। प्रत्येक धर्मकी उच्चता इसी बातमें है कि उस धर्ममें अहिंसातत्वकी प्रधानता हो। अहिंसातत्वको यदि किसीने भी अधिकसे अधिक विकसित किया हो, तो वे महावीरस्वामी थे, परन्तु उन महावीर भगवानका वर्तमान शासन उसका पूरा पूरा आचरण नहीं करता !....आजकलके जैन भाई अगणित छोटे २ जीव जंतुओंकी रक्षा भले ही करते हों परन्तु मनुष्योंके प्रति जो उनका आचरण है—जो वर्ताव है—वह

कदापि ठीक नहीं कहा जासक्ता।..........मैं आप सब लोगोंसे विनती करता हूं कि आप महावीरस्वामीके उपदेशोंको पहिचानें, उनपर विचार करें, और उनके अनुसार आचरण करें। मेरे इस कथनका कहीं आप उल्टा अर्थ नहीं करने लगना। महावीरस्वामी क्षत्रिय थे और उन्होंने जिस अहिंसा धर्मका प्रतिपादन किया है तथा अपने चरित्रके द्वारा जिस अहिंसा और करुणाके दृष्टान्त संसारके सामने खड़े किए हैं, उस अहिंसा धर्म और प्रेमधर्मको समझकर जिस समय आप आचारमें लायेंगे उसी समय समझा जायगा कि आप लोगोंने भगवान महावीरकी वास्तविक जयन्ती मनाई है।" (जैनहितैषीसे)

इसी संबंधमें हम कविसम्राट् डॉ० रवीन्द्रनाथ ठाकुरके भी उद्गार पाठकोंके समक्ष उपस्थित किए देते हैं। कविजी कहते हैं कि "श्री महावीरस्वामीने गंभीर नादसे ऐसा मोक्षका संदेशा भारतवर्षमें फैलाया कि धर्ममात्र सामाजिक रूढ़ि नहीं किन्तु वास्तविक सत्य है। मोक्ष सांप्रदायिक बाह्य क्रियाकाण्ड पालनेसे प्राप्त नहीं होसक्ता किन्तु इस सत्य धर्मके स्वरूपमें आश्रय लेनेसे प्राप्त होता है। तथा धर्ममें मनुष्य और मनुष्यका भेद स्थाई नहीं रह सक्ता। कहते हुए आश्चर्य होता है कि महावीरजीकी इस शिक्षाने समाजके हृदयमें बैठी हुई भेद-भावनाको बहुत शीघ्र नष्ट कर दिया और सारे देशको अपने वश कर लिया।"

आशा है उपर्युक्त उद्गारोंसे पाठक लाभ उठाएंगे। इत्यलम्।

परिशिष्ट नं० ३.

बुद्ध–महावीर।

इस विषयमें मि० के० जी० मशरूवालाके विचार भी हम पठनार्थ उपस्थित करते हैं। आप लिखते हैं कि "बुद्ध और महावीर ये आर्योंकी प्रकृतिके दो भिन्न स्वरूप हैं। जगतमें जो सुख और दुःखका सर्वको अनुभव होता है वह सत्कर्म और दुष्कर्मके परिणाम रूप है ऐसा स्पष्ट जाना जाता है। जो सुख अथवा दुःखका कारण ढूंढ नहीं सकता, वह किसी समय कृत कर्मका ही परिणाम हो सक्ता है। मैं कभी नहीं था और कभी नहीं होऊँगा, यह कभी मुझे प्रतीत होता नहीं। इसपरसे हमें देखना चाहिए कि हम गत जन्ममें क्या थे और मृत्युके पश्चात् भविष्य जन्ममें क्या होंगे। गत समय मैंने कर्म किये थे और वह ही इस जन्मके सुख दुखके कारण होना चाहिए। घड़ीका लटकन जिस प्रकार इधरसे उधर चलता रहता है, उसी प्रकार मैं जन्म और मरणके मध्य झूलनेवाला जीव हूं। कर्मकी चावी करके यह लटकन सदृश गति मिली है और जबतक यह चावी लगी रहेगी तबतक मैं इस झूलेसे निकल नहीं सक्ता। यह झूलेकी स्थिति दुःखकारक है। इसमें कभी ही सुखका अनुभव होता है, परन्तु वह अत्यन्त क्षणिक है। यह इतना ही नहीं बल्कि इससे आघात पहुंचता है। इसलिए परिणाममें दुःखरूप है। मुझे इस दुखकारक झूलेमेंसे छूटना चाहिए। किसी भी प्रकारसे मुझे इस चावीके फेर हटाना चाहिए। इस प्रकारकी विचार श्रेणीसे प्रेरित हो कितनेक आर्यगण जन्ममरणके झूलेमेंसे छूटनेके लिए–मोक्ष

हो कितनेक आर्यगण जन्ममरणके झूलेमेंसे छूटनेके लिए-मोक्ष पानेके लिए विविध प्रयत्न करते हैं। कर्मकी चाबीको किसी तरह खपादेनेके यह प्रयत्न करते हैं।....महावीरस्वामी इसी प्रकृतिकी एक प्रतिमा हैं। बुद्धकी प्रकृति इससे भिन्न है। पहिले जन्मकी और मृत्योपरान्त दूसरी स्थितिकी चिन्ता करना उसके निकट आवश्यक नहीं। जन्म जो दुःखरूप होय तो फिर इस जन्मके दुःखतो सहन हो गए। पुनर्जन्म यदि होता होगा तो वह इस जीवनके सुकृत और दुष्कृतके अनुसार होगा। इस लिए यही जन्म सर्वका आधार है। बुद्धने इसी विश्वासके अनुसार वर्तमान दुःखकी स्थितिको दूर करनेके प्रयत्न किए। और अपने अष्टांगिक मार्गका उपदेश दिया।" (देखो बुद्ध अने महावीर १०५-१०९)

परिशिष्ट नं० ३।

महावीरस्वामीकी सर्वज्ञताके प्रमाण।

भगवान महावीरस्वामीके जीवनपर अब इतना प्रकाश पड़ चुका है कि उनके ऐतिहासिक व्यक्तित्वमें अब किसी विद्वान्को संदेह नहीं रहा है। यह भी पूर्णतः सिद्ध हो गया है कि महावीरस्वामी जैन धर्मके स्थापक नहीं थे, किन्तु एक सुप्रचलित धर्मके नायक थे। वे जैनियोंके अन्तिम तीर्थंकर थे। 'तीर्थंकर' वही पुरुष होता है जो सर्वज्ञता प्राप्त कर धर्मोपदेश करे और चार प्रकारके संघकी व्यवस्था करे। महावीरस्वामी सर्वज्ञ थे, इस व्याख्यानकी पुष्टिमें जैन साहित्यमें इस विषयके स्पष्ट उल्लेखोंके अतिरिक्त एक प्रबल और परोक्ष प्रमाण यह है कि जैन सिद्धान्त या दर्शनमें

पारस्परिक विरोधी सिद्धान्त बिलकुल नहीं पाये जाते। दूसरे जो दर्शन हैं, उनमें भिन्न २ आचार्योंके कथनोंमें बहुत विरोध पाया जाता है जिसका परिहार करना कहीं २ असम्भव है। इसका कारण यह है कि उन दर्शनोंके स्थापक कोई सर्वज्ञ नहीं थे। इससे उनमें बहुतसी अपूर्णतायें रह गईं थीं, जिनको पीछेके आचार्योंने अपने२ मतके अनुसार पूरी करनेका प्रयत्न किया। इसीसे उनमें परस्पर विरोधी बातें आगई हैं, परन्तु जैन दार्शनिक ग्रन्थोंमें ऐसे विरोध कहीं नहीं पाये जाते। जितने आचार्योंने जैन दर्शन पर अपनी बहुमूल्य लेखनी चलाई है वहां उनके कथनोंमें पूरा सामञ्जस्य है और तद्विषयक प्राचीनतम ग्रन्थोंसे लगाकर नवीन ग्रन्थोंतकमें कहीं भी किसी समयके ग्रन्थोंमें नये जोड तोड हेर फेर वा घटावढी नहीं पाई जाती। जैन दर्शनका जो रूप आजसे ढाई हजार वर्ष पूर्व था, आज भी वैसाही बना है। इसका कारण यही है कि उसमें किसी प्रकारकी अपूर्णतायें नहीं थीं। समस्त वस्तु स्वरूपका उसमें सप्रमाणिक विवेचन था और इसी लिये आचार्योंको उसमें जोड़ा तोड़ी करनेके लिये न तो स्थान था और न आवश्यक्ता थी। यह तभी हो सक्ता है जब उस दर्शनका प्रतिपादन करनेवालेको समस्त वस्तु स्वरूपका पूर्ण ज्ञान हो। अतः जैन तीर्थंकर जिन्होंने जैन दर्शनका ऐसा पूर्ण और विसद विवेचन किया अवश्य सर्वज्ञ रहे हैं।

केवल जैन ग्रन्थोंमें ही नहीं; बौद्धोंके प्राचीनतम धार्मिक ग्रंथोंमें भी महावीर स्वामीकी सर्वज्ञताके प्रमाण पाये जाते हैं। ये प्रमाण अन्य धर्मावलम्बियोंके होनेसे विशेष महत्त्वके हैं। और

प्रो० रिस डेविड्स व अन्य कई विद्वानोंने इस बातको पूर्णतः सिद्ध कर दिया है कि बौद्धोंके पालीग्रन्थोंकी आजसे २२०० वर्ष पूर्व रचना हो चुकी थी। अशोकके समय अर्थात् ईस्वीसन्से पूर्व तीसरी शताब्दिमें इन ग्रन्थोंका अधिकांश भाग प्रायः उसी रूपमें स्थिर हो चुका था जैसा उसे हम आज पाते हैं। अतः महावीर स्वामीके विषयमें इनके कथन उनके बहुत निकटवर्ती कालके होनेसे बहुत मान्य और विश्वसनीय हैं।

बौद्धोंके समस्त धार्मिक ग्रन्थ तीन भागोंमें विभक्त हैं जो 'त्रिपटक' कहलाते हैं। इनके नाम क्रमशः विनयपिटक, सुत्त (सूत्र) पिटक, और अभिधम्म (अभिधर्म) पिटक हैं। प्रथम पिटकमें बौद्ध मुनियोंके आचार और नियमोंका, दूसरेमें महात्मा बुद्धके निज उपदेशोंका और तीसरेमें विशेषरूपसे बौद्ध सिद्धान्त और दर्शनका वर्णन है। 'सुत्तपिटक'के पांच 'निकाय' व अंग हैं जिनमेंसे द्वितीयका नाम 'मज्झिम निकाय' है। इसमें अनेक स्थानों-पर महात्मा बुद्धका निग्रन्थ मुनियोंसे मिलने और उनके सिद्धान्तों आदिके विषयमें बातचीत करनेका उल्लेख आया है। इन उल्ले-खोंसे सिद्ध होता है कि बुद्धको भगवान महावीरकी सर्वज्ञताका पता चल गया था और उन्हें उनके सिद्धान्तोंमें रुचि उत्पन्न हो गई थी। उदाहरणार्थ इन उल्लेखोंमेंसे एक यहां उद्धृत किया जाता हैं।

बुद्ध कहते हैः—

एकमिदा हं, महानाम, समयं राजगहे विहरामि गिज्झकूटे पब्बते। तेन खो पन समयेन संबहुला निगण्ठा इसिगिलिपस्से काल

सिलायं उब्भत्थका होन्ति आसन पटिक्खित्ता, ओपक्कमिका दुक्खा तिप्पा कटुका वेदना वेदयन्ति। अथ खो हं, महानाम, सायण्ह समयं पटिसल्लाणा वुट्ठितो येन इसिगिलिपस्सम काणसिला येन ते निगण्ठा तेन उपसंकमिम्। उपसंकमित्वा ते निगण्ठे एतदवोचम्ः किन्तु तुम्हे आवुसो निगण्ठा उब्भट्ठका आसनपटिक्खित्ता, ओपक्कमिका दुक्खा तिप्पा कटुका वेदना वेदियथाति। एवं वुत्ते, महानाम ते निगण्ठा मं एतदवोचुं, **निगण्ठो, आवुसो नाथपुत्तो सव्वञ्ञु, सव्वदस्सावी अपरिसेसं ञाणं दस्सनं परिजानातिः** चरतो च मे तिट्ठतो च सुत्तस्स च जागरस्स च सततं समितं ञाणदस्सनं पच्चुपट्ठितंतिः, सो एवं आहः अत्थि खो वो निगण्ठा पुब्बे पापं कम्मं कतं, तं इमाय कटुकाय दुक्करिकारिकाय निज्जरेथ; यं पनेत्थ एतरहि कायेन संवुता, वाचाय संवुता, मनसा संवुता तं आयतिं पापस्स कम्मस्स अकरणं, इति पुराणानं कम्मानं तपसा व्यन्तिभावा नवानं कम्मानं अकरणा आयतिं अनवस्सवो, आयतिं अनवस्सवा कम्मक्खयो, कम्मक्खया दुक्खक्खयो, दुक्खक्खया वेदनाक्खयो, वेदनाक्खया सव्वं दुक्खं निज्जिण्णं भविस्सति **तं च पन अम्हाकं रुच्चति चेव खमति च तेन च आम्हा अत्तमना ति'**

(P. T. S. Majjhima Vol. I. P. p. ९२-९३)

इसका भावार्थ यह हैः-

म० बुद्ध कहते हैं "हे महानाम, मैं एक समय राजगृहमें गृद्धकूट नामक पर्वतपर विहार कर रहा था। उसी समय ऋषिगिरिके पास 'कालशिला (नामक पर्वत) पर वहुतसे निर्ग्रन्थ (मुनि)

आसन छोड़ उपक्रम कर रहे थे और तीव्र तपस्यामें प्रवृत्त थे। हे महानाम, मैं शायंकालके समय उन निग्रन्थोंके पास गया और उनसे बोला 'अहो निर्ग्रन्थ। तुम आसन छोड़ उपक्रम कर क्यों ऐसी घोर तपस्याकी वेदनाका अनुभव कर रहे हो ?' हे महानाम, जब मैंने उनसे ऐसा कहा तब वे निर्ग्रन्थ इस प्रकार बोले 'अहो, निग्रन्थ ज्ञातपुत्र सर्वज्ञ और सर्वदर्शी है, वे अशेष ज्ञान और दर्शनके ज्ञाता हैं। हमारे चलते, ठहरते, सोते, जागते समस्त अवस्थाओंमें सदैव उनका ज्ञान और दर्शन उपस्थित रहता है। उन्होंने कहा है:-'निर्ग्रन्थो ! तुमने पुर्व (जन्म) में पापकर्म्म किये हैं, उनकी इस घोर दुश्चर तपस्यासे निर्जरा कर डालो। मन, वचन और कायकी संवृत्तिसे (नये) पाप नहीं बंधते और तपस्यासे पुराने पापोंका व्यय हो जाता है। इस प्रकार नये पापोंके रुक जानेसे और पुराने पापोंके व्ययसे आयति रुक जाती है, आयति रुक जानेसे कर्म्मोंका क्षय होता है, कर्म्मक्षयसे दुक्खक्षय होता है, दुक्ख क्षयसे वेदना-क्षय और वेदना क्षयसे सर्व दुःखोंकी निर्जरा हो जाती।" इस पर बुद्ध कहते हैं 'यह कथन हमारे लिये रुचिकर प्रतीत होता है और हमारे मनको ठीक जंचता है।'

ऐसा ही प्रसङ्ग 'मज्झिमनिकायमें भी एक जगह और आया है। P. T. S. Majjhima Vol II. PP. 214-218 वहां भी निर्ग्रन्थोंने बुद्धसे ज्ञात पुत्र (महावीर) के सर्वज्ञ होनेकी बात कही और उनके उपदिष्ट कर्म-सिद्धान्तका कथन किया। तिसपर बुद्धने फिर उपयुक्त शब्दोंमें ही अपनी रुचि और अनुकूलता प्रगट की।

यह भगवान महावीर और उनके सिद्धांतोंके विषयमें कहे हुए स्वयं महात्मा बुद्धके वाक्य हैं! इनसे यह भली भांति सिद्ध हो जाता है कि म० बुद्ध भगवान महावीरके सिद्धांतोंका कैसा आदर करते थे। उन्होंने न केवल निर्ग्रन्थोंके सिद्धांतोंको सुना ही था किंतु उनमें अपनी रुचि और अनुमति भी प्रकट की थी और भगवान महावीरकी सर्वज्ञताके विषयमें जो कुछ उन्होंने सुना उसे बड़े भावसे अपने शिष्योंको भी सुनाया। अतः इस बातमें कुछ भी संदेह नहीं रहजाता कि भगवान महावीरके जीवित कालमें ही उनकी सर्वज्ञता पर न केवल उनके अनुयायियोंको ही पूर्ण विश्वास था वरन् एक दूसरे धर्मके प्रणेता और उनके शिष्यगणों पर भी उनका प्रभाव अवश्य पड़ गया था।

हीरालाल जैन एम०ए० एल० एल० बी०
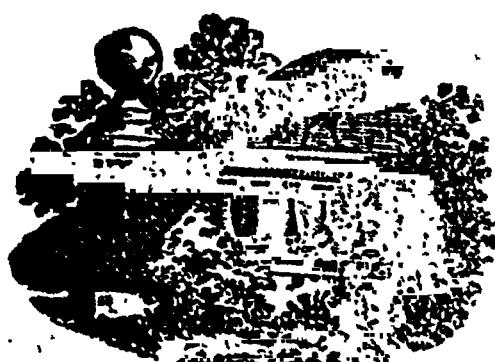
शुद्धाशुद्धि ।

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०	६	सदाचार रहता	सदाचारसे रहता
२१	२	भाविके	भावी पतिके
२३	७	विशारद जैनियों यदि	विशारद यदि
२५	७	उसके	उसको
२५	१८	तापसके शरीरमें लक्कड़	तापस लक्कड़
२६	९	तो समन्तभद्र	समन्तभद्र
२८	३	सम्राट्को	सम्राट्को चन्द्रगुप्तको
२९	१४	फालामा	फार्लॉन्ग
३१	१	एक काल	एक दीर्घ काल
४२	२१	लिए गए	से लिए गए
४९	२०	व्यापारि	व्यापारि
५२	६	स ज्ञ	सर्वज्ञ
५८	२१	कारिगरी	कारीगरी
६०	९	गन्थों	ग्रन्थों
६२	२२	अजत शत्रु	अजातशत्रु
६३	१३	अन्य र्णोंके	अन्य वर्णोंके
६६	६	जैन शास्त्रों	वर्णन जनशास्त्रों
७५	२	गभ	गर्भ
७७	७	Fredom	Freedom
९९	२१	ध्याधि	व्याधिकी
१०३	१६	हुए	दिए
१०७	१२	यज्ञवेद	यज्ञवेदी
१ ८	५	भगववान	भगवान
१०८	६	चौद	चौदह
१११	१३	संग	संघ
११२	१०	अस्तु, यह विद्यामें सर्व भगवान	अस्तु, भगवान

११२	१२	व सुमति	वसुमति
१२२	२०	सतोषका प णाम	संतोषका परिणाम
१२४	२०	आप जैन जैन धर्मानुयायी	आप जैनधर्मानुयायी
१२७	१८	जनाचार्य	जैनाचार्य
१४९	१७	राज्याधिकारीके	राज्याधिकारी
१५१	१८	हुआ राजा	राज्याधिकारी
१६३	१२	सत्त वृक्ष	वृक्ष
१७०	१०	हों जाती।	हो जाती है।
१८६	७	अनेक	उनके
१९१	६	वात ातको	बातको
२१४	१२	Expeoits	exploits
२१५	४	सब	एवं
२२१ फु.नो.१२		जैनसूफी शब्द	जैनसूफी (Gymnosophist) शब्द
२२२ ,,	१	ांइ	पाई
,, ,,	३	ता	तो
२१३ ,,	४	में	हमें
,, ,,	८	बा र	बाहर
२२६	२३	जाती।	जाती है।
२४७	७	और लोक (गोलाकार)के मध्य और शरीर	रूपी कारागारमें (गोलाकार) लोकके मध्य
२६३	१	२६	२६३
,,	२१	प न्तु	यद्यपि
२६६	१२	मे	में
,,	१५	पन्य	पन्थ
२७०	१३	जनदर्शन	जैन दर्शन

पाठकगण, इन अशुद्धियों एवं दृष्टिदोषसे रही अन्य अशुद्धियोंको शुद्धकर ग्रन्थका अवलोकन करें।